RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814
वर्ष : 6, अंक : 21
अप्रैल-जून 2021
मूल्य 50 रुपये

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

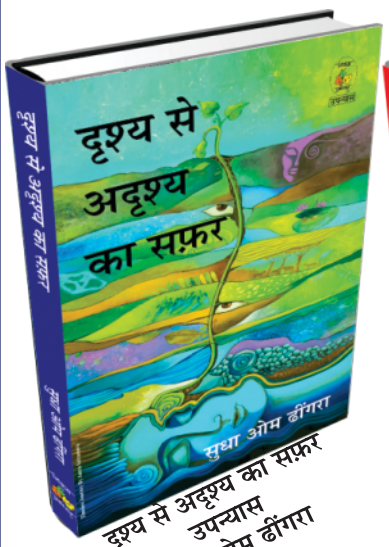

दृश्य से अदृश्य का सफ़र
उपन्यास
सुधा ओम ढींगरा

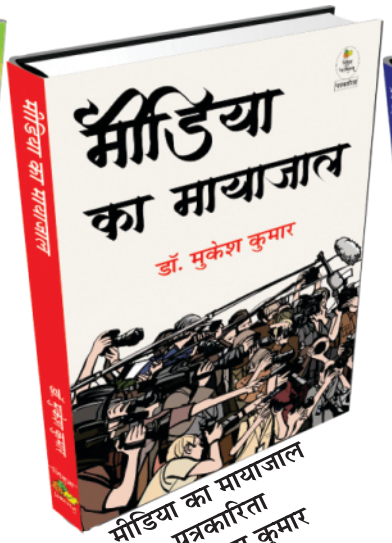

मीडिया का मायाजाल
पत्रकारिता
डॉ. मुकेश कुमार

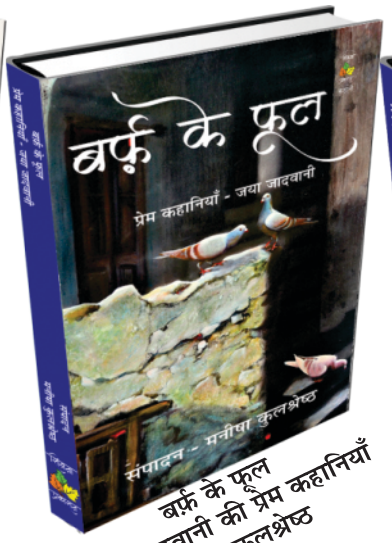

बर्फ़ के फूल
जया जादवानी की प्रेम कहानियाँ
मनीषा कुलश्रेष्ठ

गीली पाँक
कहानी संग्रह
उषाकिरण खान

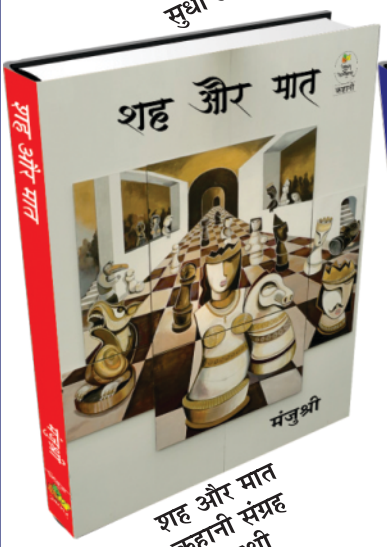

शह और मात
कहानी संग्रह
मंजुश्री

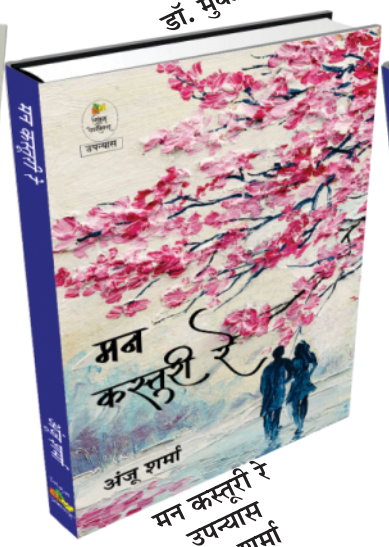

मन कस्तूरी रे
उपन्यास
अंजू शर्मा

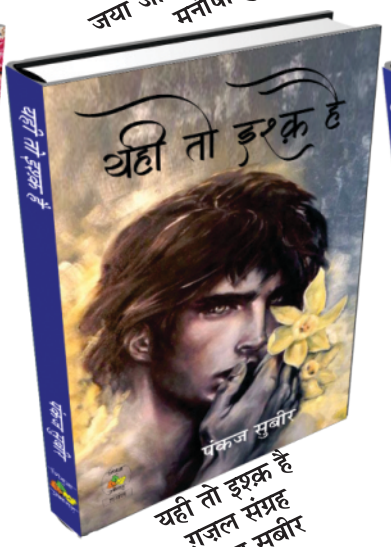

यही तो इश्क़ है
ग़ज़ल संग्रह
पंकज सुबीर

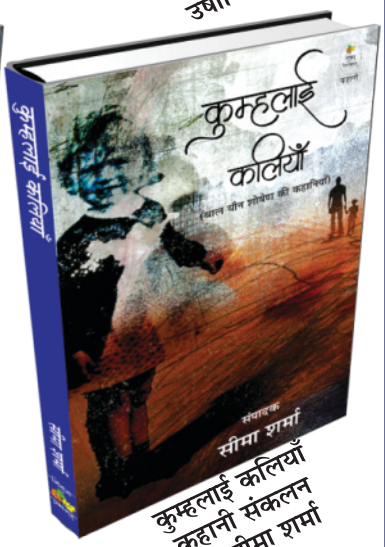

कुम्हलाई कलियाँ
कहानी संकलन
डॉ. सीमा शर्मा

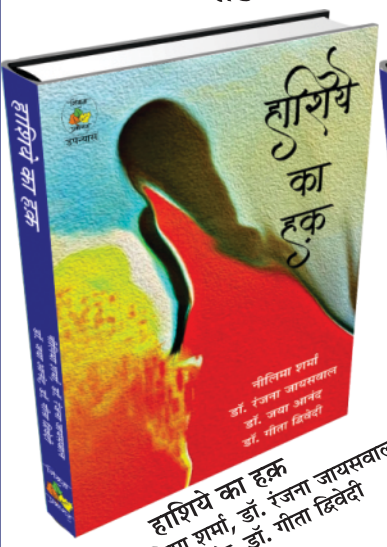

हाशिये का हक़
उपन्यास- नीलिमा शर्मा, डॉ. रंजना जायसवाल,
डॉ. जया आनंद, डॉ. गीता द्विवेदी

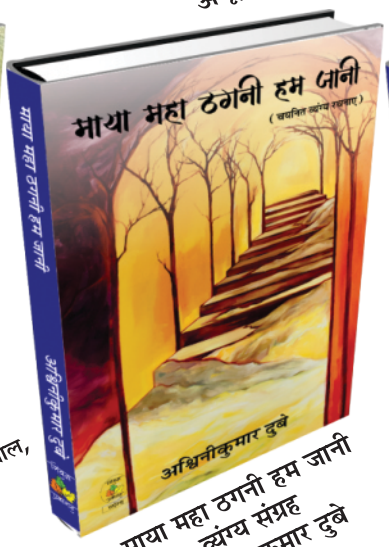

माया महा ठगनी हम जानी
व्यंग्य संग्रह
अश्विनी कुमार दुबे

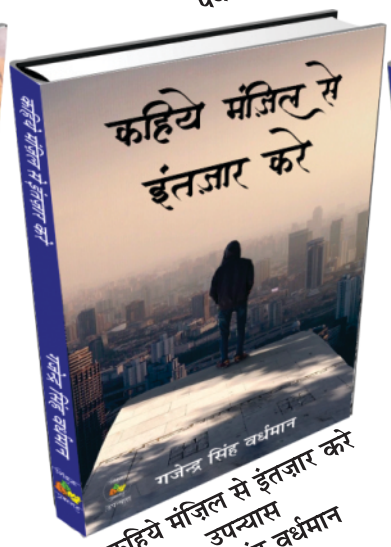

कहिये मंज़िल से इंतज़ार करे
उपन्यास
राजेन्द्र सिंह वर्धमान

द= देह, दर्द और दिल
कहानी संग्रह
विभा रानी

शिवना प्रकाशन
प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon
http://www.amazon.in
flipkart.com
http://www.flipkart.com
paytm
https://www.paytm.com
ebay
http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html

फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष)
3000 रुपये (आजीवन)
विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू के)
नीरा त्यागी (लीड्स, यू के)
अनिल शर्मा (बैंकॉक)
क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह, सनी गोस्वामी
डिज़ायनिंग
सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादन, प्रकाशन, संचालन एवं सभी सदस्य पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 6, अंक : 21, त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2021
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

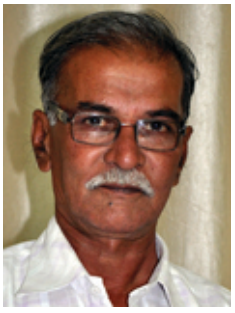

आवरण चित्र
राजेन्द्र शर्मा

रेखाचित्र
रोहित कुमार

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 6, अंक : 21,
त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2021

संपादकीय 5

विस्मृति के द्वार

धीरे-रे खुलें किवाड़
उषा प्रियम्वदा 7

कथा कहानी

भ्रम
कविता वर्मा 14
पानी की परत
चौधरी मदन मोहन समर 19
छतरी
सुमन कुमार घई 25
मास्टरनी का जादूमंतर
इला सिंह 31
चिन्ना वीदू
विनीता शुक्ला 36
अनछुआ
अंशु जौहरी 40
फटा हुआ बस्ता
डॉ. रमाकांत शर्मा 45

लघुकथा

पाव रोटी
किसलय पंचोली 30
जुण
उपहार
सुनील गज्जाणी 70

भाषांतर

क़ब्ज़ा कर लिया गया मकान
लातिन अमेरिकी कहानी
जूलियो कोर्टाज़ार
अनुवाद : सुशांत सुप्रिय 48

लिप्यांतरण

लघुकथाएँ
मूल : डॉ. अशफाक़ अहमद
अनुवाद: सेवक नैयर 51

आलेख

जनसंचार का बदलता परिदृश्य
नंद भारद्वाज 52

व्यंग्य

ख़ाली स्थान की सुरंगों से
धर्मपाल महेंद्र जैन 55
शादी-ब्याह की नेटवर्किंग में
जनवासा क्वारिण्टीन
डॉ. रंजना जायसवाल 57

पहली कहानी

मेरा नाम सुहानी है...
जुगेश कुमार गुप्ता 60

शहरों की रूह

मन के कैमरे में कैद बीजिंग (चीन)
शशि पाधा 62

संस्मरण

'भिट्ट' जाने का वह सुख
कृष्णकुमार 'आशु' 68

यादों के झरोखे से

चश्मे की खोज
डॉ. अफ़रोज़ ताज 71

दोहे

जय चक्रवर्ती 56

ग़ज़ल

अशोक अंजुम 75

कविताएँ

अरुण सातले 76
नरेश अग्रवाल 77
शैलेन्द्र चौहान 78
अनुजीत इकबाल 79
कमलेश कमल 80
रश्मि प्रभा 81

आख़िरी पन्ना 82

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है :

1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is "Zero")

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

सोशल मीडिया की क्रियाशीलता ने विश्व को आशावान् रखा

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

करोना से हुई क्षति समस्त विश्व में विचारणीय विषय है। कोविड-19 से आए आर्थिक संकट और मृत्यु दर के आँकड़े भी चिंता में डालते हैं। पूरा एक वर्ष विश्व के जनमानस ने मानसिक यन्त्रणा भोगी है। असुरक्षा और डर के वातावरण में साँस ली है। इसके बावजूद सोशल मीडिया पर लोग सक्रिय रहे। सोशल मीडिया की क्रियाशीलता ने विश्व को आशावान् रखा।

घरों में बैठीं कई प्रतिभाएँ करोना ग्रस्त समय में सामने आईं। हर क्षेत्र में नए-नए चेहरे देखने को मिले। पाक कला के कई यू ट्यूब वीडियो सामने आए; जिसमें गाँव की महिलाएँ चूल्हे पर तरह-तरह के व्यंजन बनाते हुए, उन व्यंजनों को बनाने की विधि भी बताती हैं। अब उनके वे यू ट्यूब चैनल बहुत लोकप्रिय हो गए हैं और उससे उन्हें आर्थिक लाभ मिलने लगा है। महिला दिवस पर मैंने एक ग्रामीण दादी माँ का इंटरव्यू देखा, जिसका अपना पाक कला का यू ट्यूब चैनल है। उन्होंने बताया, करोना के कारण उनके सभी पढ़े-लिखे बच्चे घर में बैठे थे और एक दिन उनके पोते ने हँसी-मज़ाक में उनके खाना बनाते हुए और उनसे उस भोजन को बनाने की विधि पूछते हुए वीडियो बनाया और उसे यू ट्यूब पर डाल दिया। लोगों को वह पसंद आया और फिर घर से बाहर चूल्हा रख कर अम्माँ जी यानी दादी माँ तरह-तरह के व्यंजन बनाने लगीं और पोता वीडियो बना कर यू ट्यूब पर डालने लगा। वे सारे वीडियो यू ट्यूब पर लोकप्रिय हो गए और अब उनका यू ट्यूब चैनल हो गया है और उससे उन्हें पैसा मिलने लगा। उन्होंने बड़ी ख़ुशी से बताया, जिन व्यंजनों से भरी थाली को उसका पति उठाकर फेंक देता था, वही व्यंजन लोगों को पसंद आ रहे हैं और बुढ़ापे में उन्हें नाम, इज़्ज़त, शोहरत और पैसा भी मिल रहा है। लोग उनकी बतायी व्यंजन विधियों से भोजन बनाते हैं और स्वादिष्ट बनने पर उन्हें संदेश लिखते हैं। उनकी आँखों और चेहरे पर मैंने आत्मविश्वास और संतोष की चमक देखी।

अनगिनत कलाकार, जो घर में दबी-घुटी थीं, ज़ूम, वेबिनार, वीडियो और सोशल मीडिया से सामने आईं। साहित्य की दुनिया में तो क्रांति आ गई। सिरहानों के नीचे दबी डायरियाँ लोगों

संपादकीय

तक पहुँचीं। सुअवसर और साधन मिलने पर अवसर तलाशती कलियाँ खिल उठीं। जो कलाकार, लेखक सचमुच आगे आने के लिए तैयार थे, और उनकी पूरी तैयारी थी। बस सुविधा और मौके की तलाश थी, करोना काल में उन्हें सोशल मीडिया पर मंच और चाहने वाले मिले। अगर वे कड़ी मेहनत करते रहेंगे तो करोना काल में सोशल मीडिया पर लगी दौड़ को पछाड़ते हुए अपनी मंज़िल पा लेंगें, अन्यथा भीड़ में खो जाएँगे। समय अपनी पारखी नज़रों से सब परख लेगा। वक्त की छलनी सब छान देगी। घरों में बैठे लोगों को समय काटने के लिए सोशल मीडिया का बेहतरीन सहारा था। इसलिए हर कलाकार और लेखक को पसंद करने वाला एक वर्ग मिला। कहते हैं नकारात्मकता के साथ ही सकारात्मकता का उदय भी होता है। करोना ग्रस्त समय में नकारात्मकता में ही सकारात्मकता उभरती नज़र आई।

आधी आबादी जैसे जागृत हो उठी। जिस आधी आबादी को आगे लाने के प्रयास देश - विदेश में होते रहते हैं, प्राकृतिक रूप से आधी आबादी चारों ओर छा गई। विदेशों में बहुत सी महिलाओं ने अपनी कंपनियाँ खोल लीं। कइयों ने आर्ट और क्राफ्ट, घर पर स्वयं आभूषण बना कर और पेंटिंग्स इत्यादि ऑनलाइन बेचनी शुरू कर दीं। देश में भी घरेलू महिलाओं ने अपने - अपने घरों से लघु उद्योग शुरू कर लिए।

कोविड-19 से व्यथित समय को पूरे विश्व की स्त्रियों ने अपनी सूझबूझ और सजगता से क्रियाशील रहकर परिवार तथा समाज का समीकरण करते हुए अपनी भिन्न-भिन्न रुचियों को भी सोशल मीडिया पर दर्शाया।

इस समय में एक और सकारात्मकता सामने आई। लोग स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति जागरूक हो गए। कोई भी वायरस हो या बैक्टीरिया साँस और छुआछात से फैलता है। अगर स्वच्छता के प्रति सजग और सतर्क रहेंगे तो करोना की दूसरी लहर, कोई और वायरस या बैक्टीरिया छू भी नहीं पाएगा।

आप स्वच्छता के सभी नियमों का पालन करें और सुरक्षित रहें। विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की टीम यही कामना करती है...

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

समूह में रहने से शक्ति के साथ-साथ सुंदरता में भी वृद्धि होती है। शाख़ पर खिले हुए एक फूल की तुलना में कई फूलों का समूह और अधिक सुंदर दृश्य उपस्थित करता है। किन्तु हम मानव समूह में रहने से दिनों-दिन कतराने लगे हैं, भूल रहे हैं कि इससे न केवल शक्ति कम होगी, बल्कि सुंदरता भी कम होगी।

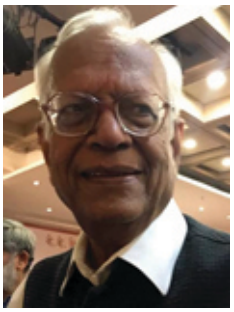

पिछले दिनों साहित्य अकादमी सहित हिन्दी के कुछ प्रतिष्ठित सम्मानों की घोषणाएँ हुईं, इन सम्मानों से सम्मानित लेखकों कमल किशोर गोयनका, विकेश निझावन, अनामिका को विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की टीम की ओर से हार्दिक बधाई...

धीरे-रे खुलें किवाड़

(झरोखे, खिड़कियाँ, दरारें)

उषा प्रियम्वदा

मेरे इस घर में तीन दरवाज़े हैं। घर अनुपात में छोटा है, यह जब पहली बार देखा तो बहुत बड़ा लगा। अब तक दूसरों के घर में रहने की आदत थी। बड़े भाई का, या चाचाओं का, या बड़ी बहन का, हर जगह एक छोटा सा कमरा ही होता था। कहीं तो वह भी नहीं। माँ के कमरे में एक खाट मेरी। जिज्जी के घर में छोटा सा कमरा था, संलग्न गुसलख़ाना, सामने बरामदा।

पर अमेरिका का यह घर पुराने ज़माने का है, जब आगे पीछे बड़े-बड़े लान, जिसमें ऊँचे-ऊँचे चीड़ के पेड़ लगाए जाते थे, कमरे कई, पट छोटे-छोटे एक मामूली सा पलंग, एक अलमारी, कुर्सी मेज़ की जगह, तब बड़े-बड़े कमरों का रिवाज नहीं था। सिर्फ़ रात को सोने भर के लिये, कपड़े भी तब इतने नहीं होते थे कि अलमारी खोलो तो एक दम नीचे आ गिरे। तो यह घर पसन्द आ गया। इस जगह घर मुश्किल से बिकाऊ होते थे, यूनिवर्सिटी से चार क़दम दूर-चौड़ी-चौड़ी सड़कें और उन पर घने छायादार पेड़ थे। सड़क पार प्रसिद्ध झील- इधर पूरे शहर की छाती को चीरती हुई पूर्वी छोर से दूसरे शहर तक छूती हुई -यूनिवर्सिटी एवेन्यू सड़क।

इस घर में तीन दरवाज़े हैं- एक सामने का दरवाज़ा, पुरानी पद्धति, मामूली साइज़ का, घुसो तो थोड़ी सी चौकोर जगह, जूते और कोट उतारने भर की, सिर्फ़ आतिथेय से हलो कहने लायक़, दो नीची-नीची सीढ़ियाँ, बाईं ओर चाहो तो सीढ़ियों से खटाखट ऊपर की मंज़िल चले जाओ या फिर सीधे जाकर बैठक में हलो कहो...

दूसरा दरवाज़ा रसोई से बाहर खुलता है। लम्बे से ढके बरामदे में दोनों ओर से बरामदा खुला हुआ है। दो कदम पर गेराज का दरवाज़ा, गेराज भी छोटा है, एक कार के लायक़।

तीसरा दरवाज़ा डेन पर खुलता है। जहाँ से पिछवाड़े जाती हूँ, फूलों में पानी देने, चिड़ियों को दाना डालने, या फिर गर्मी के मौसम में सुबह-सुबह बैठकर अख़बार पढ़ने। पहले यहाँ एक नदी थी। बस उतरने के लिए दो सीढ़ियाँ थीं। और एक छोटा सा पेड़ नकली नारंगी का। उसमें नारंगियाँ नहीं लगती थीं। केवल ग्रीष्म की शुरूआत पर बेहद सुगंधित सफ़ेद फूल आते थे। डेक तब बनी जब एक डेनिश सहेली ने कहा- देखो, लैरी ने पीऍच.डी तो कर ली है पर नौकरी नहीं मिली है। सितम्बर में जब स्कूल खुलेंगे तो स्कूल बस चलाएगा। मगर गर्मियों में बेकार है। हम सब उसे काम दे रहे हैं। अभी उसने हमारे घर में नया वरांडा बनाया है।

प्रशान्त, पति, एक दम तैयार हो गए, उनका नामकरण श्री वेंकटेश्वर के मंदिर के मुख्य पंडित ने किया था। पूजा के बाद जब पंडित जी ने नाम पूछा तो वह कुछ हिचकिचाए- पर तुरंत ही पंडित जी ने उनके सर पर चांदी का टोपा रखते हुए कहा- नेम प्रशान्त, गोत्र शिवम्। नाम

उषा प्रियम्वदा
1219 शोर वुड बुलेवार्ड,
मैडिसन , विस्कॉन्सिन, 53705, यू एस ए
मोबाइल-608-238-3681
ईमेल- unilsson@facstaff.wisc.edu

सटीक था, धीर, गंभीर, विद्वान व्यक्ति का। वही नाम चल गया। तो प्रशान्त जो अपने जीवन में बढ़ई बनने की तमन्ना रखते थे। पर बन गए प्रोफ़ेसर, वह भी हार्वर्ड जैसी यूनिवर्सिटी के। प्रशान्त एक दम उद्यत, उत्सुक-हम डेक बनाएँगे। कितनी बड़ी मुझसे पूछा-''जितनी बड़ी बन सके, उतनी बड़ी-'' मैंने कहा, पूरी भारतीय मनस्थिति। पूरी गर्मी लैरी और प्रशान्त ठोक- ठाक करते रहे। मेरा काम उन दोनों के लिये लंच बनाना था। मैं अक्सर दोनों को देखती। बातों में लीन, नॉर्वेजियन भाषा में वार्तालाप, कीलों की ठुकाई। लैरी ने पीएँच .डी नॉर्वे के साहित्य पर की थी और डेनमार्क के होने के कारण प्रशान्त को डेनिश के साथ-साथ नॉर्वेजियन और स्वीडिश भी आती थी।

पर आजकल कोई भी दरवाज़ा सुरक्षित नहीं है, गर्मी का मौसम है। घर के सामने लगे छोटे फूल पौधों पर मधुमक्खियाँ, भँवरे और बर्रे मँडराती रहती हैं। छोटा सा फ़व्वारा है जहाँ तमाम कीड़े-मकोड़े, पशु, पक्षी, पानी, पीने आते रहते हैं, गिलहरियाँ, ख़रगोश, और मेंढक तो स्थायी रूप से वहाँ बस ही गए हैं। खोलो तो सब अन्दर छाया में घुस पड़ने को तैयार। रसोई के दरवाज़े के बाहर जाली का दरवाज़ा हलका सा भी खुला कि उस लघु पल में बरामदे की छाया में विश्राम करती छोटी - बड़ी मक्खियाँ तुरन्त घुस आती है, और पूरे घर में भन् भन् की आवाज़ करती हुई बिचरती रहती हैं। अब मैंने उन्हें 'हलो मक्खी' कहना शुरू कर दिया है। जब वह जलते हुए टेबिल लैम्प की रोशनी से आकर्षित होकर आकर बैठ जाती है। उसका क़त्ल करना मेरे वश का नहीं है। कभी-कभी लगता है कि वह मुझे खिजाने के लिए मेरा पीछा करती हैं। एक दिन जब ऊपर शयन कक्ष में थी। तो वह मुझे 'झाड़' पर बैठी दिखाई दी। बड़ी तत्परता से मैंने बाहर निकलकर दरवाज़ा बन्द करके उसे वहीं क़ैद कर दिया और प्रसन्नता पूर्वक नीचे आई तो पाया कि वह केवल एक ही नहीं थी, घर में कई मक्खियाँ थी। पूरा परिवार- हर जगह वही भन् भन्। पीछे का दरवाज़ा खुलता है और मक्खियाँ की तादाद बढ़ती जाती है- उन्हें धूप सेंकते देखती हूँ, रसोई में आराम से बिचरते हुए- पर उन्हें निष्कासित करने का उपाय तब तक नहीं मिला जब तक सफ़ाई करने वाली क्रिस्टा ने ज़हरीले स्प्रे से तीन मक्खियों को नहीं मार गिराया।

दो चार दिन घर में शान्ति रही, फिर न जाने क्यों क्रिस्टा ने रसोई वाला दरवाज़ा खोला तो झट से बन्द करने पर मक्खियाँ तो घुस ही आईं, तीसरे दरवाज़े पर दो छोटी-छोटी गिलहरियाँ भोजन की आस में सुबह से ही दौड़ती भागती रहती है। साबुत मूँगफली, सूरजमुखी के फूलों के बीज, मटर के दाने, भुट्टे - दरवाज़ा कभी खुला न रह जाए इसका बराबर ध्यान रहता है, पर भेड़ना (बंद) भी सावधानी से पड़ता है; क्योंकि उसका ताला कभी-कभी अपने आप बन्द हो जाता है। तब बैठे रहो चुपचाप बाहर, निष्कासित। फालतू चाभी जहाँ छुपाई है, कभी-कभी उस डब्बे का भी ताला नहीं खुलता।

तब डेक पर कुर्सी पर बैठो, या झूला-झूलों और कुछ देर बाद फिर डब्बे को खोलने का प्रयत्न करो। इससे बचने के लिये कभी-कभी डेक का दरवाज़ा थोड़ा खुला रहने देती हूँ-

प्रशान्त ने मुस्कराते हुए कहा- ''घर में कोई घुस आया है?''

''कौन ? किसी का कुत्ता? बिल्ली?''

''नहीं गिलहरी का बच्चा-''

तब मैंने दरवाज़ा पूरा खोल दिया कि भाग जाएगा अपने आप- मगर पता चला उसकी मोटी ताज़ी माँ भी उसे ढूढ़ते हुए अन्दर आ गई है।

प्रशान्त बाहर पहरा देते रहे कि कहीं खुले दरवाज़े से कोई और परिवार की गिलहरी न घुस आये, और मैं डंडा लेकर सारे कमरे, पलंग के नीचे खटखटाती रही, उन दोनों को बाहर खदेड़ने के लिये।

जब घर में छोटे-छोटे पैरों की भाग दौड़ ख़त्म हो गई तो मैंने सोंचा चलो भाग गए दोनों।

सुबह उठकर पाया कि डेक के दरवाज़े में शीशे के नीचे बड़ा सा छेद है, जिसे दाँतों से कुतरकर माँ -बेटी और बेटा बाहर निकल आए है। तब से सावधान रहती हूँ, उन्हें खाना न दो तो फूलों को कुतर जाती हैं, गमलों को नीचे जड़ तक खोद देती हैं।

घर से बाहर निकलना दुश्वार, पर इस कोरोना काल में बाहर जाते नहीं, मगर पेड़ पौधों में पानी देने, सुबह अख़बार उठाने तो जाना अनिवार्य है ही। मुन्नी बुआ, गोरी चिट्टी धर्मपरायण वाली विधवा, कहा करती थीं, हर घर में दो दरवाज़े होने चाहिए। एक सामने का तो एक पीछे से, ज़रूरत पड़ने पर निकल भागने का।

इसी के साथ हम बच्चों के लिये एक दहशतभरी कहानी जुड़ी हुई थी। हम कानपुर में रहते थे और कानपुर हिन्दू-मुस्लिम दंगों के लिये कुख्यात था। जब देखो तब जय बजरंगबली और अल्ला हू अक्बर के नारे लगाते हुए लोग आपस में भिड़ जाते थे। तो मुन्नी बुआ की कहानी पहले...१९३१ में कानपुर के भयानक दंगे शुरू हुए थे। हमलावरों ने बुआ के ससुराल के घर का सामने का दरवाज़ा पीटना शुरू किया। उनके ससुर ने सारे परिवार को हँकाया-चलो-चलो निकलो- सब स्त्रियाँ घूँघटों में, गिरती, पड़ती पीछे के दरवाज़े से भागीं- पर बुआ सबसे बाद में; क्योंकि अपने भगवान् जी को छोड़कर कर कैसे जातीं। जगह की कमी के कारण उनके शालिग्राम एक टीन के डब्बे में रहते थे। जैसे ही सामने का दरवाज़ा टूटकर गिरने की आवाज़ आई, बुआ अपने भगवान् को लेकर पिछले दरवाज़े से बाहर- बदहवास भागती हुई। पीछे से घर लुट गया और दंगाइयों ने आग लगा दी। अब भला मुझे याद नहीं कहाँ शरण ली। बिना पैसे-टके या बोरियाँ बिस्तर और कपड़े लत्तों के।

उत्तरार्ध बताते समय बुआ थोड़ा सा हँसती थी- अरे, मेरे छ: तोले के ठोस कड़े जो थे, उन्हें मैं अपने सालिगराम के ही डब्बे में रख ली थी। तो उन्हें बेचकर घर किराये पर लिया। तब सोने का दाम क्या रहा होगा, बाइस तेइस रु. तोला, पर उस समय में वही बहुत था।

मगर हमारे पहले, कानपुर के मकान में कमरे, कोठरियाँ, छतें, बरामदे, दालान-आँगन तो कई थे। पर दरवाज़ा केवल एक था- बाहर जाने का। १९४७ की अगस्त की

उस रात जब हमारी छत पर पत्थरों की बारिश होने लगी और मोहल्ले के मुसलमान लड़के चाचा का नाम लेकर चीख़ने लगे- अर्जुन, अर्जुन बाहर निकलो- तब घर की स्त्रियाँ, चाची, माँ, मैं, और चचेरी बहनें सब सबसे ऊँची छत पर खदेड़ दी गईं। अगर दंगाई घर में घुस आते तो हमारे पास बचाव का कोई प्लान नहीं था। माँ घबराई हुई थी, चाची थरथर काँप रही थी और मैं चौथी मंज़िल की सबसे ऊँची छत से आस-पास का दृश्य देख रही थी। चारों तरफ़ जलती हुई आग का लाल प्रकाश था, कभी -कभार गोली की आवाज़ सुनाई दे जाती थी। पर एकाएक दरवाज़ा पीटना बन्द हो गया और आसपास एक तरह का सन्नाटा छा गया; क्योंकि दंगों की ख़बर सुनकर पास की बड़ी कोतवाली, बड़ी-बड़ी खुली ट्रकों में बन्दूक ताने सिपाई गश्त लगाने निकल पड़े थे।

उससे पहले १९४२ में जब हम लखन दा के सुन्दर बाग के घर में रहते थे, उसमें भी दो दरवाज़े थे, एक आगे का, एक पिछवाड़े। एकाएक रात को हमारे घर छापा पड़ा, सी.आई.डी. और पुलिस बड़े भाई शिब्बन लाल को ढूँढ़ने आ पहुँची थी; क्योंकि वह भारत छोड़ो आन्दोलन में बहुत सक्रिय थे। हमने उन्हें तब देखा था, जब उन्होंने कहा हम गाँधी जी से मिलने जा रहे हैं, कि क्या करना है- "अगले दो-तीन दिनों बाद समाचार मिला कि गाँधी के साथ कई नेता गिरफ़्तार हो गए।

शिब्बनलाल, जिन्हें हम सब घर में दादा कहते थे। फरार हो गए थे। और लखनऊ में उनके परिवार और घर की तलाशी तो पहली और लॉजिकल जगह थी। बीच रात में दरवाज़े पर खटखट हुई- सी.आई.डी. किसी ने पुकार कर कहा, हम उठकर बैठ गए। तब मैं माँ के साथ उन्हीं की खाट पर सोती थी, हतबुद्धि, कि हो क्या रहा है। पूरे घर की तलाशी हुई। हम चुपचाप अपनी-अपनी खाटों पर बैठे रहे, तसल्ली से। क्योंकि दादा तो घर में थे ही नहीं- पर धुकपुक तो थी कि मालूम नहीं पुलिसवाले क्या कहेंगे, दादा नहीं मिले। वापस जाते हुए दल के मुखिया ने कहा," ज़रूर पिछवाड़े के दरवाज़े से निकल कर भाग गए।"

तब मुझे बहुत गुस्सा आ गया, मैं कुछ

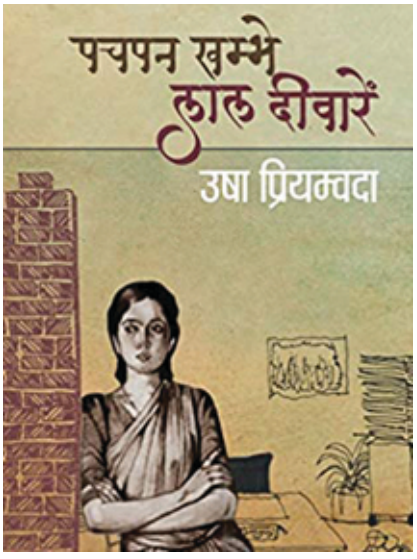

कहूँ, इसके पहले ही माँ ने मेरे मुँह पर अपनी हथेली रख दी।

000

इलाहाबाद के १०/३ बैंक रोड के घर में सात दरवाज़े थे। हर कमरे का एक दरवाज़ा बाहर के बरामदे में खुलता था। तो चार कमरों के चार सामने खुलने वाले दरवाज़े, फिर दो गुसलख़ाने और दोनों में एक-एक दरवाज़ा, और फिर एक दरवाज़ा पीछे आँगन का, जिससे होकर हम यूनिवर्सिटी जाते थे। वह भी विभाग में जाने का पिछवाड़ा ही था।

अमरूद के बाग़ में से होकर, जहाँ अमरूदों के सीज़न में हमेशा माली ठेका लिये सचेत बैठे नज़र आते थे। ज़्यादा कमरों के सामने वाले दरवाज़े बन्द ही रहते थे। ड्राइंगरूम का दरवाज़ा तब खुलता था, जब जीजाजी या जिज्जी से कोई मिलने आता था। प्रेमचन्द के बड़े बेटे श्रीपतराय से जीजाजी की प्रगाढ़ मित्रता थी। वह अक्सर आते थे और हमेशा बैठक में ही बैठते थे। उनके साथ कभी रामकुमार जी यानी बनारस जाते हुए श्रीपतराय जी के पास रुक जाते थे। कभी कभार बच्चन जी, सुमित्रा नंदन पंत जी के साथ, फिराक़ जो उनके बड़े भाई थे। और वह तो नियमित रूप से आते थे। पर वह भी ज्येष्ठ बन्धु होने की मर्यादा रखते थे। और कभी घर के और कमरों में नहीं जाते थे। उनकी बेटी पुष्पा मेरी एक मात्र सहेली थीं। उन दिनों सहेलियों के घर आने-जाने या बाहर घूमने फिरने का रिवाज नहीं था। पहले क्लासें पढ़ने और बाद में पढ़ाने के बाद भी मेरा कहीं भी आस-पड़ोस या मोहल्ले में आनाजाना नहीं था। केवल एक जगह थी; जहाँ मैं बिना रोक-टोक आ जा सकती थी। वह भी कभी कभार, वह स्थान था, शान्ताजोशी का घर। वह पहले मेरी फिलासफ़ी की प्रोफ़ेसर और बाद में सहयोगी बन चुकी थीं। उनके ददा सुमित्रानन्दन पन्त भी उसी घर में रहते थे। उस घर में बाहर का दरवाज़ा हमेशा खुला रहता था। घुसते ही सामने चौकोर ईटों का आँगन था और दीवार पर सुगन्धित फूलों की बेलें चढ़ी हुई थीं। आस-पास फूलों की क्यारियाँ थीं; जिनमें कुछ न कुछ हमेशा फूला करता था। पन्त जी अक्सर उस आँगन में, गुनगुनाते हुए टहलते पाए जाते थे। उनके घर के प्रवेशद्वार पर जैसे मैरे लिए "वेलकम" का बोर्ड लगा हुआ था। मैं निधड़क आती जाती थी। फ़ोन तो आम तौर से तब होते नहीं थे कि पूर्व सूचना देकर आज्ञा ली जाए। मालूम तो था ही कि शाम को पन्त जी घर पर ही मिलेंगे। अक्सर और लोग भी बैठे मिलते थे। साहित्यकार या साहित्य प्रेमी, पन्त जी को दूसरों के बारे में चर्चा पसन्द नहीं थी। इसलिये अक्सर साहित्य या कविता की ही बातें होती थीं। पन्त जी को कुंडली बाँचने का और हाथ देखने का भी शौक़ था। यह मुझे उस दिन पता चला जबकि दो एक उपस्थित व्यक्तियों का हाथ देखने के बाद, मैंने भी उनके सामने हथेली फैला दी। उस समय उन्होंने और कुछ नहीं कहा। दो-तीन दिन बाद जब कमरे में मैं थी और उनकी पहाड़िन पड़ोसिन, जो शायद अपनी खिड़की से हमेशा ताक लगाये बैठी रहती होगी और मेरे पहुँचने के कुछ ही मिनटों बाद अपनी मटमैली, गुंजली, तेल की बास और हल्दी के निशानों वाली धोती पहने प्रकट हो जाती थी और तब तक बैठी रहती थी; जब तक मेरे जाने का समय नहीं हो जाता था। पन्त जी ने कहा "तुम लिखोगी तो अवश्य, परन्तु तुममें जितनी प्रतिभा है, उसके अनुपात से न तुम्हें धन मिलेगा न यश। हाँ अत्याधिक मात्रा में ईर्ष्या मिलेगी।" कहकर वह मुस्करा दिये।

मैं क्या कहती, बस यही कि मैंने उनकी बात गंभीरता से नहीं ली। छात्रावस्था में

कहानियाँ लिखती थी। जो "सरिता" "विनोद" आदि पत्रिकाओं में केवल उषा नाम से छपती थीं। वह भी मैंने कई सालों से लिखना बन्द कर दिया था। क्योंकि प्रारंभिक अवस्था की कहानियाँ अब बचकानी लगने लगी थीं,क्योंकि उन दिनों "बादलों के घेरे" मन पर छाए हुए थे। और कभी गंभीर रूप से लेखिका बन सकूँगी, यह मेरे सपनों की छोटी सी परिधि के बाहर की बात थी। तभी श्रीपतराय द्वारा संपादित कहानी संग्रह में एक कहानी पढ़ी, नाम पहले नहीं सुना था। श्रीपत जी के आने पर मैंने उनसे पूछा-

"यह निर्मल वर्मा कौन हैं?"

"रामकुमार वर्मा के छोटे भाई, चैकोस्लोवाकिया में रहते हैं।" कितना भारी भरकम नाम- चैकोस्लोवाकिया, मैं बहुत प्रभावित हो गई। उन दिनों श्रीपतजी पेंटिंग को लेकर बहुत गंभीर हो गए थे। रामकुमार और हुसैन का वह बनारस दौरा चल रहा। वह दोनों अक्सर बनारस जाते हुए इलाहाबाद रुकते थे। मैं दोनों से ही मिल चुकी थी। पर यह नहीं समझ पाई थी कि वह दोनों कितने नामी पेन्टर हैं। वैसे ही जैसे नहीं समझती थी कि फिराक़ गोरखपुरी कितने विख्यात शायर हैं। जब तक उनके आगे पृथ्वीराज कपूर, कैफ़ी आज़मी और न जाने कितनों का आदर भरा जमावड़ा देखा।

जीजा जी भी कम उम्र में दिल के दौरे से त्रस्त रहते थे। फिराक़ के छोटे भाई होते हुए भी उन्होंने कभी शायरी नहीं की, परन्तु पेंटिंग में उनकी रुचि थी और वह अच्छे पेन्टर थे। रामकुमार उनका कितना आदर करते थे। और वह दोनों कितने अच्छे मित्र थे। यह मैंने बहुत बाद में जाना, बरसों बाद बहुत अच्छा लगा दोनों का सौहार्द देखकर। और उसके चलते मेरी निर्मल से मुलाक़ात और मैत्री हुई। हम दोनों का स्वभाव और रुझान एक सा था। अर्न्तमुखी, मैंने अमेरिका में रहने के कारण ऊपर से हल्केपन का लबादा ओढ़ लिया था, पर निर्मल वैसे ही थे , मौन और अलग-अलग।

000

अमेरिका में दूसरा घर बिलकुल प्रशान्त की पसन्द का था। बहुत फ़ैन्सी, बड़ा, वह उन्होंने बिना मुझसे पूछे ख़रीद लिया। केम्ब्रिज मैसेच्यूसेट्स में, जहाँ हार्वर्ड विश्वविद्यालय है। प्रशान्त बहुत ढोल ढमाके के साथ आमंत्रित किये गए थे। और फिर वह एक साल बाद ही लौट गए थे। क्योंकि बालपन की सखी को, जो अब उनकी पत्नी थीं, अमेरिका बिल्कुल पसन्द नहीं आया था और उन्होंने चेतावनी दी थी, या मैं या अमेरिका, तो हार्वर्ड का ऑफर ठुकरा कर वह वापस चले गए थे। मुझसे उनका परिचय एक कॉन्फ्रेंस में हुआ था। जिस सत्र में मेरा आलेख था। उसके वह अध्यक्ष थे। कॉन्फ्रेंस इस्लामाबाद में थी। मुझे अमेरिका के विस्कांसिन विश्वविद्यालय की प्रोफ़ेसर के रूप में निमंत्रण मिला था। पर जब कराची पहुँचकर मेरा भारतीय पासपोर्ट देखा गया तो वहाँ खलल मच गया। उन दिनों भारत और पाकिस्तान के बीच बहुत मसले चल रहे थे। और मुझ पर अमेरिकन विश्वविद्यालय की आड़ में पाकिस्तान आकर जासूसी करने का आरोप लगा दिया गया था। पर मैं तो पहुँच ही गई थी। कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष ने काफ़ी दौड़ धूप करके यह विश्वास दिला दिया था कि कॉन्फ्रेंस के दौरान मैं होटल में नज़र बन्द रहूँगी और जब कॉन्फ्रेंस के अन्य सदस्य पाकिस्तान घूमने मरी और कश्मीर जाएँगे, तब तो मैं उनके साथ बाहर जाने की सोचूँगी नहीं!

अन्य पाकिस्तानी जो कॉन्फ्रेंस में भाग ले रहे थे। मेरे साथ मैत्री और सौहार्द का व्यवहार कर रहे थे। उन्हीं लोगों ने मुझे सुझाव दिया। मैं बाहर उन्हीं के ग्रुप में जाऊँ, तो उन्हीं के साथ मेरा रावलपिन्डी, पेशावर और लाहौर घूमना फिरना हुआ। सलवार कुर्ते और दुपट्टे में, विशेषकर जब सर ढँका हो, तो मैं कहीं से भी पाकिस्तानी न लगूँ। यह संभव नहीं था। मुझे सर ढँकने में आपत्ति नहीं थी, क्योंकि जीवन भर माँ को सिर ढँके देखा था। न जाने कैसे धोती का किनारा उनके सिर पर टिका रहता था, तो सिर ढँक कर, पाकिस्तान बुद्धिजीवियों के साथ मैंने बहुत घुमाई की। लाहौर में चलते हुए मुझे हर समय लगता था कि जैसे मैं पुरानी दिल्ली में हूँ। लखनऊ में बड़े होने के कारण उर्दू भी ठीक-ठाक ही थी। पर समस्या थी, कॉन्फ्रेंस के दौरान, जब हर सत्र में आम पोशाक में पाकिस्तान पुलिस और मिलिट्री के लोग शरीक़ होते थे। तब मुझे बहुत संयत और होशियारी से रहना पड़ता था। मेरे पाकिस्तानी मित्रों ने बता दिया था। मेरे पेपर पढ़ने के बाद मुझसे तरह-तरह के प्रश्न पूछकर तंग करने की योजना बन रही है। पढ़ते समय मैं बहुत घबराई हुई थी, काली शलवार, कुर्ते और ढँके सर के बावजूद जब श्रोताओं ने खड़े होकर अजीब सवालों की बौछार भी शुरू कर दी। तब मैंने अपने को संयत करके तीन चार प्रश्नों का उत्तर दिया, पर जब एक दम तीन पुरुषों ने खड़े होकर अर्नगल सवाल पूछने चाहे, तो प्रशान्त ने एक मँजे हुए प्रोफ़ेसर की भाँति उनका उत्तर देते हुए सत्र समाप्त कर दिया। और मेरे सत्र के दो और वक्ता और प्रशान्त मेरा बचाव करते हुए कमरे से बाहर ले आए।

वर्षो तक हमारा यह सद्भाव का संबंध बना रहा, जब मैं हेल्सिंकी से लौटते हुए दो तीन -दिन कोपेने हेगन में शापिंग के लिये रुकी तो प्रशान्त ने ही मेरी सहायता की। मैंने तभी यह घर ख़रीदा था। और चाहती थी कि सोफ़े, कुर्सियाँ, डायनिंग टेबिल, लैम्प, बर्तन सब डेनमार्क से ही खरीदे जाएँ। वह बहुत सदाशयता से साथ रहे। बड़ी-बड़ी दुकानों में डेनिश में बात करते हुए, सामान को अमेरिका भेजने का प्रबन्ध करते हुए, परन्तु उन्होंने मुझे अपने परिवार से नहीं मिलवाया।

"वह बहुत शर्मीली है, तुम्हारी जैसी स्त्री से मिलना, उसे झिझक हो रही है।" उन्होंने अपनी पत्नी के बारे में कहा था।

मेरी जैसी स्त्री? मैंने सोचा यदि प्रशान्त न भी साथ होते तो भी मैं शापिंग कर सकती थी। अपने आप। मेरी पड़ोसिन, डेनिश सहेली उन दिनों डेनमार्क में ही थी, और मैं उससे मिली थी।

जब प्रशान्त ने कॉन्कॉर्ड एवेन्यू पर अपना घर ख़रीदा तो बहुत साल बीत चुके थे। एक दुर्घटना में उनकी पत्नी का देहान्त हो चुका था। बड़े बेटे ने विवाह कर लिया था। दूसरा बेटा भी जैसा स्कैंडिनेविया का चलन है। अपनी गर्लफ्रेन्ड के साथ रह रहा था और एक

पुत्र का पिता भी बन चुका था। पत्नी की मृत्यु के बाद अपना घरबार ज़मीन जायदाद सब दो बेटे में बाँटकर, वृद्धा माँ, बड़ी बहनों और प्रख्यात विश्वविद्यालय की चासंलरशिप छोड़ कर अमेरिका आ गए थे और हार्वर्ड में पढ़ाने लगे थे।

तब तक बौस्टन और उसके आस-पास के घरों के दाम इतने बढ़ गए थे कि नए लोग आने में हिचकिचाने लगे थे। तब कैम्पस के पास खाली पड़ी हुई ज़मीन पर यूनिवर्सिटी ने एक दम अत्याधुनिक, एक आर्किटेक्ट द्वारा डिज़ाइन किये हुए बीस बाइस घर बनवाये, तीन मंजिलों के। हर घर का अलग डिज़ाइन और हर दो घरों के बीच सांझे की एक दीवार से जुड़े हुए। प्रशान्त ने चुनकर औरों से पहले ही अपनी पसन्द का घर ले लिया। उस घर में भी तीन दरवाज़े थे। आगे से घुसो तो सामने ही ऊँची-ऊँची दूसरे तल जाती सीढ़ियाँ, नीचे एक गैलरी और उसके बाद दो कमरे, जिनमें से एक का दरवाज़ा पीछे खुलता था। जहाँ आँगन था और फुलवारी, तीसरा दरवाज़ा गेराज से अन्दर आने का था। दूसरी-तीसरी मंजिल तक कोई दरवाज़ा नहीं था। बस हर कमरे के आगे बालकनी थी। उससे नीचे कूदा तो नहीं जा सकता था, हाँ मदद के लिये गुहार लगाई जा सकती थी।

जिन दिनों निर्मल वर्मा और गगन एक वर्ष के लिये वहाँ आए थे, मैं मेडिकल लीव पर थी, क्योंकि वर्फ़ पर फिसलने के कारण मेरी टाँग टूट गई थी। और मैं केम्ब्रिज में ही थी। प्रारंभ में मुझे वह घर बिलकुल पसन्द नहीं था। ऊँची सीढ़ियाँ चढ़ो तब बैठक, स्टडी और खूब बड़ी सी रसोई। पीछे बालकनी, और सीढ़ियाँ चढ़ो तो फिर स्टडी और शयन कक्ष जैसे मैडिसन का यह घर मेरा था। मेरी छाप थी, मेरी पसन्द की चीज़ें, इसी तरह हार्वड कैम्पस का वह घर प्रशान्त की पसन्द का था। फ़र्नीचर, पर्दे, म्युज़िक सिस्टम, सब तो वह साथ लाए थे। अमेरिका में नया जीवन प्रारंभ करने के लिये। धीरे-धीरे वह घर मेरा बनने लगा। स्टडी में दो हिन्दी की पुस्तकें आ गईं। चित्रा मुद्गल की 'आवाँ' और मेरा एक कहानी संग्रह। रसोई में कढ़ाई, चकला, बेलन

धीरे-धीरे एकत्र होने लगे। हल्दी, मिर्च, गरम-मसाले, दालें, बासमती चावल, बेसन, आटा। बड़े बेड रूम की अलमारी में मेरे कपड़े, साड़ियाँ, सलवार, कुर्ते, फुलवारी में मेरे लगाये फूल- और हरे बोन्स के झुरमुट।

वहाँ निर्मल वर्मा और गगन का आना बहुत सुखद लगा। निर्मल से मेरी पुरानी और सहज मैत्री थी। एक खुलापन। निर्मल ने कहा, "अब मेरी मेरिज हो गई है, तुम मुझे आप कहा करो।"यानी मेरी निकटता और 'तुम' कहना शायद नई पत्नी को न भाया होगा।

"मुश्किल होगा।" मैं हँसी "कोशिश करूँगी।" पर जबान पर "तुम" इतना चढ़ा था कि आप निकलता ही नहीं था। उससे बचने के लिए हम अंग्रेज़ी में ही बात करने लगे। प्रशान्त भी उतनी हिन्दी नहीं समझते थे। अंग्रेज़ी का यू आप भी था, और तुम भी। जब मैने निर्मल को उस पहली कहानी की बात बताई तो वह बहुत आश्चर्य में पड़ गए; क्योंकि उन्हें उस कहानी की बिल्कुल याद नहीं थी। वह बार-बार उस कहानी के बारे में पूछने लगे। अगर मुझे न शीर्षक याद था न विषय,बस यह कि एक आदमी खाटपर लम्बी सफ़ेद चादर ओढ़कर सोया रहता था और उसकी प्रेमिका जाते-जाते उसका साबुन उठा ले गई थी। बस इतनी याद है कि रामकुमार के छोटे भाई निर्मल की वह कहानी पढ़कर मुझे लगा था कि ऐसी कहानी तो मैं भी लिख सकती हूँ।

"तो तुम्हारे लेखिका बनने में मेरी उस कहानी का हाथ है।"

निर्मल कहते थे- "और देखो, तुम मुझसे अच्छी लेखिका बन गई।"

"अरे जाओ, तुमसे अच्छी तो नहीं।"

निर्मल ने प्रशान्त को देखकर अंग्रेज़ी में कहा, "उषा में यही खराबी है। यह अपने को अच्छी लेखिका मानने को तैयार ही नहीं होती।"

प्रशान्त हमारी नोकझोंक पर मुस्कराते रहते थे। गगन चुप रहती थी। वैसे भी मेरे मित्र लेखकों की पत्नियाँ मुझे पसन्द नहीं करती थीं। चाहे शीला साहनी हो या चम्पा वैद। अपवाद थीं तो वह वीणा वर्मा, श्रीकान्त की पत्नी।

मुझे हमेशा अपने को, पूर्ण रूप से स्वीकार करने में मुश्किल होती आई है। प्रशंसा से मुझे उलझन होती है। यह नहीं कि मन ही मन मुझे लगता है कि 'मैं' फ्राड हूँ, बल्कि मुझे बड़े होते हुए समाज से केवल अवज्ञा और तिरस्कार ही मिला। उसने मेरे किशोर मन पर इतने गहरे ज़ख्म डाले हैं कि वह मेरे व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन गए हैं। वह मेरे अर्न्तमन के दानव हैं, जो अब मौन हैं पर जो क्षति पहुँचानी थी वह तो पहुँच ही चुकी है।

000

नेत्रहीन कवि बोरहेज़ ने मेरी बंगलोटी सिल्क की साड़ी छूते हुए अपने स्पैनिश अनुवाद से पूछा, "सुन्दर है?"

"बहुत।"

और मैं झैप गई थी।

000

काले साहब ने जो असल में गोरे थे, मेरी जन्मकुंडली देखकर कहा था, "तुम्हारा जीवन ऐसे बीतेगा, जैसे सरौते के बीच सुपारी।"आगे बोले, "कभी घमंड मत करना, न रूप पर, न गुण पर, न धन पर। जिस दिन मन में घमंड आ जाएगा उसी समय बुध झपट्टा मारकर तुम्हें उठा ले जाएगा।"

मेरे बहनोई, भारतभूषण हांडा, जो इन बातों पर विश्वास करते थे, बोले-"सुना, कभी भी घमन्ड मत करना।"

000

प्रशान्त और निर्मल की बहुत पटती थी।

देर तक दोनों कोन्याक पीते हुए, साहित्य, कला, दर्शन की बातें करते रहते थे। निर्मल उन दिनों शायद 'अंतिम आरण्य' लिख रहे थे, चुपचाप, दिन भर। बताते नहीं थे, मैं पूछती रहती थी, "निर्मल आजकल क्या लिख रहे हो?" तो बस अपनी विशिष्ट गूढ़ मुस्कान से टाल देते थे। कभी-कभी गगन हमें अपने फ़्लैट पर चाइनीस खाने पर बुला लेती थी पर टूटी टाँग पर पलस्तर लगा होने के कारण मुझे आने-जाने में दिक़्क़त होती थी; इसलिए हमें निर्मल और गगन का अपने घर आना ही अच्छा लगता था। उन दिनों मेरी मित्र निर्मला जैन की पुत्रवधू नूतन ब्यूटी पार्लर खोलने के चक्कर में थी। उनकी लंबी लिस्ट मेरे पास आ गई थी। दर्जनों लिपस्टिकें, आई शैडो, मस्कारा, बाल रंगने के डिब्बे, शैम्पू। भारत से लिस्टें आती हैं, विशेषकर तब जब यह सम्मान वहाँ उपलब्ध न हो या कल्पनातीत महँगा हो, तो दुकान- दुकान भटककर वे फ़रमाइश पूरी करना तो अनिवार्य होता है। यद्यपि लोगों को याद नहीं रहता है और फटाक से कह देते हैं तुमने हमारे लिए किया ही क्या है? बहरहाल टाँग टूटी हो या नहीं, शॉपिंग तो करनी ही थी। मुझे पुत्र वधू की किफ़ायतशारी का पता था इसलिए गैलरिया मॉल में 'मेसी' या ऐसी ही बड़ी दुकान न जाकर दूर-दूर की छोटी दुकानों में ख़रीदारी करती थी, जिससे बचत हो। कभी-कभी निर्मल को भी खींच कर ले जाती थी। गगन तो अपनी पढ़ाई में व्यस्त रहती थी। निर्मल उस ठण्ड में भी एक पतली सी ऊनी जैकेट और गले में मफ़लर लपेट कर निकल आते थे। ज़ाहिर था दोनों पुरुषों को मेरी ख़रीदारी में बिलकुल रुचि नहीं थी। वे बैठकर कॉफ़ी पीते और मैं लिस्ट के अनुसार सामान ख़रीदती। मुझे निर्मल के हलके पहनावे पर चिंता रहती थी कि कहीं ठण्ड खाकर बीमार न पड़ जाएँ, इसलिए गरम गाड़ी से उतरकर कॉफ़ी शॉप तक रास्ते में उन्हीं की देखभाल में व्यस्त रहती थी। कभी उन्हें प्रशांत का गर्म पार्का ले लेने को कहती, कभी जैकेट। निर्मल हमेशा सिर हिलाकर मना कर देते थे। और मैं अचरज करती थी कि उनके अन्दर का जगत् इतना समृद्ध है कि उसका बाह्य जगत् से कोई नाता ही नहीं।

एक बार कई शापिंग बैग सँभाले और बैसाखी के सहारे लँगड़ाती हुई दुकान के काफ़ी कॉर्नर में आई, जहाँ प्रशान्त और निर्मल निश्चिन्त बैठे किसी बात पर मुस्करा रहे थे। मैंने बैग पास की कुर्सी पर रख दिये। निर्मल से तो अपेक्षा नहीं थी कि वह मेरे साथ रहकर मेरी ख़रीद फ़रोख़्त का निरीक्षण करें। पर निर्मल ने कहा "उषा, तुम दूसरों पर अपने को इतना खर्च मत कर कि अपने पास कुछ न बचे।"

उसके उत्तर में मैंने कहा, "मालूम है, रवीन्द्रनाथ ने क्या कहा है? उन्होंने कहा है कि जीवन जीना साहित्य से कहीं बड़ा है, अधिक महत्त्वपूर्ण है और तुम होकि अमेरिका आकर भी घर में घुसे रहते हो।"

बाद में किसी पत्रिका में मैंने निर्मल का साक्षात्कार पढ़ा। उसमें निर्मल ने राजकमल की प्रकाशक शीला संधू के घर एक असन्तुष्ट साहित्यकार से यही कहा "जीवन साहित्य से कहीं बड़ा होता है।"

मैंने प्रशान्त से कहा- "निर्मल ने मेरे द्वारा रवीन्द्रनाथ को कोट किया है- अच्छा लगा, मिलूँगी तो झगड़ा करूँगी।"

प्रशान्त हँसे-"तुम दोनों में झगड़ा हो ही नहीं सकता।"

झगड़ा उनमें होता है जो अपने को दूसरे से श्रेष्ठ कहते हैं। तुम दोनों तो एक दूसरे को ही अपने से अच्छा कहते हो।

अगली बार, कई महीनों बाद जब कॉनकॉर्ड एवेन्यू के उस घर में गई, तब तक निर्मल और गगन वापस जा चुके थे और पता चला कि सामने की दीवार के उस पार रहने वाले फिलिप ने आत्महत्या कर ली है। वह भी नीचे तल के कमरे में, जिसमें सामने का आँगन था। मैंने उस दरवाज़े पर भारी, मोटा पर्दा लगा दिया और पीछे आँगन में जाना ही छोड़ दिया पर जब घर में मेहमान, मैडिसन से प्रियमित्र, नीता और केवल आए तो अपना शयन कक्ष छोड़कर मुझे उसी कमरे में सोना पड़ा। अक्सर सोचती कि दीवार के उस पार मरते हुए फिलिप की क्या स्थिति रही होगी?परन्तु मुझे कभी वहाँ डर नहीं लगा, न कभी फिलिप प्रेत रूप में प्रकट हुए। वह दरवाज़ा बरसों बन्द रहा।

-000

अधिकतर घरों में एक ही दरवाज़ा होता है, मेरे बसन्तकुंज दिल्ली के फ्लैट में भी केवल एक ही बाहर जाने का दरवाज़ा है। अर्थात् तीनों कमरों के दरवाज़े बालकनी में खुलते हैंत् उस बड़े से दरवाज़े के खुले शीशे के किवाड़ों से मुझे आते हुए जहाज़ों की फुकफुक करती लाल बत्तियाँ दिखाई देती हैं और ध्यान देने पर, न देखते हुए भी मैं बता सकती हूँ कि यह जहाज़ अन्तर्राष्ट्रीय है, अर्न्तदेशी जहाज़ों का भी एक अपना स्वर होता है, एयर इंडिया का अलग और जब जेट एयरवेज़ का जहाज़ नीचे आने लगता था तो मैं यदि ध्यान देती तो बता सकती थी कि वह जेट एयरलाइन है।

अपने कमरे के उसी दरवाज़े से मैंने एक शाम नोटिस किया कि सड़क के पार, घर के ठीक सामने जो इमारत है, उसकी चौथी मंजिल पर आठ पौने आठ बजे बत्ती जलती है, और एक दुबला, पतला, गोरा सा सत्ताइस अट्ठाइस साल का लड़का बाहर आता है, वह हर मंजिल पर सीढ़ियों के घुमाव पर दिखाई देता है, नीचे उतरता है, हमेशा नंगे पैर रहता है। यह बात मुझे बहुत स्वीट लगती, कुछ देर बाद फ्लैट से एक स्त्री उतरती है, उसी की उम्र की या थोड़ी बड़ी भरा -भरा शरीर, सम्पन्न स्त्री के कपड़े-वह नीचे आती है अपनी सफ़ेद गाड़ी पर बैठकर चली जाती है। लड़का वहीं नंगे पैर जीन्स और टी-शर्ट में खड़ा-खड़ा उस गाड़ी को देखता रहता है उसको। फिर कुछ देर बाद, जब गाड़ी गेट से बाहर चली जाती है, वह धीरे-धीरे वापस सीढ़ियाँ चढ़ता है, रात को देर तक उसके कमरे की बत्ती जलती रहती है। लेखिका का दिमाग दौड़ा, यह तो स्पष्ट है कि दोनों में प्रेम संबंध चल रहा है। संबंध तो है, प्रेम का पता नहीं ; स्त्री की भावमुद्रा से तो नहीं लगता, गाड़ी से उतरती है, गाड़ी में बैठती है और न मुस्कराती है न बाई कहती है, पर आती रोज़ है; यदि रोज़ चली जाती है तो शायद परिवार के साथ रहती हो, शायद पति भी हो, घर पहुँचने का समय बँधा होगा; पीछे खड़ा प्रेमी

उदास होकर आता है। धीरे- धीरे वापस सीढ़ियाँ चढ़ता है, नंगे पैर। देखने में स्त्री से ज़्यादा अच्छा है।

अब उस दरवाज़े से फ्लैट नहीं दीखता; क्योंकि नीचे रहने वाली श्रीमती जी ने अवैध रूप से सामने की ज़मीन को हथियाकर उस पर आम का पेड़ लगा दिया है। वह इतना बढ़ गया है कि उससे मेरे दरवाज़ों के शीशे से कुछ नहीं दीखता, न सड़क, न उसके पार। उसे कटवाने के लिये वन विभाग से आज्ञा लेनी पड़ेगी। शाखाएँ मेरी बालकनी पर झुक आई हैं । कोई भी पेड़ पर चढ़कर बालकनी में कूद कर दरवाज़े का ताला तोड़कर अन्दर आ सकता है। मेरे अपत्ति करने पर नीचे के तल वाली उन श्रीमती जी ने इतना कलह किया और सारे मुहल्ले को जता दिया कि यह जो अमेरिका में रहने वाली स्त्री है। यह यहाँ पहले रहनेवाली अपनी शांतमना और गंभीर, दिवंगत बहन के बिलकुल विपरीत है। झगड़ालू और असहिष्णु! नीचे तल के रहने वाले पड़ोसियों ने, जिन्होंने भी सरकारी ज़मीन पर अवैध कब्जा करके हथिया लिया है। उनका साथ दिया।

"पेड़ कट नहीं सकता, जुर्म है।" संकट के प्रेसीडेन्ट कहते हैं। "मगर अवैध है। सरकारी ज़मीन है, हरेक प्रयोग के लिये। उसमें बड़ा घेर कर ताला लगाना कहाँ तक सही है।" मैं कहती हूँ। व्यर्थ का प्रयत्न।

"यहाँ ऐसे ही चलता है। जिसकी लाठी, उसकी भैंस।"भतीजी कहती है!

तो मेरे कमरे की उस बालकनी का दरवाज़ा बन्द ही रहता है। दूसरे कमरे का दरवाज़ा खोलो, तो वहाँ से कम से कम आठ दस पानी की टंकियाँ दिखाई देती है। जिनमें से कई हरवक्त टपकती रहती हैं। पानी गड्ढों में इकट्ठा होता रहता है। और वहाँ मच्छरों का डेरा रहता है। स्वच्छ भारत अभियान के बावजूद कागज़ की चिन्दियाँ, पुराने अख़बार, चाट के दोने, सूखी पत्तियाँ यहाँ से वहाँ तक बिछी रहती हैं। ले देकर बचा वही सामने का दरवाज़ा अब जब साल डेढ़ साल बाद उसका ताला खोलकर घुसती हूँ तो सीने में ढक् से कुछ लगता है; क्योंकि पहले हमेशा जिज्जी दरवाज़ा खोलकर मुस्कराती हुई मिलती थीं। मेरा कमरा धुलवा पुँछवा कर रखती थीं। अब मिलता है घर में धूलगर्द का अम्बार, मकड़ी के जाले, जमा हुआ कूड़ा- कर्कट-खुली रह गई खिड़की से अन्दर आ गई मरी हुई चिड़ियाँ। कभी कोई बिजली का मीटर चुरा ले जाता है या टेलीफ़ोन ख़राब है, या फिर पानी का पम्प ख़राब हो गया है। जब तक निशीथ, जो प्राय: मुझे एयरपोर्ट लेने आता है। फ़ोन करके इलेक्ट्रिशियन को बुलाता है। बाज़ार से पानी की बोतलें लाता है, मैं अपने कमरे का ताला खोलती हूँ।

"हलो बसन्तकुंज", "हलो आम का पेड़", मैं मन ही मन कह पलंग पर से धूल भरी चादरें, बड़े कवर हटाती हूँ। अब सूटकेस खोलकर धुली चादरें और गिलाफ़ निकालती हूँ- नई चादरें, गिलाफ़ मैं हमेशा अपने साथ लाती हूँ; क्योंकि मालूम है कि जिज्जी तो हैं नहीं जो सब प्रबन्ध करके रखेंगी।

दरवाज़े का पर्दा सावधानी से हटाती हूँ, कहीं सोती हुई मोटी छिपकली न गिर पड़े; देखती हूँ आम का पेड़ और बढ़ गया। पत्तियाँ की घनी छाँह से कुछ नहीं दीखता पर फुनगियों के ऊपर सड़क और पार्किंग लॉट के पार उस इमारत की चौथी मंजिल दीख रही है। वहाँ बालकनी में एक साड़ी सूख रही है। शाम अकेली और उदास है, वह गोरा सा लड़का अब वहाँ नहीं रहता। शहर छोड़कर चला गया है, कहीं और नौकरी कर ली है। और वह भरे शरीर वाली स्त्री, बच्चों पति और गृहस्थी में क्या व्यस्त हो गई होगी? जिस प्रकार निस्पृह, निर्विकार रूप से गाड़ी में बैठकर बिना "बाई" किये वह चली जाती थी। लगता नहीं था कि वह सब कुछ छोड़कर प्रेमी के साथ चली गई होगी। क्या था वह? एक टाइमपास, एक सतही सा संबंध,पर वह लड़का आकंठ डूबा हुआ लगता था, जिस तरह वह गाड़ी का चला जाना देर तक देखता रहता था। और अवसाद पूर्ण मुद्रा से वापस सीढ़ियाँ चढ़ता था।

क्या हुआ दोनों का...

कौन जाने ?

000

क्रमश: (अगले अंक में जारी)

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2021

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

भ्रम

कविता वर्मा

गर्मियों के दिन में सूरज उगते ही सिर पर चढ़ जाता है उसके तेवर से सुबह का सुहानापन यूँ झुलस जाता है, जैसे गिरे हुए पानी पर गर्म तवा रख दिया गया हो। कहीं से ठंडक चुरा कर लाई हवाएँ भी सूरज की तपिश के आगे दम तोड़ देती हैं। उनका हश्र देख दिल-दिमाग़ मुस्तैदी से काम निपटाने की ताकीद करता है। वैसे भी इतने सालों की अनुशासित जीवन शैली ने मेघना को सुबह टाइमपास करना या अलसाना कभी सीखने ही कहाँ दिया? आँख खुलते ही घर के कामों की फेहरिस्त दिमाग़ में दौड़ने लगती है और उन्हें पूरा करने की बैचेनी भी। बरसों की आदत और कहीं कोई कोताही होने पर मिलने वाले कड़वे बोल आलस को आसपास भी न फटकने देते।

मेघना अभी घर के काम निपटा कर फुर्सत ही हुई थी कि उसका मोबाइल बज उठा। एक झुँझलाहट सी हुई जब यह विचार आया कि किसका फ़ोन होगा लेकिन फ़ोन बज रहा है तो उठाना तो होगा ही। नए नंबर को देख उसने असमंजस में फ़ोन उठाया दूसरी तरफ एक चहकती हुई आवाज़ थी "हेलो मेघना कैसी है तू? क्या यार कितने साल हो गए न मिले हुए, बात किए हुए, हमेशा तेरी याद आती है लेकिन तेरा नंबर ही नहीं था मेरे पास।"

दूसरी ओर की चुप्पी से बेख़बर वह आवाज़ अपनी खुशी बिखेरती जा रही थी, जबकि मेघना ने उसी आवाज़ के सहारे पहचान के सभी सूत्रों को तलाशना शुरू कर दिया था। इतना तो तय था कि फ़ोन उसकी किसी पुरानी सखी का है लेकिन कौन नाम याद ही नहीं आ रहा था। उस तरफ से जितनी खुशी और उत्साह छलक रहा था, मेघना उतने ही संकोच से भरती जा रही थी। खुशी की खनक में संकोच की चुप्पी सुनाई ही नहीं दे रही थी और इस खनक पर अपरिचय का छींटा मारने का साहस मेघना नहीं जुटा पा रही थी। तभी शायद चुप्पी ने चीख कर अपने होने का एहसास करवाया और वहाँ से आवाज़ आई, "अरे पहचाना नहीं क्या ? मैं सुमन बोल रही हूँ जबलपुर से।" नाम सुनते ही दिमाग में पड़े पहचान सूत्र एक बार फिर उथल-पुथल हुए और कहीं दबा पड़ा नाम सुमन कश्यप सतह पर आ गया।

"अरे सुमन तू, कैसी है, कहाँ है आजकल और तुझे नंबर कैसे मिला ?" मेघना के स्वर में भी थोड़ा उत्साह, थोड़ी खुशी छलकी जो सायास ही लाई गई थी। जबलपुर से जुड़े सूत्र के साथ बहुत आत्मीयता अब उसमें शेष न बची थी, लेकिन उसे प्रकट करना इतना सहज भी न था। कम से कम प्रचलित मान्यताओं के अनुसार तो पुरानी सखी और मायके के नाम का ज़िक्र प्रसन्न होने की अनिवार्यता थी।

पति, बच्चे, ससुराल की बातों के बाद आख़िर वह प्रश्न आ ही गया जिसकी आशंका मेघना को प्रसन्न नहीं होने दे रही थी। सुमन ने बताया था कि बाज़ार में बड़ी भाभी मिली थीं और नंबर उन्हीं से मिला है। नंबर के साथ ही उन्होंने कुछ उलाहने भी अवश्य दिए होंगे, जानती थी मेघना। वही उलाहने प्रश्न बनकर आने से आशंकित थी वह। अचानक उसे तेज़ गर्मी लगने लगी, जैसे सुमन के प्रश्न सूरज की तपिश लपेट कर उसके ठीक सामने आ खड़े हुए हैं। अच्छा कहकर बात खत्म करने की कोशिश की उसने, लेकिन उस तरफ से बात तो अब शुरू होना थी।

"भाभी कह रही थीं कि तू मायके नहीं आती दो-तीन साल हो गए, ऐसा क्यों, कोई बात हो गई क्या?" सुमन ने कुरेदते हुए पूछा तो थोड़ी अनमनी सी हो गई वह। यह भाभी भी न, हर किसी के सामने पुराण बाँचने बैठ जाती हैं। सुमन ने नंबर माँगा था दे देतीं, मैं मायके आती हूँ नहीं आती बताने की क्या ज़रूरत थी?

कविता वर्मा
542 ए, तुलसी नगर
इन्दौर, मप्र 452010
मोबाइल- 9827096767
ईमेल- kvtverma27@gmail.com

मन में उठते इन असंतोषी भावों को दबाकर वह हँसी की आवाज़ निकालते हुए बोली "अरे ऐसा कुछ नहीं है पहले संयुक्त परिवार था तो पीछे से सुकेश के खाने-पीने की चिंता नहीं रहती थी, बच्चे भी छोटे थे तो लंबी छुट्टी मिल जाती थी। अब गर्मी की छुट्टियाँ उनकी हॉबी क्लास, स्किल क्लास में निकल जाती हैं। अब बच्चों को छोड़कर जाना नहीं हो सकता न, अभी इतने समझदार भी नहीं हुए हैं। वैसे कभी-कभार किसी शादी में हमें निकलना होता है तो जबलपुर रुक जाती हूँ। और तू सुना कब आई जबलपुर, कब तक रुकेगी?" मेघना ने बिना रुके प्रश्नों की झड़ी लगाकर बातचीत की दिशा मोड़ दी। लगभग बीस मिनट की इस बातचीत ने मेघना को थका दिया। फ़ोन रख कर उसने पूरा गिलास भर पानी पिया और बेडरूम में आकर लेट गई।

यादों की गठरी के साथ दिक्कत ही यही है कि अगर उसे ज़रा सा छेड़ा तो यादें रुई के फाहे सी हवा में तैरने लगती हैं, फिर उन्हें समेट कर वापस बाँधना मुश्किल होता है, जब तक उन्हें सहला कर समेटा न जाए। मेघना ने बिस्तर पर लेट कर आँखें बंद कीं, तो अतीत के फाहे उसकी आँखों के आगे नाचने लगे।

बाईस की हुई थी वह जब उसकी सगाई सुकेश के साथ हुई थी। उसके पहले का जीवन आम भारतीय लड़की की तरह था, होश सँभालते ही खाना बनाना, घर के काम करना सिखा दिया गया था। तीन भाइयों की इकलौती बहन थी। यूँ खाने, कपड़े की कोई कमी न थी, सरकारी कॉलेज में पढ़ाई का विशेष खर्च भी न था लेकिन फिर भी कभी-कभी बहुत छोटी-छोटी बातों में भी लड़के लड़की के बीच का भेद उसे चुभता था। अम्मा खूब पढ़ी-लिखी तो न थीं, लेकिन सामाजिकता, व्यवहारिकता निभाना खूब जानती थीं। इसी खूबी के चलते बेटी को भी ससुराल में हर हाल में निभाने के लिए तैयार करने की उनकी सोच कई बार फाँस बनकर मेघना के दिल में धँस जाती। कभी-कभी वह शिकायत करती लेकिन सुनने वाला कोई न था। पापा को अम्मा की व्यवहारिकता पर पूरा भरोसा था और भाइयों में उसकी बात समझ सकने की संवेदनशीलता ही कहाँ थी? होती भी कैसे वे बचपन से ही इसे सामान्य व्यवहार की तरह देखते बड़े हुए थे।

सच तो यह था कि इतने बड़े भरे-पूरे परिवार में भी वह कई बार खुद को बेहद अकेला पाती, तो देर रात तक सिरहाने को अपना हमराज़ बनाकर अपने दुख कह लेती और दो-चार आँसू उसे अर्पित कर अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर देती। सहेलियों के बीच ऐसी बातें कम ही होती थीं और मेघना का संकोच कभी उनसे अपने दिल की टीस कहने न देता। वैसे भी कहने से होना क्या था? एक बार मुँह से निकली बात कहीं रोकी नहीं जा सकती और अपने परिवार की बातें बाहर करना उसे अच्छा नहीं लगता था। उसके इसी संकोची गुण ने उसका रिश्ता सुकेश से करवाया। एक रिश्तेदार की शादी में देखा था उसे उसकी ननद ने और अपनी तेज़तर्रार माँ के लिए उपयुक्त बहू के रूप में उसे पाया था। खुशी से फूली नहीं समाई थी वह। युवा मन में सपने अँगड़ाई लेने लगे थे। पिया से मिलन के सपने, अपने घर के सपने, प्यार भरे एक संसार के सपने। ऐसा संसार जहाँ वह अपनी मर्ज़ी से जी सकेगी। एक ऐसा परिवार जहाँ लोग उसे समझ सकेंगे, उसके दिल में कोई फाँस न गड़ेगी, कोई टीस न होगी। जहाँ उसे 'पराई अमानत है' के भाव से नहीं देखा जाएगा, वह उसका घर होगा, उसका अपना घर। अम्मा बाबू भाइयों के लाड़-प्यार के बीच भी पराई अमानत होने का भाव उसे सदैव आहत करता रहा उसे जताता रहा कि वह उसका अपना घर नहीं है इसलिए शादी का उसका उत्साह ज़्यादा ही था क्योंकि अब उसे अपना घर मिलने वाला था।

खुश तो अम्मा, बाबू और भाई भी बहुत थे बिना किसी मशक्कत के घर बैठे सुकेश जैसा काबिल लड़का मिल गया था। "नौकरी छोटी थी लेकिन आगे तरक्की की राहें खुली हैं मेहनत करेगा तो आगे बढ़ेगा। परिवार की हैसियत उन्नीस है लेकिन धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। लड़के का स्वभाव अच्छा है हाँ सास थोड़ी कड़ियल है लेकिन लड़की को निभाना ही पड़ता है और मेघना सीधी-सादी है निभा ही लेगी।" मौसी से फ़ोन पर बतियाते हुए कहा था अम्मा ने। अम्मा को अपनी परवरिश पर पूरा भरोसा था उन्हें पता था कि उन्होंने लड़की को लड़की की तरह पाला है बेकार में सिर नहीं चढ़ाया। मेघना सोचने लगी सिर नहीं चढ़ाया या उसे हर पल एहसास करवाया कि वह पराई है।

"मम्मी अब हम थोड़ी देर टीवी देख लें?" बेटी की आवाज़ से मेघना वर्तमान में लौट आई। यादों के फाहे कुछ देर के लिए परे हटा कर वह उठ बैठी। गर्मियों की लंबी दुपहरी बच्चों के लिए उबाऊ हो जाती है कितनी देर खेलें, कितना पढ़े, ज़्यादा देर टीवी वह देखने नहीं देती। पिछले तीन सालों से वह मायके नहीं गई है, एक दो साल बच्चों ने ज़िद की लेकिन अब वह भी समझ गए और खुद को आपस में ही व्यस्त रखते हैं। बच्चों के लिए टीवी चालू करके उन्हें सेव-परमल देकर मेघना वापस अपने कमरे में आ गई। यादें जब भी अपनी खोह से बाहर निकलती हैं दिल और दिमाग़ में इतने चक्कर लगाती हैं कि उनका पीछा करते, उन्हें ताकते इंसान थक जाता है। न जाने क्या चुंबकीय आकर्षण होता है उनमें कि उनसे नज़र हटाना उन्हें अनदेखा करना संभव ही नहीं होता। मेघना उनके इस प्रभाव से दूर जाना चाहती थी। कमरे में आकर उसने एक पल को बिस्तर को देखा जहाँ मीठी कड़वी यादों से भीगे फाहे बिखरे पड़े थे जैसे उसे चुनौती दे रहे हों कि एक बार गठरी से निकल चुके हैं हम, अब हम से बच कर बताओ तो जानें। क्या करे खुद को सौंप दे इन्हें या एक बार कोशिश करे बचने की। बाहर बच्चों के साथ बैठे या कुछ काम ही निकाल ले। कुछ देर खड़ी सोचती रही मेघना लेकिन वो खुद को खींचकर बाहर न ले जा सकी।

प्रथम मिलन की रात ही सुकेश ने उसे अपनी मम्मी के कड़े स्वभाव के बारे में इशारा कर दिया था और उनकी कड़वी बातों को अनसुना करने की हिदायत भी दी थी, जिसे उस समय तो वह समझ न सकी लेकिन जल्दी ही उसे उन बातों का मतलब समझ आ गया था। पता नहीं कौन सी ग्रंथि थी उनके मन में कि हर किए काम में मीनमेख निकाल लेती थीं

और फिर जो कोसना और बड़बड़ाना शुरू करतीं तो सामने वाले की सात पुश्तों को कोस कर जब तक आँसुओं से न रुला देतीं उनके मन को शांति नहीं मिलती। स्वभाव से संकोची मेघना अपनी सफाई में भी कुछ नहीं कह पाती। सास की शह पर जेठानी दुगना बैर पाले बैठी थीं मेघना से। मेघना की कामों में सुघड़ता, सलीका खटकता था उन्हें और छह को नौ बनाने में महारत हासिल थी। सुकेश उसका चेहरा देख कर ही समझ जाते कि आज अम्मा ने अपनी कुंठा निकाली है। उसे समझाते, बहलाते लेकिन उसके कोमल दिल में फाँस की तरह धँस चुके उन नुकीले बोलों को न निकाल पाते।

ऐसे में उसे इंतज़ार रहता मायके जाने का। भैया लिवाने आते, अम्मा सबके लिए सौगातें भिजवातीं पर सास का मुँह फूला रहता। जेठानी सारा काम उसके सिर पर थोप कर कोप भवन में जा बैठती। उनकी नाराज़गी रहती कि अब महीने भर उन्हें अकेले खटना पड़ेगा। भैया सब देखते, लेकिन निर्लिप्त रहते। बहन की ससुराल में कहते भी क्या? ट्रेन का लंबा सफ़र मेघना इंतजार करती भैया उससे पूछेंगे कि वह सुखी तो है? उसकी सास जेठानी के व्यवहार के बाबत दो शब्द कहेंगे। उन दो शब्दों में उनकी संवेदनाओं की ठंडक उसके तपते जलते दिल को सुकून देगी लेकिन भैया उससे कुछ नहीं पूछते न कहते।

अम्मा के गले लग कर उसकी रुलाई फूट पड़ती। जिसे बहुत दिनों बाद मिलने पर मन भर आता है कहकर वे टाल देतीं। उसके जाने पर अम्मा अच्छा खाना बनाती, भाई शाम को चाट, पकौड़ी, कचोरी, समोसे ले आते। रात में आइसक्रीम खाने या गन्ने का रस पीने जाते। बुआ, चाचा, मामा, मौसी उनके बच्चों की खूब बातें होती हैं, अम्मा को सबके सुख, दुख पता होते। वह सब की ख़बरें मेघना को देतीं और वह इंतज़ार करती रहती कि अम्मा एक बार तो पूछें कि तुम्हारी सास व जेठानी का व्यवहार तो ठीक है? ऐसा नहीं हो सकता था कि दूरदराज के हर रिश्तेदार के बात व्यवहार की ख़बर रखने वाली अम्मा मेघना की सास व जेठानी का व्यवहार नहीं जानती हों।

मेघना का इंतज़ार, इंतज़ार ही बना रहता। अम्मा का प्यार कचोरी, समोसे ,पकवान, साड़ी, ब्लाउज में बरसता रहता, लेकिन प्यार और सांत्वना के दो बोल उसे कभी सुनने को नहीं मिलते। मायके में अभी भी वह उतनी ही अकेली थी जितनी शादी के पहले। कभी-कभी रात में तकिये को ही अपनी व्यथा सुना कर वह आँसू अर्पित करती रहती तब उसे सुकेश की खूब याद आती। वह उसके आँसुओं को अपने दिल में समेट लेता था। उसका मन होता कि वह वापस लौट जाए लेकिन सुकेश मना कर देते। वह कहते "भले वहाँ कोई तुम्हारे मन की बात नहीं सुन रहा हो लेकिन तुम्हारे वहाँ रहने से यहाँ अम्मा और भाभी को यह भ्रम बना रहता है कि तुम्हारा एक और परिवार है। यह भ्रम बना रहने दो, जिस दिन यह भ्रम टूटेगा, तुम्हारा जीना मुश्किल कर देंगे दोनों।" उनकी बात सुनकर मेघना काँप जाती वह मायके में ससुराल से ज़्यादा परायापन महसूस करती लेकिन इस भ्रम को बनाए रखने के लिए सालों साल एक महीने के लिए मायके आती रही। मायके में सब साथ बैठते ढेरों बातें होती लेकिन जैसे ही मेघना की ससुराल के किसी सदस्य का ज़िक्र आता अम्मा तुरंत बात बदल देतीं। अपना दिल हल्का करने की एक आस जगने से पहले ही बुझ जाती।

उस रात वह बेहद खिन्न थी सुकेश को लेने आने में एक हफ्ता बाकी था। एक-एक पल परायेपन के बोझ से बोझिल था। वह पानी पीने उठी थी कि बाबू की आवाज़ सुनकर उसके कदम उनके दरवाज़े के बाहर ठिठक गए। "मेघना की माँ तुम इतनी कठोर क्यों हो जाती हो, ज़रा मेघना के दिल का हाल जान लोगी तो क्या हो जाएगा? जानती तो हो उसकी सास दुष्ट है, बेचारी साल भर में कितना कुछ झेलती है, तुम्हारे सहानुभूति के दो बोल उसे हौसला दे देंगे।"

"हौसला नहीं देंगे बल्कि कमज़ोर कर देंगे, जिन मायके में लड़कियों को पपोला जाता है उन्हें सासरे की कोई बात सहन नहीं होती। हर बात में रोना-बिसुरना शुरू कर देती हैं और उठ कर चल देती हैं मायके, मुझे यह तमाशा नहीं चाहिए।"

"अरे लड़की दुखी होगी तो मायके ही तो आएगी न, कह सुनकर दिल हल्का कर चली जाएगी।"

"और नहीं गई तो? सारी ज़िंदगी छाती पर बैठा रखोगे? तुम्हें सिर्फ बेटी दिख रही है मुझे आगे तीन बहुएँ भी लाना है। इस तरह आए दिन बेटी के रोने चलेंगे तो बहुएँ न उसकी इज़्ज़त करेंगी और न हमारी। कौन सा सास मारपीट गाली-गलौज करती है, ज़रा कड़वा ही तो बोलती है तो कौन सी नई बात है? हज़ारों लड़कियाँ सास-जेठानी के कुबोल सुनती हैं, हर बात को दिल से लगाना ज़रूरी है क्या?"

अम्मा का कुपित स्वर सुनकर दंग रह गई थी मेघना। "हम भी दिए-लिए में कोई कमी नहीं रखते मायके के लेनदेन से बहुओं की इज़्ज़त बनी रहती है। थोड़ी बहुत ऊँच-नीच तो चलती रहती है।"

"अरे मैं कहाँ मना कर रहा हूँ लेकिन प्यार से एक बार पास बिठाकर... " बाबू की बात अधूरी ही रह गई।

"देखो जी अब मुझे मत सिखाओ मैंने दुनिया भी देखी है और दुनियादारी भी। लड़की पराई हो गई है अब अच्छा, बुरा जैसा भी है उसे वहीं निभाना है। जमाई बाबू अच्छे हैं ध्यान रखते हैं मेघना का। सास भी कब तक बकेगी, कल को बूढ़ी होकर खुद ही चुप हो जाएगी। हमारा न बोलना ही ठीक है, मेघना के लिए भी और अपने लिए भी।"

मेघना की वह पूरी रात रोते हुए बीती, इतना परायापन तो उसे अपने ससुराल में पहली रात भी नहीं महसूस हुआ था, जितना उस रात उस घर में महसूस हुआ जिसमें उसने उम्र का एक बड़ा हिस्सा गुज़ारा था। अगले दिन उसकी सूनी आँखों को नज़रअंदाज़ कर अम्मा दही बड़े बनाने में जुटी रहीं। मेघना अम्मा को देखकर सोचती रही कि क्या सचमुच में वे उसकी सगी अम्मा हैं? क्या कारण है कि वह उससे इस कदर पराया पन पाले हैं? क्या लड़की का ससुराल छोड़कर मायके में आ बैठने का डर इतना बड़ा है कि दुनियादारी में निपुण अम्मा प्रेम और

सहानुभूति के दो बोल भी मेघना के लिए नहीं जुटा पातीं। या अम्मा को मेघना से कोई डाह है जिसके चलते वे उसे भावनात्मक रूप से अकेला करती रहती हैं। उस दिन गले में खराश होने की बात कहकर मेघना ने दही बड़े की प्लेट परे सरका दी।

मेघना को याद आता है बचपन में उसे गाने का शौक था। कभी रेडियो के साथ कभी अकेले उसकी सुरीली आवाज़ घर में गूँजती रहती थी। बाबू और भाई उसके सुरीले गले की, उसे याद रहने वाले गाने के बोलों की तारीफ भी करते थे लेकिन तब अम्मा तिनक जातीं।

"सारे दिन बस कूकती ही रहो कोई काम बताना हो तो चार बार कहो तब एक बार सुनती हैं महारानी।" कभी कहतीं "अब बस भी करो क्या सारा दिन चें चें लगाए रहती हो?" धीरे-धीरे मेघना अपने खोल में सिमटने लगी। यूँ उसे खाने पहनने ओढ़ने की कभी कमी नहीं की अम्मा ने लेकिन ऐसा भी नहीं कि बात मुँह से निकली और पूरी कर दें। भाइयों की कमी बेशी एक दूसरे के कपड़ों से दूर हो जाती, उसके कपड़े उसका सामान सिर्फ उसी का होता। घर के काम में हाथ बँटाना बचपन से शुरू कर दिया था उसने। अम्मा अकेली, छह लोगों का परिवार जिनमें तीन-तीन लड़के। थक जाती थीं अम्मा और उनका क्लांत चेहरा देखकर मेघना खुद ही ज़िम्मेदारी से काम करती।

दोनों बच्चे जब हुए तब भी उसे मायके ही भेजा गया और मेघना को मन मार कर आना पड़ा। अम्मा ने खूब ख़्याल रखा, दूध, दलिया, हरीरा लड्डू की खिलाई पिलाई मालिश तक का इंतज़ाम किया। बच्चों का रात बिरात उठना, रोना, अम्मा साथ खड़ी रहतीं और सवा महीने होते न होते अम्मा फिर अपने रंग में आने लगतीं। "बच्चे को ज़्यादा देर गोद में न रखो उसकी आदत बिगड़ गई तो काम कैसे करोगी? थोड़े-थोड़े घर के काम करो वहाँ कौन झूला झूलाएगा? गंदे कपड़े हाथों हाथ धोओ वहाँ कौन नाउन आएगी?" उठते-बैठते, खाते-पीते हर बात में वहाँ की चिंता। वहाँ मेघना को हर मोर्चे पर हर परीक्षा में खरा उतरना है और उसके लिए तैयारी करवाने अम्मा कमरकस के खड़ी रहतीं। उनकी बातें सुन मेघना घबराने लगती, ऐसा लगता है मानों उसे युद्ध के लिए तैयार किया जा रहा हो।

बच्चे के जन्म के बाद अम्मा ने पच में पूरे घर को कपड़े किये। बच्चे के लिए चाँदी की कटोरी-चम्मच, पायल, करधन, सोने की हाय, सास जेठानी को साड़ी सुहाग का सामान, ससुर जेठ और सुकेश को सफारी सूट, फल, मेवे, मिष्ठान लेकर वे गाजे-बाजे के साथ पहुँची थीं। न जाने क्यों मेघना को लगता रहा कि यह सब अम्मा खुद की व्यवहार कुशलता और ठसक दिखाने के लिए कर रही हैं। उनके देने में एक दर्प दिखता उसे और वह लेने में कभी सहज नहीं होती। इस लेन-देन के बाद सास कुछ दिनों के लिए ठंडी पड़ती लेकिन जेठानी का मुँह फूल जाता। उसे अपनी स्थिति मेघना से कमतर दिखती और खुद को श्रेष्ठ दिखाने के लिए उसकी जीभ ज़हर उगलती। कुल मिलाकर मेघना के लिए तो कोई राहत नहीं थी।

अब तक मेघना सुकेश पर इतना विश्वास कर चुकी थी कि वह अपने दिल की बातें उसे कह सके, फिर वह बातें सास और जेठानी की हों या अम्मा की। सुकेश उसकी बात सुनते समझते सांत्वना देते लेकिन घर के सदस्यों के बीच उसके समृद्ध परिवार का भ्रम बनाए रखने की सलाह भी देते और मेघना को मन मसोसकर भी उसे मानना ही होता।

दूसरे बेटे के जन्म के बाद मेघना ने उन्हें पच करने को मना किया था लेकिन अम्मा अड़ गईं, कुछ तो करना होगा आख़िर बेटा हुआ है। सुकेश ने भी मना किया था लेकिन ज़माने का चलन बताकर अम्मा ने उन्हें भी चुप कर दिया।

बड़े भैया की शादी की बात चल रही है मेघना ने सुना, तो हुलस पड़ी। बड़े भैया का उस पर बहुत स्नेह था। कभी-कभार उसको खिन्न देखते तो सब्ज़ी-भाजी लाने कभी मंदिर दर्शन के बहाने उसे थोड़ी देर घर से बाहर ले जाते, इधर-उधर की बातें कर उसका मन बहलाते, बस उसके दिल का हाल उसके मन की बात कभी न पूछते। न जाने अम्मा के कड़े निर्देश थे या वे यह बातें करना ही नहीं जानते थे फिर भी इतना तो समझ रहे होते कि मेघना उदास है और यही एक बड़ा सुकून था उसके लिए।

पहली भाभी लाने का चाव मेघना को भी था। उसने फ़ोन पर पूछा था अम्मा से, कौन-कौन सी लड़कियाँ हैं, कहाँ -कहाँ के रिश्ते हैं, कितना पढ़ी-लिखी हैं, मुझे भी तो फोटो दिखाओ, मोबाइल पर भेज दो। दो बच्चों की माँ हो चुकी थी मेघना तब तक, थोड़ी बहुत दुनियादारी तो सीख ही चुकी थी। अम्मा ने 'अभी कोई विचार नहीं बना है जब बनेगा तब बताएँगे' कहकर बात टाल दी। मेघना को पूरी उम्मीद थी कि भैया की शादी तय करने से पहले अम्मा एक बार तो उसकी राय पूछेंगी, लेकिन न सिर्फ उसकी उम्मीद टूटी बल्कि उसने खुद की उपेक्षा का जो कड़वा घूँट पिया उस ने शादी के उसके उत्साह को पूरी तरह खत्म ही कर दिया।

बाबू जी की चिट्ठी आई थी ससुर जी के नाम, जिसमें शादी तय होने की ख़बर के साथ शादी की तारीख़ की सूचना भी थी। इसके साथ ही सब कुछ अचानक तय होने के कारण पूर्व सूचना न देने का खेद भी व्यक्त किया गया था। मेघना ने सबकी नज़रों में प्रश्न का सामना पत्र की इबारत की आड़ लेकर ही किया, लेकिन हर बार अम्मा की उपेक्षा का दंश उसे कोंचता रहा।

शादी की गहमागहमी में अम्मा को मौसी से कहते सुना था मेघना ने "समधियाने में पहले बताते तो उनके बताए रिश्ते देखने-सुनने पड़ते। पसंद आते न आते तो व्यवहार बिगड़ता इसलिए हमने तो मेघना तक को ख़बर न दी। लड़की पराई हो गई है, अपना घर देखे, मायके के काम में शामिल हो लेकिन ज़्यादा घुसना भी ठीक नहीं।" मेघना सुनकर सन्न रह गई। जो अम्मा नानी, मामा, मामी ही नहीं मौसियों तक को समझाती रहती हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए क्या नहीं उनका अपनी बेटी को इस तरह पराया कर देने का कलेजा कैसे होता है? अम्मा की बातें मेघना को व्यथित करती रहीं। वह जबरन ओढ़ी मुस्कान के बोझ से थक कर जल्दी ही बेटे को

सुलाने के लिए अंदर कमरे में चली गई।

अम्मा ने विदाई में बढ़िया साड़ी, सफारी सूट, बच्चों के कपड़े, मिठाई सब दिया लेकिन मेघना को वह मान नहीं दे पाईं जिसकी उसे चाहत थी। कभी-कभी वह सोचती अम्मा उसके साथ ऐसा क्यों करती हैं क्या वह उनकी सौतेली बेटी है? यह संभावना शून्य थी। उसके जन्म के समय के कई किस्से वह सुन चुकी थी। या अम्मा को चार बेटों की चाह थी और वह अवांछित लड़की है, या अम्मा उसी धुर सोच से पीड़ित हैं कि लड़की पराया धन है और अब कन्यादान होने के बाद तो वह दूसरे घर की हो चुकी है। कारण जो भी रहा हो यह तय था कि अम्मा साल में एक बार आने-जाने लेनदेन का व्यवहार कुशलता से निभा रही थीं लेकिन उसके ससुराल के तनावपूर्ण माहौल को देखते हमेशा इस आशंका से जूझतीं कि कहीं मेघना वापस न आ जाए। उसके लिए अब इस घर में कोई जगह नहीं थी। उसके वापस आने से उनका बुढ़ापा उस सोचे हुए तरीके से नहीं व्यतीत होता और उस सुख की तिलांजलि देने के लिए वे तैयार नहीं थीं खुद की जाई बेटी के लिए भी नहीं। अब वह पराई थी और पराए लोग मेहमानों की तरह दो-चार दिन तो अच्छे लगते हैं लेकिन फिर भी घर की महत्त्वपूर्ण बातों निर्णयों में शामिल नहीं किए जाते। उनसे एक दूरी रखते व्यवहार किया जाता है। मेघना के तनावपूर्ण जीवन की कोई परछाई वे अपने जीवन पर पड़ने नहीं देना चाहती थीं जिससे उनके बुढ़ापे पर कोई असर पड़े, उनका बुढ़ापा किसी भी तरह के तनाव से ग्रसित हो।

वहीं दूसरी तरफ मेघना का ससुराल था जहाँ हर काम में उसका शामिल होना ज़रूरी था वह घर की बहू थी। बड़े फैसलों के लिए छोटी बहू से कुछ पूछना विचार विमर्श करना बड़ों की समझ को स्वीकार न था। काम करते हुए ताने देना, मीन मेख निकालना, बड़ों का अधिकार था। दोनों जगह पिसती मेघना के आहत मन को सुकेश की बाहों में सुकून मिलता। कभी-कभी वह उसकी स्थिति देख विचलित हो जाता उसे लगता कहीं उसकी छोटी नौकरी, कमज़ोर आर्थिक स्थिति तो इसका कारण नहीं है, लेकिन वह यह विचार मेघना को देकर उसका तनाव और नहीं बढ़ाना चाहता था।

दूसरे भाइयों की शादी और भतीजे भतीजियों के जन्म के समय तक मेघना मायके से बेजार हो चुकी थी। न उसे वहाँ जाने का उछाह था न लेन-देन का। बस एक भ्रम था जिसे बनाए रखना ज़रूरी था कि उसका मायका है, जिसमें उसका मान है उसे हर वर्ष बुलाया जाता है। वहाँ व्यवहार कुशलता है वे उनकी हैसियत से बढ़कर व्यवहार करते हैं। मेघना के सुख-दुख में वे साथ खड़े होंगे और यही बात उनके कड़वे व्यवहार पर अंकुश का काम करती।

सास की तबीयत अब ठीक न रहती थी। जेठानी घर पर अपना कब्ज़ा करना चाहती थीं। वे चाहती थीं कि मेघना और सुकेश वहाँ न रहें। सास कमज़ोर हुई तो जिठानी की ज़ुबान दुगना जहर उगलने लगी, जिसका बच्चों पर बुरा असर पड़ने लगा। अंतत: मेघना और सुकेश ने बहुत सोच- विचार कर अभावपूर्ण परंतु शांत ज़िंदगी जीने का फैसला करते हुए घर छोड़ दिया।

मेघना ने फ़ोन पर बताया था माँ को कि सुकेश और वह घर से अलग हो रहे हैं। वह तो बताना भी नहीं चाहती थी लेकिन सुकेश ने कहा बताना ज़रूरी है, उन्हें पता तो चल ही जाएगा फिर उन्हें बुरा लगेगा। अम्मा को तो बताने पर भी बुरा लगा था, "घर में सब के साथ निभाना चाहिए यह क्या कि छोटी-छोटी बातों पर घर तोड़ दो। लोग तो यही कहेंगे कि माँ-बाप ने ऐसे संस्कार दिए हैं।" मेघना हतप्रभ थी अम्मा को लोगों की फ़िक्र है उसकी उसके बच्चों की नहीं, खूब ग़ुस्सा हुई थी वह उस दिन सुकेश पर कि क्यों उसने अम्मा को फ़ोन करने को कहा? उन्हें न उसकी कोई फ़िक्र थी न है, उन्हें लोगों की पड़ी है या शायद..." कहते कहते रुक गई मेघना। "उन्हें अपने घर की चिंता है, कहीं उनकी बहुएँ भी बेटों को लेकर अलग हो गई तो? लेकिन वे ऐसा क्यों करेंगी? पान के पत्तों सा फेरती हैं अम्मा अपनी बहुओं को। मेघना मायके जाती है तो दो दिन आराम के बाद तीसरे दिन से भाभियों का हाथ बँटाने किचन में ठेल देती हैं। दो बच्चे और वह तीन जनों का बढ़ा काम भाभियों को भारी न पड़ जाए। इसी के साथ भतीजे, भतीजियों को नहलाने, धुलाने, खिलाने की ज़िम्मेदारी भी उसी की रहती। कभी-कभी उसे लगता मायके आकर वह ज़्यादा ही व्यस्त हो जाती है लेकिन बच्चों के प्यार के आगे और कुछ सोचना ठीक नहीं लगता। अम्मा भी सभी को सुनातीं 'बच्चे तो बुआ को छोड़ते ही नहीं हैं उसी के साथ खाना, सोना, कहानियाँ सुनना' अम्मा की बातों में छुपी चालाकी समझ मेघना मुस्कुरा भर देती।

वह अलग घर में रहने चली आई। दो कमरों का छोटा सा मकान किराए पर लिया था उन्होंने। अम्मा के फ़ोन आना अचानक ही बहुत कम हो गए थे। पहले भी बहुत फ़ोन तो नहीं करती थी वह, अब तो दो-दो महीने हाल-चाल भी न पूछतीं। ख़ैर हाल-चाल तो उन्होंने पहले भी कभी नहीं पूछे, अब पूछने का अर्थ होता उसके इस कदम को स्वीकार करना, जो तीन बहुओं वाली सास के लिए सर्वथा उचित नहीं था।

उस वर्ष अम्मा ने उसे मायके आने का निमंत्रण नहीं दिया, उत्सुक तो वह भी नहीं थी, लेकिन इतने वर्षों से अपने परिवार का, मायके का जो भ्रम पाले हुए थी, उसका टूट कर चकनाचूर होना उसे गहरी टीस दे गया। फिर वह सिलसिला उसी ने तोड़ दिया। अब इस भ्रम को बनाए रखने की विशेष आवश्यकता भी नहीं रह गई थी। सुकेश ने किसी तरह उसे सँभाला था, समझाया था।

सूरज की तपन ढलान पर थी, शाम हो चली थी। बीते सभी बरसों से गुज़रते यादों के फाहे अब उसकी संवेदनाओं से भीग कर बैठने लगे थे लेकिन उनका बोझ उसे बैचेन किये था। बच्चे बाहर खेलने जाने की ज़िद कर रहे थे। वह उठी उनके लिए दूध बनाया और खुद भी बाहर जाने के लिए तैयार होने लगी। आज एक फ़ोन से, टूटे भ्रम के फाहे पूरे घर में फैले थे, जिन से बचने के लिए थोड़े समय बच्चों की खिलखिलाहटों के बीच पार्क में बैठना ही ठीक था।

000

पानी की परत

चौधरी मदन मोहन समर

कुटुम्ब न्यायलय के बाहर उदासी लिए ख़ामोश भीड़-भाड़ में खड़ी सभ्यता की आँखों में नमी और अधरों पर चुप्पी थी। यहाँ आने वाली हर महिला और पुरुष की आँखें अक्सर ऐसी ही गीली और सूनी होती हैं। पिछले एक दशक से इस ड्योढी पर लोगों का आना कुछ ज़्यादा ही बढ़ गया है। मकान जब से सीमेंट के हुए हैं, रिश्ते रेतीले होते चले गए हैं। होना तो यह था कि सीमेंट में मिल कर रेत को एकसार हो मज़बूत होना था लेकिन हो उल्टा ही रहा है। रेत सूखी होने से सीमेंट के मकान इन रिश्तों को बाँध ही नहीं पा रहे। अपेक्षाओं के पहाड़ से निकले झरने अधिकार पूर्वक समुद्र की विशालता को तक्काल पा लेना चाहते हैं, जबकि उसे पाने के लिए पहले सतत् नदी सा होना पड़ता है। वो नदी, जो निरंतर बहती है दुनिया के अवशिष्ट अपने में समेटती शनैः-शनैः मीठी होते हुए। नदी जानती है कि समुद्र को पाया नहीं जाता, समुद्र हुआ जाता है, अपना सम्पूर्ण मीठा उसे सौंप, उसका सारा खारा समेट अंगीकृत करते हुए। सभ्यता को लगता है वह अवशिष्ट हो कर रह गई है, ऐसे ही किसी झरने का नदी होने से पहले, धारा के परे किनारे पर किसी अनचाहे कटाव में उलझ। वह ठहरे हुए 'पानी की परत' है जिसे कोई मार्ग ही नहीं सूझता बस गोल-गोल घूमती सी रहती है उसी कटाव में।

सोलह साल की अव्यस्क सभ्यता जब वह खड़े-खड़े थक गई, तो अचानक खाली हुई एक बैंच पर बैठ गई। उसकी नज़रें सामने मुख्य द्वार पर लगी किसी का इंतज़ार करते हुए बेचैन हो रही थीं। बैंच पर बैठते ही एक चित्र उसके मानस पटल पर दौड़ने लगा। वह आँखें मूँदे हुए उस चलचित्र को देख रही थी जैसे-जैसे दृश्य आगे बढ़ते जा रहे थे, उसकी पलकें अपने तले की नमी को रोकने में असमर्थ हो रही थीं। उनकी तह की नमी से बहती हुई एक 'पानी की परत' आँखों की कोर पर उभर आई।

सभ्यता तब चार साल की थी, एक नन्ही सी, प्यारी सी, परी सरीखी। महँगे खिलौनों से भरे हुए उसके बाक्स, दुनिया भर के स्टाइलिश कपड़ों से सजे हुए वार्डरोब। तीन-तीन मेट उसकी देखभाल करने वालीं। और बहुत प्यार करने वाले नाना-नानी जो बस कुछ ही दूरी पर रहते थे। भोपाल के सभ्रांत इलाके अरेरा कॉलोनी के ई-2 ब्लॉक में बड़ा सा बंगला था सभ्यता के पापा दैदिप्य आनंद का। दैदिप्य का फलता-फूलता बिज़नेस था। पैसा कोसी नदी की बाढ़ की तरह जीवन में आया हुआ था। इसलिये आधुनिक होने से ज़्यादा आधुनिक दिखना बहुत ज़रूरी था। मम्मी कृति, जितनी ख़ूबसूरत थी, उतनी ही अपनी हाई प्रोफ़ाइल सोसायटी में बिंदास और प्रसिद्ध भी थी। उसकी एजुकेशन प्रोफ़ाइल बहुत रिच थी और वह प्राइवेट सेक्टर में निजी तौर पर काम कर अच्छा-ख़ासा पैसा कमा लेती थी।

दैदिप्य और कृति की मुलाकात एक हाई-प्रोफ़ाइल पार्टी में हुई थी। डेटिंग और कई साइट शेयर करते हुए साथ-साथ घूमने के बाद दोनों ने शादी का फ़ैसला किया था। एक दिन बड़ी शान-शौकत से होटल जहाँनुमा पैलेस मे दोनों की शादी का भव्य आयोजन सम्पन्न हो गया। शहर की कई प्रसिद्ध हस्तियों ने इस जोड़े को हेलो-हाय किया, कांग्रेचुलेशन देते हुए बेस्ट ऑफ लक कहा था। नव-युगल ने भी हाय-बाय में हाथ लहराते हुए सभी के इमोशन एक्सेप्ट किये थे। शादी के बाद आने वाले एक महीने तक दैदिप्य और कृति के दिन इजिप्ट से लेकर रोम और आस्ट्रिया से लेकर जिनेवा के ख़ूबसूरत नज़ारों में रोमांस करते हुए गुज़रे थे।

बिजनेस, टूर, विज़िट, एन्जॉय तथा पार्टियों के बीच दैदिप्य और कृति को साथ-साथ रहते चार साल गुज़र गए। पता ही नहीं चला। कभी कृति रात के समय व्हाटस्एप चैटिंग कर रही होती, वहीं दैदिप्य अपनी फैन्डस् पार्टी में बिज़ी होता, तो कभी दैदिप्य इंस्ट्राग्राम में खोकर नए-नए रोमांस कर रहा होता व कृति लेट नाइट पार्टी में बिज़ी होती। दोनो में बहुत ही मुक्त व्यवहार

चौधरी मदन मोहन समर
16, श्री होम्स, कोलार रोड
भोपाल, मप्र 462042
मोबाइल- 9425382012
ईमेल- shabdupasna@gmail.com

था। वैसी ही जैसे शादी के पहले दोस्तों के रूप थी। पति-पत्नी का रुतबा न तो उन्हें पसंद था और न ही उन्होंने अपने बीच में यह आने दिया था। लेकिन अचानक ही इनके बीच सभ्यता का आगमन हो गया। हालाँकि कोशिश तो दोनों की थी कि ऐसा कोई झंझट न हो, जिसे पालना झंझट बन कर दोनों के लिए उलझन खड़ी कर दे। लेकिन सभ्यता को आना था सो वह आ गई।

सभ्यता के जन्म के बाद कुछ समय तो दैदिप्य और कृति के जीवन की नाव सामान्य चलती रही, जैसी वह शादी के पहले से चल रही थी। लेकिन धीरे-धीरे परिस्थितियाँ करवट लेने लगीं। कृति को लगता था कि वह अगर सभ्यता पर ज़्यादा ध्यान देगी, तो उसका अपना कैरियर प्रभावित होगा। बस यही वजह थी कि नन्ही सी सभ्यता अपनी पहली किलकारी से ही नाना-नानी की गोद में रहने की अभ्यस्त हो गई। बच्ची के लिए मेट्स, खिलौने, कपड़े, स्कूल जैसे भौतिक साधन तो सारे मौजूद थे लेकिन सर्वाधिक ज़रूरी मानसिक संबल, माँ और पिता दोनों ही उससे दूर जैसे ही थे। नाना-नानी अगर न होते तो सभ्यता बहुत अमीर होकर भी नितांत ग़रीब थी।

सभ्यता की किलकारियाँ, उसकी बालसुलभ क्रियाएँ, उसका रोना-हँसना कृति और दैदिप्य के लिए कोई मायने नहीं रखता था। वक्त के साथ दोनों की अपनी ही एक अलग दुनिया आकार लेने लगी थी। सोशल मीडिया इस नई दुनिया को खाद-पानी दे रहा था। असल में कृति और दैदिप्य कभी पति-पत्नी हुए ही नहीं थे, वे तो पार्टनर थे। पार्टनरशिप का क्या है जब तक चले चले, न चले तो समाप्त हो जाती है। कुछ इसी तरह की पार्टनरशिप दोनो में थी जो आठवाँ साल आते-आते दिनों-दिन चरमराने लगी। यह पार्टनरशिप मन-मानस से हट बही-खाते पर अंकित सूद-ब्याज के हिसाब-किताब पर अटकने लगी थी। कृति का व्हाट्सएप आजकल बिज़नेस एडवाईज़र उदय एस रस्तौगी के साथ चैट में कुछ ज़्यादा व्यस्त था, तो दैदिप्य की रातें भी अरोमा के साथ एन्जॉय करने में गुज़र रही थीं। दोनों को ही अपनी पार्टनरशिप अब उबाऊ सी लगने लगी थी। कृति के मम्मी-पापा को जब यह सब पता चला तो उन्होंने दोनों को समझाने का प्रयास किया लेकिन दोनों को न समझना था न समझे। और अतंत: चरमराती हुई यह पार्टनरशिप भरभराकर ढह गई। इसे बचाने का न तो कृति ने कोई प्रयास किया न ही दैदिप्य ने। कृति को उदय रस्तौगी में ज़्यादा आकर्षण प्रतीत हो रहा था तो दैदिप्य अरोमा में बेहतर फीलिंग महसूस कर रहा था। लेकिन सभ्यता? सिर्फ चार साल की सभ्यता तो यह सब नहीं जानती थी। उसे मम्मी-पापा का साथ चाहिए था, किलकारियों पर ताली बजाने वाली मम्मी चाहिए थी, अपने कंधें पर बैठा कर दुलारने वाला पिता चाहिए था। उसे माँ का आँचल और पिता की अँगुली चाहिए थी, अपनी नन्ही-नन्हीं हथेलियों को चूमने वाले पापा-मम्मी चाहिए। उसे तो अपनी ड्राइंग बुक में खींची गई रंगीन लकीरों पर वैरी गुड कहने वाले पेरेन्टस् की ज़रूरत थी। लेकिन कृति और दैदिप्य में अपनी सभ्यता के लिए कोई सभ्यता बची ही नहीं थी।

दोनों ने तलाक ले लिया। तलाक होते ही कृति उदय रस्तौगी के साथ एन्जॉय टूर पर आस्ट्रेलिया चली गई और दैदिप्य अरोमा को लेकर आस्ट्रिया उड़ गया। दोनों ने अपनी नई पार्टनरशिप शुरू कर दी। यह समय की ही बात है कि जीवन दाम्पत्य से उतरकर पार्टनरशिप पर आ गया है। अब पार्टियों में कृति और दैदिप्य अवसर आने पर नज़रें नहीं चुराते थे बल्कि गर्मजोशी से एक-दूसरे का परिचय अपने-अपने एक्स के रूप में कराते थे। कई बार तो उनके सामने प्रश्न होते थे हाऊ यू फिलिंग विद् योर न्यू पार्टनर, और आँख दबा कर दोनों कह देते बेटर देन प्रीवियस। उनकी खिलखिलाहट उन पार्टियों में उन्हें बिंदास लाइफ की आधुनिक पहचान देती थी। इस सभ्यता के बीच उस सभ्यता का पिसना तो लाज़मी ही था।

सभ्यता को दोनों ने ही नहीं अपनाया। वे उसका कोई भी बंधन अपने जीवन में नहीं आने देना चाहते थे। सभ्यता को उसके नाना-नानी ने कलेजे से लगा लिया। नाना का बिज़नेस ठीक-ठाक था। वे अपनी सभ्यता में यक़ीन करने वाले व्यक्ति थे। इसीलिए तो उन्होंने अपनी गोदी में पहली बार आने पर यही कहा था कि मेरी सभ्यता आ गई और बच्ची का नामकरण सभ्यता कर दिया। सभ्यता आनंद।

कृति के विचारों में आई स्वछंदता को वे शुरू से ही ठीक नहीं मानते थे। उन्होने सभ्यता की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया था। सभ्यता जैसे-जैसै बड़ी हो रही थी, वह अपने मम्मी-पापा की कमी महसूस करने लगी थी। उसे पता था कि मम्मी-पापा ने उसकी परवाह किए बिना अपनी ज़िंदगी की राह चुनी है। समय ने अपना रंग दिखाया था। अरोमा को बच्चा चाहिए था तो उसने प्रकल्प को जन्म दिया। और उदय को वंश की चिंता सताने लगी तो उसने कृति से बेबी प्लानिंग करने का साफ-साफ कह दिया। कृति को उदय के लिए गुनगुन को जन्म देना पड़ा। अब तक समय की धारा बहुत सा पानी बहा कर ले जा चुकी थी। कृति को गुनगुन का साथ अच्छा लगने लगा था। कभी-कभी वह सभ्यता की तरफ भी कुछ आकर्षित होती। लेकिन उदय रस्तोगी को सभ्यता में कोई रुचि नहीं थी।

समाज में बिंदास ज़िंदगी का फंडा प्रेम आधारित नहीं, रूप आधारित होता है। रूप अस्थाई है जबकि प्रेम स्थाई होता है। प्रेम हेतु आंतरिक रूप का निर्मल होना अनिवार्य है। जबकि बिंदास रोमांस के लिए देह के सौंदर्य का होना मूल्यवान् है। देह जड़ है यह आख़िर कब तक अपने रूप को सहेज कर रख सकती है। इसका रूप केवल आकर्षित कर सकता है, समा नहीं सकता। समाने के लिए तो वैदेह प्रेम की आवश्यकता होती है। देह के आकर्षण में भटकते हुए कृति और दैदिप्य अपनी सभ्यता की परवाह भला कैसे कर सकते। सभ्यता तो आत्मा का अंश थी, उसे आत्मसात् किया जाना था। लेकिन उन्होंने सभ्यता को ही बोझ मान लिया था। वे यह नहीं जानते थे कि सभ्यता कभी नष्ट नहीं होती उसे सँभालने वाले कोई न कोई सदैव आगे आ ही जाते हैं। जैसे इनकी सभ्यता को नाना-नानी ने

अपना दुलार देकर बचा लिया था।

कृति का भी रूप-लावण्य अब उतरती हुई नदी की तरह हो चला था। बिलकुल वैसा ही जैसे नदी का पानी उतरता है तो उसके किनारे की हरी-भरी वनस्पति तक कुछ अनचाहे निशान अपनी देह पर लिए खामोश खड़ी होती है। कृति की देह भी अब उसी वनस्पति की तरह हो चली थी। उदय रस्तौगी के साथ रहना और गुनगुन में ही अपनी शेष जिंदगी को गुनगुनाना उसकी नियति हो चुकी थी। मम्मी-पापा उससे पहले ही ख़फा थे। इसलिए वह अपनी गृहस्थी में व्यस्त हो गई। उसका बिज़नेस अपनी गति से चल रहा था जिससे उसे कोई आर्थिक असुरक्षा का सामना नहीं करना था।

दैदिप्य और अरोमा अपनी दुनिया में मगन थे। दैदिप्य को वैसे भी सभ्यता से कोई लगाव नहीं था। वह प्रकल्प और अरोमा में ही रम गया था। यहाँ तक कि वह सभ्यता से कभी मिलने का भी वक्त नहीं निकालता था। कभी-कभार जब सभ्यता पिता का सानिंध्य पाने के लिये फ़ोन भी लगाती, तो वह अपना रूखापन ही दिखाता। उसकी अपनी ज़िंदगी में वह कोई हलचल नहीं चाहता था।

सभ्यता ने नाना-नानी के साथ रहते हुए भी माता-पिता का रिक्त स्थान पाया था। यह रिक्तता उसके जीवन को खोखला किए जा रही थी। समय ने उसे उम्र से पहले गम्भीर बना दिया था। आवश्यकता भौतिक ही नहीं होती, मानसिक भी होती है। उसकी भौतिक आवश्यकता में नाना जी ने कोई कमी नहीं आने दी थी। संस्कार वैली जैसे अत्यंत कुलीन स्कूल में उसकी शिक्षा का प्रबंध किया था। लेकिन मानसिक आश्यकता की पूर्ति कैसे करें? दूसरे बच्चों के समान किसी पेरेंट मीटिंग में उसके मम्मी-पापा शामिल नहीं होते थे। उसकी इस उदासी का वे क्या प्रबंध करें? वे खुद जाते पेरेंट मीटिंग में लेकिन उसके साथी बच्चे मम्मी-पापा का पूछते, तो वह केवल आँसू ही दिखा पाती। उसे कभी किसी वस्तु की कमी नहीं होने दी जा रही थी लेकिन मानसिक सम्पन्नता तो माता-पिता ही दे सकते थे, जहाँ आकर वह पूरी तरह ग़रीब हो जाती थी। पूरा एक दशक उसने ऐसे ही गुज़ारा था।

वह अनेकों बार कृति से मिली लेकिन उसे कृति की तरफ से प्यार की कोई किरण नहीं दिखी। केवल उपेक्षा ही दिखी। वह मचलना चाहती थी कृति की गोद में, परन्तु कृति अब भी व्यस्त थी। उसे लगता ही नहीं था कि उसने सभ्यता को जन्म भी दिया है। उदय की बेरुखी उसकी मजबूरी हो सकती थी लेकिन उदय का वरण करने के लिए उसने ही तो खुद को अस्त किया था। सभ्यता 'मम्मा' शब्द कहने को तरसती रही। वह कई बार दैदिप्य से मिली लेकिन पिता के रूप में दैदिप्य से उसे कोई उत्साह नहीं मिला। वह झूलना चाहती थी दैदिप्य के कंधों पर, लेकिन वह कंधे सिर्फ उचकने में ही स्टाइलिश थे, भावना शून्य। सभ्यता झूमना चाहती थी पिता के आनंद में, लेकिन दैदिप्य केवल सरनेम से ही आनंद था। वास्तव में आनंद क्या होता है उसे पता ही नहीं था। इस तरह सभ्यता की दुनिया उसके नाना-नानी ही थे।

वह सोलह वर्ष की हो गई थी। उसकी आँखों के ख़ामोश आँसू धीरे-धीरे समुद्र बन रहे थे तथा उस समुद्र में एक सुनामी की खदबदाहट उसे महसूस होने लगी थी। अब वह महसूस करने लगी थी कि मम्मी-पापा ने अपनी मौज-मस्ती में उसके बारे में कुछ भी नहीं सोचा। उसका हक़ उससे क्यों छीना गया है? उसका दोष क्या है? कोई माँ-बाप क्या इतने निष्ठुर भी हो सकते हैं? उम्र का यह समय उसके मन की झील पर लहरों के उठने का था, किंतु वह समुद्र के तूफ़ान में जी रही थी। समय से पहले वह बड़ी हो गई थी। नाना-नानी की उम्र भी कब तक साथ देती, वह ढलान पर थे। बीमार रहने लगे थे उसके नानू। बीमार रहने के कारण बिज़नेस पर बुरा असर पड़ रहा था। आय लगातार गिर रही थी। वहीं घर की ज़रूरतें बढ़ रहीं थीं। वे अपना सम्मान बचाने की जद्दोजहद में कमज़ोर होते जा रहे थे। समाज के सामने वे यह हरगिज नहीं दिखाना चाहते थे कि ज़िंदगी उनके लिए दुष्कर हो रही है। गम्भीर होती सभ्यता सोचती थी कि उसके माँ-बाप तो ज़िंदा हैं। उसके पालन पोषण की ज़िम्मेदारी उनकी है। नाना-नानी यह ज़िम्मेदारी क्यों उठाएँ? यह तो उनका उपकार है उस पर। माँ-बाप का अहंकार भरा गैरज़िम्मेदाराना व्यवहार उसे अब पल-पल डसने लगा था। यह ठीक है उन्होंने अपनी ज़िंदगी को अपने हिसाब से चुना, जो उनका अधिकार था। लेकिन मेरा भी तो अधिकार है कि मेरा पालन-पोषण वैसे ही हो, जैसे एक बच्चे का होना चाहिए। जो प्यार प्रकल्प और गुनगुन को मिल रहा है, मेरे हिस्से में क्यों नहीं? जो अवसर उन दोनों को मिल रहे हैं वह मुझे क्यों नहीं मिल रहे? सभ्यता ने कभी भी प्रकल्प और गुनगुन से ईर्ष्या नहीं की लेकिन वह अब अपनी उपेक्षा से विचलित होने लगी थी तथा अपने अधिकारों को पाने के लिए बेचैन रहने लगी थी।

दिनों-दिन नाना जी की परेशानियाँ बढ़ रहीं थीं, स्वास्थ्य को लेकर भी बिज़नेस को लेकर भी। उनका बिज़नेस लगातार नुक़सान में जा रहा था। वे चिंतित रहने लगे थे। सभ्यता की ज़िम्मेदारी उनके कंधों पर ही थी। दैदिप्य और कृति से उन्हें कोई उम्मीद नहीं थी। उनकी अपनी ही दुनिया थी, जिसमें न रिश्तों की गर्माहट थी, न संवेदना की भावना। सभ्यता की उम्र अब सोचने-समझने की हो चली थी। अक्सर वह नाना-नानी से अपने पापा-मम्मी की बात पर असहज होने लगी थी।

उस दिन रात को दो बजे तक नाना जी सोए नहीं थे। ड्राइंगहॉल में सोफे पर बैठे कुछ सोच रहे थे। अचानक सभ्यता की नींद खुल गई। उसे ड्राइंग रूम की बंद लाइट के बिछे अँधेरे में कुछ होने का अहसास हुआ। वह अपने कमरे से नीचे आई और बत्ती जला दी। देखा, नाना जी सेंट्रल टेबल पर पैर लम्बे किए सोफे पर बैठे हैं। वह उनके पास गई। बड़े प्यार से उनके कंधे को स्पर्श किया तो नाना जी चौंक गए। उनकी आँखें गीली थीं।

"नानू क्या हुआ ? आप सोए नहीं?"- सभ्यता ने पूछा

"अरे बेटा तुम क्यों उठ गई, मैं तो बस यूँ ही बैठा था, नींद नहीं आ रही थी।"- मद्धिम आवाज़ में नानू ने कहा।

"मैं पिछले कुछ दिनों से देख रही हूँ, मेरे

नानू कुछ ज़्यादा ही परेशान लग रहे हैं, आख़िर ऐसी क्या बात है ?"- सभ्यता ने प्रश्न किया।

"कुछ नहीं बेटा, बस वक्त को पढ़ते-पढ़ते आँखे दुखने लगी हैं।"- उदासी से सने हुए स्वर में नानू ने कहते हुए गहरी साँस ली।

"नानू वक्त को पढ़ कर उसका अर्थ लगाना अब मैं भी सीख गई हूँ, मुझे मालूम है आप वक्त की किताब का कौनसा पन्ना पढ़ रहे हैं इस वक्त।"- सभ्यता ने गम्भीर होते हुए कहा।

"नहीं बेटा तुम अभी वक्त को मत पढ़ो, तुम वक्त को इंज्वाय करो, अभी से इस वक्त को पढ़ना शुरू करोगी तो तुम्हारी आँखों में लाल-लाल डोरे उतर जाएँगे और फिर इन प्यारी सी आँखों में सपनों की जगह सूजन दिखने लगेगी।"- अपनी सिसकी को रोकते हुए नाना जी बोले।

"एक बात पूछूँ नानू ?"- सभ्यता ने अपना सिर नाना जी की गोदी में रख उनकी आँखों में झाँकते हुए प्रश्न किया।

"पूछो बेटा, कोशिश करूँगा तुम्हारे पूछे सवाल का सही उत्तर देने की।"- नानाजी ने अपनी बात को आत्मविश्वास की टूटी हुई डोरी से जोड़ते हुए कहा।

"आप मेरा साथ दोगे ना ?"- सभ्यता ने प्रश्न किया

"बेटा मेरे पास अब साथ देने को तुम्हारे सिवाय और है ही कौन, यह प्रश्न तो मुझे करना चाहिए कि तुम अपने इस बूढ़े नाना को सँभाल लोगी ना, ऐसा न हो कि ज़िंदगी के आख़िरी लम्हों में तुम भी हमारे विश्वास की डोरी को झटका देकर तोड़ दो।"- कँपकँपाती आवाज़ में नाना जी ने शब्द बाहर निकाले।

"नानू...."- कह कर सभ्यता उनसे लिपट कर रो पड़ी।

सभ्यता कभी रोती नहीं थी। उसकी आँखों ने अपनी 'पानी की परत' को पलकों के बीच बरसों से जमा रखा था। आज वह परत न जाने कैसे सारे बाँध तोड़ कर बह गई थी। नाना जी ने उसे दुलारा-पुचकारा समझाया लेकिन वह परत तो ताप पाकर पिघल गई थी जो अब रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। सिसकियाँ और हिचकियाँ उस पर हावी हो चुकी थीं। वह जानती थी कि उसके नाना क्यों रात के इस पहर में 'वक्त के पन्ने पलट रहे हैं'। उसे पता था उन पन्नों पर उसकी माँ द्वारा नाना को छलनी-छलनी कर बहाए गए खून के आँसुओं की तह अपने धब्बों के साथ दर्द की कहानियों के रूप में टंकित हैं। उसे ज्ञान था कि उसके पिता की तरफ से कितने अपमान के दिन उनके इन पन्नों को बदरंग कर रहे हैं। उसके रोने की आवाज़ से नानी की भी नींद खुल गई और वह भी ड्राइंग रूम में आ गई।

"बेटा तुम कुछ पूछने वाली थीं, वह तो तुमने पूछा ही नहीं।"- नाना जी ने सभ्यता का ध्यान बदलने के लिए कहा।

"नहीं नानू अब पूछना नहीं है मुझे, कुछ करना ही होगा।"- सभ्यता ने अपनी आँखों से गालों पर आ जमी 'पानी की परत' को विदा करते हुए कहा।

उसके भीतर आत्मविश्वास ने दस्तक दे दी थी। वह अब निर्णय कर चुकी थी कि अपने घावों के दर्द पर भले न चीखे लेकिन बूढ़े नाना-नानी के साथ हुए अन्याय के ख़िलाफ़ वह चुप नहीं रहेगी, वह दहाड़ेगी। वह हर वह रास्ता चुनेगी जो इंसाफ की मंज़िल तक जाता है, चाहे वह कितना ही लम्बा, उबाऊ और कँटीला क्यों न हो। उसने निर्णय कर लिया था कि उसकी आँखों में अब कभी 'पानी की परत' नहीं जमने देगी। अगर ज़रूरत पड़ी तो वह उस परत को भाप में बदलने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाएगी।

उसने नानू का हाथ पकड़ कर उन्हे उठाया और उनके बेडरूम में छोड़ कर वह अपने कमरे में चली गई।

उसके बाद वह सो नहीं सकी थी। उसने सुबह सबसे पहले कृति को फ़ोन लगाया। कृति ने फ़ोन उठाया तो सभ्यता ने भरे गले से कहा- "मम्मा..... !"

उधर से कृति ने भावना शून्य जवाब दिया- "बोल सभ्यता क्या बात है?"

"मम्मा मुझे आपके पास आना है।"- सभ्यता ने कहा

"ओह नो! सभ्यता क्या बचपना है। अई एम बिज़ी दिस टाइम, प्लीज़ डोंट डिस्टर्ब मी। अभी गुनगुन को स्कूल भेजना है मुझे।"- चिढ़ते हुए कृति ने कहा।

"मम्मा मुझे आपसे मिलना है।"- सभ्यता ने कहा

"मैं घर आऊँगी, तब बात करूँगी।"- कहते हुए कृति ने फ़ोन डिस्कनेक्ट कर दिया।

सभ्यता की आँखों में वही 'पानी की परत' तैर गई। अगले ही पल उसने उसे एक झटके से हटाया और बाथरूम में तैयार होने के लिये चली गई। तैयार होकर उसने अपनी स्कूटी स्टार्ट की और सीधे मानसरोवर कॉम्पलेक्स में दैदिप्य के ऑफिस पहुँच गई। दैदिप्य भीतर किसी मीटिंग में व्यस्त था। रिसेप्शन पर उसे रोकते हुए बताया गया कि सर अभी बिज़ी हैं, आप वेट कीजिये। सभ्यता को लगा जिस ऑफ़िस की वह खुद मालिक है, उसके रिसेप्शन पर उसे कहा जा रहा है आप वेट करें।

एक घंटे से ज़्यादा समय उसे अपने पिता से मिलने के लिए इंतज़ार करते हो गया था। वह धीर-गम्भीर सी बिना किसी हंगामे के वहाँ बैठी रही। उसका मन और मानस दोनों ही उथल-पुथल कर रहे थे। इस बीच वह न जाने कितने चलचित्रों से गुज़र चुकी थी। तभी अचानक दैदिप्य के चेम्बर का द्वार खुला और वह तीन-चार लोगों के साथ बाहर आया। सभ्यता ने खड़े होकर उसे हाथ जोड़े, वह अभिवादन हेतु कुछ कहती उसके पहले ही दैदिप्य ने अपने कंधे उचकाते हुए कहा-"हैलो सभ्यता कैसी हो"

"ठीक हूँ पापा।"- सभ्यता ने कहा।

"कैसे आई?"- बड़ा सपाट सा प्रश्न किया दैदिप्य ने।

"पापा आपसे मिलकर कुछ बात करना है मुझे।"- उतने ही सपाट लहजे में सभ्यता ने उत्तर दिया।

"सॉरी सभ्यता अभी मैं बिज़ी हूँ, फिर कभी आना तुम।"- कहता हुआ दैदिप्य कहीं जाने के लिये लिफ्ट में चला गया।

"पापा.....!"- कहती हुई अपनी बात अधूरी लिए ही वह बाहर खड़ी रह गई। दैदिप्य ने इतना भी नहीं कहा कि आओ तुम भी लिफ्ट में आ जाओ।

उसने दूसरी लिफ्ट में जाकर ज़ीरो बटन दबाया, नीचे आकर अपनी स्कूटी से घर चली गई। रास्ते भर वह एक तूफ़ान से घिरी रही। उसके सामने कभी अपने प्यारे से नाना का चेहरा आता, कभी स्वार्थी पिता का और कभी निर्मम माँ का। वह घर जाकर अपने रूम में लेट गई। कई बार उसकी आँखों में पानी की वही चिरपरिचित परत तैरती लेकिन वह उसे झटक देती।

उसकी क्लासमेट तान्या के पिता एडवोकेट थे। सभ्यता ने तान्या को मोबाइल कॉल किया।

"तान्या मुझे अंकल से मिलना है, कब मुलाकात हो सकती है ?"- सभ्यता बोली

"अरे! इसमें पूछने की क्या बात है, क्या हो गया है"- तान्या ने आश्चर्य से कहा।

"बहुत ज़रूरी लीगल बात करना है।"- सभ्यता का स्वर उसकी उम्र से अधिक गम्भीर था।

"पापा घर पर ही हैं आज, मैं बात करा देती हूँ।"- तान्या ने कहा।

"पापा, सभ्यता आपसे कुछ बात करना चाहती है।"- तान्या ने अपना मोबाइल पापा को दे दिया।

"हाँ बेटा बताओ, क्या बात है?"- तान्या के पापा शरद जी ने कहा।

" अंकल मुझे आपसे मिलकर कुछ लीगल बात करना है, प्लीज़ मुझे टाइम दे देजिए थोड़ा सा।"- सभ्यता ने विनय पूर्वक कहा।

"अरे बेटा जब चाहो आ जाओ, बच्चों को टाइम लेने की ज़रूरत नहीं होती, वैसे मैं आज घर पर ही हूँ तुम आ जाओ।"- शरद जी ने बेहद स्नेह से कहा।

"जी अंकल मैं अभी थोड़ी देर में आती हूँ।"- चहकते हुए सभ्यता बोली।

मोबाइल रखने के बाद वह सोचने लगी। यह कैसी दुनिया है। मेरे पिता के ऑफ़िस के बाहर मैं एक घंटे से ज़्यादा इंतज़ार करती रही लेकिन मेरे पिता के पास मेरे ही लिये समय ही नहीं है जबकि अंकल कह रहे हैं बच्चों को मिलने के लिए समय लेने की क्या ज़रूरत है। उसकी आँखों में फिर एक 'पानी की परत' तैर गई। इस बार उसने बहुत ही मुश्किल से उस परत को सुखाया। वह किसी बड़े निर्णय पर पहुँचना चाहती थी।

वह किसी के घर बहुत ही कम जाती थी। माँ और पिता के स्नेह से वंचित बच्चों में लोगों से मिलने-जुलने का आत्मविश्वास उतना मज़बूत नहीं हो पाता, जितना सामान्यत: होना चाहिए। ऐसा बच्चा हर कदम पर डगमगाता हुआ आगे चलता भर है। उसका मन और मस्तिष्क सदा एक अनजाने भय से ग्रस्त रहता है। सभ्यता की भी अँगुली थामने वाले जब दूर छिटक गए हों तो वह भला कैसे निर्भीक दौड़ सकती थी। तान्या के पापा से वह एक-दो बार ही मिली थी। लेकिन तान्या से वह कुछ अंतरंग थी। अपने दु:ख उसे कह कर वह हल्की हो जाती थी। सुनाने के लिए अपने नाना के सिवाय उसके पास कोई सुख था ही नहीं।

लेकिन आज सभ्यता में आत्मविश्वास कुछ अधिक था। शायद पिता के व्यवहार ने उसके मस्तिष्क पर जो प्रभाव डाला था वह उसे आक्रोशित कर रहा था। वह अपनी आँखों को भीगने से बचा रही थी। माँ और पिता द्वारा किया गया व्यवहार उसे भीतर ही भीतर जला रहा था।

वह जब तान्या के घर पहुँची तो लंच टाइम था। तान्या के साथ खाना खाने के आग्रह को वह मनाह नहीं कर सकी। खाना तो एक औपचारिकता भर था। भोजन करते हुए वह थोड़ा संयत होना चाहती थी। यह उसके लिये टाइम गेप था। सो खाना खाने के बाद सभ्यता से शरद जी ने उसके मिलने का कारण पूछा।

कहना कोई आसान नहीं था। वह अभी सोलह वर्ष की ही तो थी। सही पूछा जाए तो एक अल्हड़ उम्र की बालिका जिसके सपनों को पंख लगना थे। लेकिन उसके तो सपने ही नहीं थे। वह बिना पंखों की चिड़िया बन गई थी। बल्कि उसके पंखों को जला दिया गया था। सिर्फ जला ही नहीं दिया गया था, उन जले हुए पंखों को भी बड़ी बेरहमी से तोड़ा जा रहा था। वह जानती ही नहीं थी कि अल्हड़ उम्र की उड़ान क्या होती है? सपने क्या होते हैं। परिवार क्या होता है? उसे तो यह भी नहीं पता था कि सभ्यता होती क्या है?

"अंकल"- उसने जैसे ही कहा उसकी आँखों में वही 'पानी की परत' तैर गई।

"बोलो बेटा।"- शरद जी ने धैर्यपूर्वक कहा। उन्हें इतना तो पता था कि सभ्यता के माता-पिता अलग रहते हैं और उसे उसके नाना पाल रहे हैं।

"बेटा मेरे लिए तुम और तान्या एक सी हो, बताओ क्या कहना चाहती हो, मैं तुम्हारी पूरी मदद करूँगा।"- शरद जी ने सहानूभूतिपूर्वक कहा।

बेटा शब्द सुन कर उसे बहुत ही अजीब महसूस हुआ। उसे यह शब्द कहने वालों ने ही कभी नहीं कहा था। यह तो केवल नाना और नानी ही उसे कहा करते हैं।

"अंकल मुझे मम्मी पापा के ख़िलाफ़ कोर्ट केस करना है।"- कह कर वह फफक पड़ी।

तान्या ने उसे सँभाला लेकिन उसका रोना कम नहीं हो रहा था।

शरद जी के पास अक्सर ऐसे केस आते रहते हैं जिनमें पति-पत्नि के विवाद और तलाक की स्थितियाँ होती हैं। यह केस अपने आप में बहुत ही संवेदनशील था। सभ्यता अपने माता-पिता के विरुद्ध केस लगाना चाह रही थी। दोनों के बीच कई साल पहले तलाक हो चुका था व अब दोनों अपनी-अपनी नई गृहस्थी में सैटल हो चुके थे। उन्होंने सभ्यता को नार्मल किया और कहा- "क्या केस करना चाहती हो बेटा अपने मम्मी-पापा के ख़िलाफ़?"

"अंकल मुझे नहीं पता माँ कैसी होती है और पिता कैसा होता है। मैं तान्या को देखती हूँ तो मुझे सिर्फ अहसास होता है मम्मी-पापा का। लेकिन उनका स्पर्श कैसा होता है, मैं नहीं जानती। माँ के आँचल पर मैंने कविताएँ और गीत तो सुने हैं लेकिन माँ के आँचल की ख़ुशबू कैसी होती है मुझे नहीं पता। पिता का साया क्या है, पिता से एक बेटी के रिश्ते की क्या मिठास है, मेरी उम्र की एक बेटी अपने पिता के साए में कितनी सुरक्षित है, मैंने सिर्फ कभी-कभार किस्से-कहानियों में पढ़ा और किसी मूवी के इमोशनल सीन में देखा भर है, उसकी सच्चाई क्या है, मैं नहीं जानती। यह भी

तब, जब मेरे मम्मी-पापा इस दुनिया में मौजूद हैं तथा वे अपने एक अच्छे स्टेटस के साथ जी रहे हैं। मैंने तो बस मेरे नाना की बूढ़ी आँखों में ही यह सब पाया है। उन्होंने ही अपनी हड्डियाँ गला-गला कर मुझे ज़िंदा रखने की कसम खा रखी है। लेकिन कब तक? वे कब तक मेरा बोझ उठाते रहेंगे? मेरे मम्मी-पापा की निर्लज्जता की सज़ा वे क्यों भुगतें? यह प्रश्न मुझे विचलित कर रहे हैं। कई बार सोचा कि मैं सुसाइड कर लूँ। लेकिन नहीं। मैं कमज़ोर नहीं हूँ। मुझे जीना है। अपना हक़ पाने के लिए लड़ना है। और अब मैं यह चाहती हूँ कि मेरे मम्मी-पापा मुझे भरण-पोषण खर्चा दें ताकि मैं अपना जीवन जी सकूँ और नाना जी की देखभाल कर सकूँ। आप वकील हैं मैं अभी बालिग नहीं हुई हूँ। कानून तो नहीं जानती लेकिन कानून की शरण जानती हूँ। बस इसीलिए आज आपको ही कानून मानकर आपके पास आई हूँ।"

शरद जी अवाक् थे। वे केवल सुन रहे थे सभ्यता को। वे सोच रहे थे लोग अपनी खुशी के लिए बच्चों के साथ ऐसा व्यवहार कैसे कर सकते हैं? आख़िर इस बच्ची का क्या दोष है? इसे क्यों वंचित किया गया है उसके नैसर्गिक अधिकार से? और उन्होंने एक फ़ैसला करते हुए कहा- "बेटा मैं लड़ूँगा तुम्हारे हक़ के लिए। कुटुम्ब न्यायालय में भरण-पोषण का यह केस दायर करेंगे हम। कल ही। मैं सारे दस्तावेज़ तैयार कर लेता हूँ। और रात को ड्राफ्टिंग कर लूँगा। कल तुम कोर्ट पहुँचो। तुम्हारे मम्मी और पापा के स्टेटस तथा उनकी इनकम को देखते हुए हम एक लाख रुपये प्रति माह के भरण-पोषण का केस दायर करेंगे। सिर्फ हंगामे के लिए नहीं, इसे जीतेंगे और तुम्हारा हक़ तुम्हें मिलेगा। यह अपने आप में एक मील का पत्थर साबित होगा उन बच्चों के लिए जिन्हें उनके माँ बाप ने बचपन की मुस्कान से वंचित कर दिया है।"

सभ्यता आश्वस्त हो गई थी। रात भर उसे नींद नहीं आई थी। वह आज ठीक ग्यारह बजे कुटुम्ब न्यायलय आ गई थी और तान्या के पापा अर्थात् अपने एडवोकेट शरद जी का इंतज़ार कर रही थी।

"बेटा ड्राफ्ट तैयार हो गया है।"- शरद जी की आवाज़ से सभ्यता की तंद्रा टूटी।

वह हड़बड़ा कर खड़ी हो गई।

"जी अंकल, मैं समय पर आ गई थी।"- उसने कहा।

"लो इसे पढ़ कर हस्ताक्षर कर दो।"- शरद जी ने ड्राफ्ट उसे देते हुए कहा।

सभ्यता ने उस ड्राफ्ट को पूरा पढ़ा, यह ड्राफ्ट उसकी दास्तान थी। जिसकी वादी सभ्यता आनंद और प्रतिवादी थे दैदिप्य आनंद एवं कृति रस्तौगी। एडवोकेट शरद जी ने ड्राफ्ट के औपचारिक प्रोफार्मा के बाद सभ्यता की आपबीती का वर्णन करते हुए अंत में बहुत ही भावुक शब्दावली के साथ न्यायालय से गुहार लगाई थी। उन्होंने न्यायलय का ध्यान खींचते हुए सभ्यता की ओर से लिखा था कि- "आख़िर मेरा कसूर क्या है। मेरा बचपन, मेरी किलकारियाँ, मेरी मुस्कान, मेरी अल्हड़ता, और तो और मेरा आस्तित्व तक छीन लिया गया। वह भी किसी और द्वारा नहीं मेरे ही जन्मदातायों द्वारा। अपने रिश्तों से ऊबे मेरे माँ और पिता, लेकिन नीरस हो गया मेरा बचपन। चटपटी ज़िंदगी चाहिए थी उन्हें और कड़वा कर दिया मुझे। उड़ान थी उनके मन की बेलगाम, लेकिन पंख कतर दिए गए मेरे सपनों के। वे फिर से अपने-अपने साथी तलाश कर खुश हो गए, लेकिन मेरे जीवन को मिली बस एक 'पानी की परत'। मेरा क्या दोष है, जो मैं वंचित रह गई उस प्यार से, जो हर बच्चे का नैसर्गिक अधिकार है? मेरे माँ-बाप को तलाक चाहिए था, वह मिल गया लेकिन तलाक की स्वीकृति में मेरा कोई उल्लेख ही नहीं किया गया। आख़िर मेरी साँसों की फ़िक्र क्यों नहीं की गई ? मेरे प्रति ज़िम्मेदारी किसकी तय की गई? मैं अभी भी नाबालिग हूँ। लेकिन मुझे लगता है मैं वक्त के थपेड़ों के बीच घायल होकर अपनी उम्र से कहीं अधिक बड़ी हो रही हूँ। क्या यह मेरे साथ अन्याय नहीं है? मेरी उम्र को थामना किसकी ज़िम्मेदारी थी? अगर वे ही मेरे नहीं हुए तो मेरा कौन होगा? समाज में मेरी जैसी कितनी ही सभ्यताएँ बिना बचपन जिये बूढ़ी हो रही हैं। उन्हें बचाने का रास्ता क्या है? बस उसी रास्ते की तलाश में मैं आपके समक्ष आई हूँ। मेरे नाना वृद्ध हैं और मैं अवयस्क। वे कार्य करने में असमर्थ हैं और मैं अभी काम करने लग गई, तो मेरे सपने उन चट्टानों में दब कर चकनाचूर हो जाएँगे जो मेरे अपरिपक्व हृदय पर गिरेंगी। इसलिए मेरी गुहार है कि सब तरह से सम्पन्न मेरे पिता और मेरी माँ से मुझे मेरे भरण-पोषण के लिए एक लाख रुपये मासिक राशि दिलाई जाए। यह राशि उनकी संयुक्त आय का बहुत छोटा सा हिस्सा है। जिसकी मैं विधिसंगत अधिकारिणी हूँ।

आवेदन के अंत में लिखा था सभ्यता पुत्री दैदिप्य आनंद एवं कृति रस्तौगी

15083/ई-2 अरेरा कालोनी भोपाल।

सभ्यता ने अपनी कलम निकाली, उस ड्राफ्ट पर हाथों को मज़बूत करते हुए हस्ताक्षर कर दिए, फिर उसने उस कलम को ऊपर कर एक बार देखा। उसे महसूस हुआ कि इस कलम की नोक से निकली स्याही उसके इरादों की धवलता की तरफ़ एक कदम है। लेकिन फिर भी उसकी आँखों में वही चिर-परिचित 'पानी की परत' तैर गई। वह परत आँखों के कटाव से छलकती हुई कुछ बूँदों के रूप लिए हाथों में थामे ड्राफ्ट के अक्षरों पर गिर गई। जिसकी नमी शरद जी ने महसूस की थी। यह उनके जीवन में अपनी तरह का पहला केस था। उन्होंने मन ही मन शपथ ली कि वे सभ्यता को समाप्त नहीं होने देंगे, और वे सभ्यता को साथ लेकर कोर्टरूम में चले गए।

अपनी बारी आने पर शरद जी ने सारे दस्तावेज़ ड्राफ्ट के साथ संलग्न कर डायज़ पर पेश किये। प्रधान न्यायाधीश को उन्होंने समरी सुनाई और फ़ाइल आगे बढ़ा दी। न्यायाधीश ने ड्राफ्ट पढ़ा। फिर पेशकार की तरफ मुख़ातिब होते हुए हुए केस दर्ज कर प्रतिवादी दैदिप्य और कृति को कोर्ट हाज़िर होने हेतु समन जारी करने का आदेश दिया। पेशकार ने नोटशीट तैयार कर सामने रखी। न्यायाधीश ने उस पर हस्ताक्षर किये। उन्होंने धीरे से चश्में को उतार कर पोंछा। उनकी आँखों में भी शायद एक 'पानी की परत' आकर ठहर गई थी।

000

छतरी

सुमन कुमार घई

सुरेन्द्रनाथ वर्मा अकेले थे। ऐसा नहीं था कि उनका परिवार नहीं था। दो बेटे थे, दो बहुएँ थीं, दोनों के दो-दो बच्चे थे। यानी भरा-पूरा परिवार था। हाँ, बस पत्नी को स्वर्गवास हुए दो वर्ष बीत चुके थे। वैसे अकेले तो पत्नी के जीवित रहते हुए भी थे। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि वह भीड़ में भी अकेले ही होते थे। सौम्य व्यक्तित्व वाले सुरेन्द्रनाथ वर्मा के चेहरे पर एक मुस्कराहट टँगी रहती। पर यह मुस्कराहट किसी को भी मित्र बनने के लिए आमंत्रित नहीं करती। बल्कि एक तरह की तख़्ती थी – दूरी बनाए रखें। वह बहुत ही शिष्ट व्यक्ति थे। हद से अधिक; इतने शिष्ट कि उनकी शिष्टता की रेखा पार करके कोई उनका मित्र बन ही नहीं सका। उनके परिचित बहुत थे, पर मित्र एक भी नहीं था।

पत्नी की मृत्यु के बाद दोनों बेटों ने बहुत आग्रह किया कि पापा अपना घर बेच कर हमारे साथ रहने लगो। सुरेन्द्रनाथ को यह मंज़ूर नहीं था कि वह किसी पर बोझ बनकर रहें; किसी की स्तंत्रतता में व्यवधान डालें। बहुओं ने सलाह दी कि दोनों घरों में एक-एक शयनकक्ष पापा का तय कर दिया जाए, जिनमें उनके कपड़े सदा टँगे रहें। एक घर से दूसरे में जाने के लिए अटैची पैक न करना पड़े। इस तरह से उनकी व्यक्तिगत स्पेस भी रहेगी और वह अकेले भी नहीं रहेंगे। वह नहीं माने। फिर बेटों ने पोते, पोतियों का नाम लेकर 'भावनात्मक ब्लैकमेल' करने का प्रयास किया। सुरेन्द्रनाथ टस से मस न हुए। अंत में बच्चों ने भी कहना छोड़ दिया।

कुछ महीने तो सुरेन्द्रनाथ ने अपनी पूर्ण स्वतंत्रता का उत्सव मनाया। सुबह जल्दी उठते। इतनी जल्दी कि अगर उनकी पत्नी जीवित होती, तो वह अवश्य ही उनका बिस्तर दूसरे कमरे में लगा देती। अब वह मुस्कराते हुए उठते कि कोई टोक नहीं रहा। दाँतों में ब्रश करने के बाद, खुली आवाज़ में गला खँखारते हुए साफ़ करते। कोई भी टोकने वाला जो नहीं था। इसके बाद नीचे किचन में आकर गरम पानी में गलगल का रस निचोड़ कर कप भरते। कप को दाएँ हाथ में उठाकर एक कमरे से दूसरे कमरे में जाते हुए, पूरे घर का निरीक्षण करते हुए आधा घंटा बिता देना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी। किसी दिन मन होता, तो ध्यान लगाने बैठ जाते। ध्यान के दौरान भी सोचते हुए प्रसन्न रहते कि देखो मैं ध्यान लगा के बैठा हूँ और कोई आकर मुझ से कोई बेकार का प्रश्न नहीं पूछ रहा। दिल करता तो कुछ योग के आसन करते और सैर के लिए निकल जाते।

उनकी सैर का रास्ता भी कभी बदलता नहीं था। उन्हें अच्छी तरह से याद था कि किस घर के सामने वाले लॉन में कौन से पौधे लगे हैं, कौन से फूल खिलने वाले हैं, कौन से खिल चुके हैं। घर पहुँच कर नाश्ता बनाते, समाचार पत्र पढ़ते। कंप्यूटर, लॉन की देख-रेख, घर की सफ़ाई, दोपहर और रात का खाना और टीवी देखते हुए उनका दिन व्यतीत हो जाता। अगले दिन उनकी वही दिनचर्या फिर से शुरू हो जाती। वह प्रसन्नचित्त थे – मुस्कुरा रहे थे। अकेले बिल्कुल अकेले समय बीत रहा था।

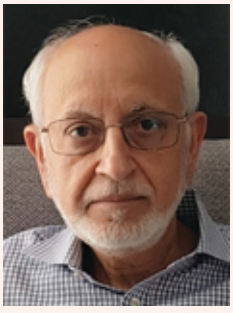

सुमन कुमार घई
3421 फेनविक क्रेसेंट ,
मिस्सिस्सागा, ओंटारियो , कनाडा
L5L N7
ईमेल- sumankghai@gmail.com
मोबाइल - 416-917-7045

परन्तु अब पिछले एक-दो दिन से उन्हें यह एकांतवास खलने लगा था। बच्चों के आमंत्रण पर फिर से विचार किया और नकार दिया। नहीं, एक बार मना कर चुका हूँ और अगर मैं इतनी स्वतन्त्रता चाहता हूँ तो दूसरे भी तो चाहते ही होंगे। यह कहाँ कि शिष्टता होगी कि मैं अपने आपको उन पर थोप दूँ। फिर सोचा कि सीनियर सिटिज़न क्लब का सदस्य बन जाऊँ। आसपास ही तीन-चार सीनियर्ज़ के क्लब थे। फिर शिष्टता की लक्ष्मण रेखा खाई बन गई। अपरिचितों से बातचीत करनी पड़ेगी। मित्र भी बन सकते हैं। उनके साथ शिष्टतावश उठाना-बैठना पड़ेगा। बातचीत करनी पड़ेगी। अगर ऐसा हुआ तो बेकार की दख़लन्दाज़ी भी आरम्भ हो जाएगी। अकेलेपन को दूर करने का यह भी विकल्प सही नहीं था। तीसरे दिन से वह अपने अकेलेपन से व्यथित होने लगे। सारा दिन उन्होंने सब कुछ वही किया, जो पिछले दो वर्षों से करते आए थे पर उन्हें कोई प्रसन्नता नहीं हुई कि वह स्वतंत्र हैं। सारा दिन ख़ालीपन उन्हें सताता रहा। उन्हें लगा कि अब जीवन का कोई उद्देश्य नहीं रहा। पत्नी के बारे में अभी भी उनके मन में कोई ख़याल नहीं आया। पता नहीं कितनी परतों के नीचे उन्होंने अपनी प्रेम-स्मृतियों को दबा रखा था। रात को वह सोए भी खिन्नमना तो रात बेचैनी में बीतनी ही थी।

अगली सुबह निश्चित समय पर उनकी नींद खुल गई। आज वह बिस्तर से उठे नहीं। रात भर करवटें बदलने के कारण थके-थके से थे। उन्हें विचार आया कि जीवन शैली बदलनी चाहिए। सारी उम्र उन्होंने अनुशासन का पालन करते हुए, शायद व्यर्थ ही बिता दी। उन्होंने कभी सोचा ही नहीं था कि जो लोग उनकी तरह सुबह मुँह अँधेरे नहीं उठते, उनका जीवन कैसा होता है। नई जीवन शैली का आरम्भ उन्होंने देर तक बिस्तर में लेटे रहने से आरम्भ किया। पर सोचने से तो सब कुछ हो नहीं जाता; साढ़े चार बजते-बजते उन्हें लगने लगा कि समय बेकार में बीते जा रहा है। वह उठ खड़े हुए और दैनिकचर्या फिर स्वचालित-सी आरम्भ हो गई। गलगल का पानी बनाने के बाद उन्होंने सप्रयास कमरों का निरीक्षण नहीं किया बल्कि टीवी ऑन कर लिया। चाहे उनका टीवी उसी चैनल से आरम्भ हुआ जिस पर वह टिका रहता था – सीपी 24; यही उनका प्रिय चैनल था। एक ही स्क्रीन पर मौसम से लेकर स्टॉक मार्केट तक की जानकारी। समाचार से लेकर ट्रैफिक रिपोर्ट का निरंतर दोहराया जाना उन्हें रोचक लगता। आमतौर पर सुरेन्द्रनाथ नाश्ता करते हुए या समाचार पत्र पढ़ने के बाद टीवी देखते थे। आज उन्होंने सैर पर जाने से पहले ही देखना आरम्भ कर दिया था। पर कब तक देखते। शरीर तो सैर पर जाने को व्याकुल था।

उन्होंने सैर के कपड़े और जूते डाले। घर से निकलने से पहले आसमान की ओर देखा, बादल छा रहे थे। शायद वर्षा की संभावना बन रही थी; उन्होंने छतरी साथ ले जानी उचित समझी।

आज सैर के समय उनकी चाल में अंतर था। एक हाथ में छाता पकड़ रखा था जिसकी नोक को ज़मीन पर रखते हुए शान के साथ चले जा रहे थे और दूसरी बाँह भी आज कुछ अधिक गति के साथ आगे-पीछे हो रही थी। यह अंतर उन्हें अच्छा लगा। उन्हें यह नवीनता, जीवन की नीरसता को सरस बनाती-सी लगी। उनके होंठों पर मुस्कुराहट फैल गई। वापसी पर वह गली के नुक्कड़ पर स्थित डेली मार्ट स्टोर पर रुके। प्राय: वह यहाँ से प्रतिदिन कुछ न कुछ ख़रीदते थे। चाहे वह उन्हें चाहिए होता था या नहीं, पर यह उनकी दिनचर्या का हिस्सा था। दुकानदार भी उनकी मुस्कराहट का अभिवादन मुस्कराहट से ही करता। केवल आवश्यक बात के सिवा कोई बातचीत कभी नहीं हुई थी। आज सुरेन्द्रनाथ ने जीवन में पहली बार लॉटरी का टिकट ख़रीदने का निर्णय लिया।

इतनी सुबह, उनके सिवाय डेली मार्ट में कोई भी नहीं था। काउंटर के पीछे खड़े जाने-पहचाने व्यक्ति ने बिना बोले ही आँखों से पूछा कि 'क्या कर सकता हूँ?'

सुरेन्द्रनाथ बोले, "एक लॉटरी की टिकट प्लीज़।"

"कौन सी?" संक्षिप्त सा प्रश्न था।

सुरेन्द्रनाथ अटक गए। क्योंकि लॉटरी लेने का निर्णय आकस्मिक था। कोई सोची-विचारी योजना नहीं थी। उन्होंने कभी सोचा ही नहीं था कि लॉटरी कई प्रकार की हो सकती है। अचानक काउंटर के शीशे के नीचे रखी लॉटरी ट्रे में इतनी प्रकार की लॉटरी देख कर वह विस्मित रह गए। दुकानदार उन्हें जानता था, सो वह सुरेन्द्रनाथ की दुविधा समझ गया। उसने उन्हें बताना शुरू किया, यह स्क्रैच एंड विन है, कितने प्रकार की है, कितने पैसे जीत जा सकते हैं। यह लोटेरियो है, यह लॉटो मैक्स है। सुरेन्द्रनाथ लॉटरियों के जंगल में अबोध बालक की तरह खो गए।

दुकानदार ने उन्हें फिर उबारा, "लॉटो मैक्स ले लीजिए। पाँच डॉलर की है पर आपको नंबरों के तीन सेट मिलेंगे। जीतने की संभावना अधिक होती। ग्रैंड प्राइज़ के अलावा एक मिलयन डॉलर के भी कई प्राइज़ हैं।"

हालाँकि सुरेन्द्रनाथ को कुछ भी समझ नहीं आ रहा था परन्तु उन्हें लगा कि किसी ने उनका हाथ थाम लिया है। उत्साहित होकर बोले, "हाँ, वन लॉटो मैक्स प्लीज़।"

दुकानदार ने फिर पूछा, "क्विक पिक या आप नम्बर चुनेंगे।"

सुरेन्द्रनाथ फिर अवाक् रह गए। इस बार भी दुकानदार ने ही बात सँभाल ली, "इस बार क्विक पिक ही ले लें।" उसने एक बटन दबाया और सुरेन्द्रनाथ के जीवन की पहली लॉटरी टिकट छप गई।

दुकानदार सुरेन्द्रनाथ को लॉटो मैक्स की टिकट थमाते हुए मुस्कराया, "गुड लक!" और सुरेन्द्रनाथ ने अपने हाथ की छतरी काउंटर के साथ टिकाई। लॉटो मैक्स के टिकट को बड़े ध्यान से तह किया और अपने पर्स पर सहेज लिया। प्रसन्नचित्त हो मुड़े और बाहर की ओर चल दिए। अभी एक क़दम ही लिया था कि पीछे दुकानदार ने पुकारा, "सर, अपना छाता मत भूलें।"

सुरेन्द्रनाथ पलटे और उन्होंने दुकानदार की आँखों में झाँकते हुए कहा, "धन्यवाद!"

दुकानदार मुस्कराया, "क्या आज बारिश होने वाली है?"

सुरेन्द्रनाथ विस्मित थे। अभी तक किसी ने

उनसे बिना मतलब के कभी बात ही नहीं की थी या उनकी मुस्कराहट ने करने नहीं दी थी। वह बोले, "हाँ, सीपी 24 की तो यही चेतावनी है।"

"अरे साहब, ये चेतावनियाँ तो बेकार की बातें हैं। मैं तो हवा सूँघ कर बता देता हूँ कि बारिश आने वाली है या नहीं।"

अब सुरेन्द्रनाथ अटक गए, बात को आगे कैसे बढ़ाएँ। वह मुस्कराए और सिर झुका कर अभिवादन करते हुए डेली-मार्ट से बाहर निकल आए।

उनका बाक़ी का दिन इस छोटे से अनुभव का विश्लेषण करते हुए बीता। यह निरर्थक संवाद उन्हें महत्त्वपूर्ण लगने लगा। सुरेन्द्रनाथ का पूरा जीवन आँकड़ों का विश्लेषण करते हुए बीता था। जिस नीरस काम को कोई भी नहीं करना चाहता था, उसमें उन्हें बहुत आनंद आता था। उन्हें लगता कि पूरे विश्व की अर्थ व्यवस्था शायद उन्हीं के विश्लेषित आँकड़ों पर ही निर्भर करती है। हर आँकड़े का महत्त्व होता है। सब कुछ मिलकर सार्थक हो जाता है। परन्तु अब यह निरर्थक संवाद इतना आनंददायक होगा, उन्होंने अनुमान भी नहीं लगाया था। उन्हें नई जीवन शैली अच्छी लगी।

रात को जब वह सोए तो संतोष से सोए।

अगली सुबह वह बहुत उत्साह से जागे। आज जीवन उनके लिए कौन सी नई संभावनाएँ लेकर खड़ा है?

आज सैर से वापिसी पर डेली मार्ट नहीं रुके। सीधा घर पहुँचे। नाश्ता किया और सीपी 24 चैनल देखते हुए सोचते रहे कि आज क्या नया किया जाए? उन्होंने ट्रैफ़िक के बारे में सूचना सुनी कि आज इस समय किसी रूट की बसें बंद हैं। इसलिए यात्रियों के लिए विशेष बसों का प्रबन्ध किया जा रहा है। सुरेन्द्रनाथ मुस्कराने लगे। पिछले बार जब उन्होंने टीटीसी की बस में यात्रा की थी, उसे बीस से भी अधिक बरस बीत चुके थे। उन्हें विचार आया कि आज कार को घर छोड़ कर बस द्वारा टोरोंटो डाउनटाउन जाएँ और पूरा दिन वहाँ बिताकर शाम को घर लौटें। परन्तु इन बीस वर्षों में तो बहुत कुछ बदल गया होगा। उन्होंने कंप्यूटर ऑन किया और टीटीसी में यात्रा कैसे करें, की पूरी जानकारी पढ़ डाली। इस जानकारी में उन्हें यह भी पता चला कि बस यात्रा के दौरान सबसे अधिक खोने वाली वस्तु छतरी है। सुरेन्द्रनाथ मुस्कराए और उन्होंने पूरी योजना रच डाली।

जल्दी से तैयार हुए। घर के पास शॉपर्ज़ ड्रग मार्ट से जाकर यात्रा करने के लिए प्रेस्टो कार्ड बनवाया और वापिस घर आकर अपना पता लिख कर एक टैग छतरी के हैंडल पर चिपका दिया। आज के अभियान के लिए छतरी समेत निकल गए।

बस पर चढ़ते ही उन्होंने प्रेस्टो कार्ड का प्रयोग पहली बार किया। यह बस सबवे ट्रेन के स्टेशन तक जाती थी। वहाँ से सुरेन्द्रनाथ ने डाउनटाउन की ट्रेन पकड़ी और शहर के मध्य में उतर गए। घूमने के बाद वापिस लौटते हुए उन्होंने सबवे ट्रेन में अपनी छतरी जान-बूझकर छोड़ दी। सुरेन्द्रनाथ जब आज घर पहुँचे, तो उनकी मुस्कराहट लोप ही नहीं हो रही थी। उन्हें आशा थी कि अवश्य ही एक-दो दिन में टीटीसी के ऑफ़िस से फ़ोन आएगा कि 'आपकी छतरी मिली है और कृपया आकर इसे ले जाएँ'। और हुआ भी यही। उस दिन सुरेन्द्रनाथ फिर तैयार हुए। अपना प्रेस्टो कार्ड उन्होंने जेब में डाला और टीटीसी के ऑफ़िस से जाकर अपना छाता वापिस ले आए। सुरेन्द्रनाथ का एक और रोचक दिन निकल गया। रास्ते में उन्हें न जाने कितने लोगों ने मुस्कराकर 'विश' किया। सुरेन्द्रनाथ ने आज टीटीसी के "लॉस्ट एंड फ़ाउंड" के ऑफ़िस क्लर्क से भी खुलकर बात करने का प्रयास भी किया था। वह ख़ुश थे।

अब सुरेन्द्रनाथ जहाँ भी जाते उनका छाता उनके साथ अवश्य होता। चाहे आवश्यकता हो या न हो। अगर बारिश होती तो लोग छाते को देखते और सुरेन्द्रनाथ से कहते "आपने अच्छा किया कि छाता ले आए" अगर बारिश नहीं होते तो भी लोग-बाग पूछते "बारिश होने के आसार हैं क्या?" यानी छाता बातचीत शुरू करने का माध्यम बन गया। सुरेन्द्रनाथ को अनुभव होने लगा कि किसी के साथ बात आरम्भ करना कठिन नहीं है। प्राय: शाम को चाय पीते हुए बीते दिन के बारे में सोचते, किस से मिले, क्या बात हुई। जिससे मिले वह कैसा व्यक्ति था इत्यादि। उनके पास सोचने और स्वयं से बात करने के लिए विषय होने लगा। बच्चों का जब भी फ़ोन आता तो बहुत उत्साह से अपने दिन के बारे में बताते। यह बात अलग है कि छाते की कभी चर्चा नहीं करते थे। क्योंकि छाता उनका बहुत निजी था, उनका पर्याय था।

एक दिन सुरेन्द्रनाथ को बच्चों से बात करते हुए पता चला कि कल से नवरात्रे शुरू हो रहे हैं। वह कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं थे। जब पत्नी जीवित थी तो धर्म-कर्म का दायित्व उसका था। जो वह करने के लिए कहती, वह कर देते। शायद आज पहली बार था कि उन्हें अपनी पत्नी याद आ रही थी। सुबह से कई बार आँखों की कोरें भीग चुकी थीं। अगर परिवार के साथ होते तो शायद रो भी देते। साथी के चले जाने का दुख आज उन्हें अकेलेपन में महसूस हुआ। शायद उनके व्यक्तित्व का आवरण छीजने लगा था। पहले नवरात्रे को किसी भी तरह पत्नी उन्हें मंदिर ले जाया करती थी। चाहे वह जाना न भी चाहते हों तो भी। पत्नी के बारे में सोचते-सोचते उन्हें नींद आ गई। पर सोने से पहले उन्होंने सोच लिया था कि पहले नवरात्रे को मंदिर जाने की परम्परा को अवश्य निभाएँगे।

अगली सुबह वह उत्साहित थे। नाश्ते के बाद नहा-धोकर तैयार हुए और ग्रोसरी स्टोर जाकर मंदिर में चढ़ाने के लिए कुछ फल ख़रीदे। मंदिर जाने से पहले उनकी पत्नी और क्या करती थी, उन्हें न तो याद आया और न ही उन्हें इसकी समझ थी। मंदिर पहुँचते हुए लगभग ग्यारह से ऊपर का समय हो गया था। मन्दिर की लॉबी में जूते उतार कर और छाते को एक कोने में रख दिया। जैसे ही वह मेन हाल में गए तो दरवाज़े के साथ ही मेज़ पर शर्मा जी बैठे थे।

शर्मा जी ने यह मंदिर लगभग दस वर्ष पूर्व बनाया था। यह एक ग़रीब मन्दिर था। आसपास की हाई राइज़ बिल्डिंगों में अधिकतर नए आप्रवासी भारतीय रहते थे। यह वे लोग थे जो या तो नए देश में पाँव ज़माने के

लिए संघर्ष कर रहे थे या संघर्ष में हार चुके थे और अब जो परिस्थितियाँ थीं उसे नियति मान कर समझौता कर चुके थे। मंदिर उनकी आस्था और आध्यत्मिक आवश्यकता को पूरा करने का साधन तो था, परन्तु उनके पास मंदिर में चढ़ाने के लिए अधिक पैसे नहीं होते थे। क्योंकि मंदिर के पास पैसे नहीं थे इसलिए इस मंदिर में शांति बहुत थी। जिन मंदिरों में पैसा था वहाँ की प्रबन्धन कमेटियों में नित हाथापायी की नौबत आती रहती थी। इधर हालत यह थी कि शर्मा जी लोगों से निवेदन करते रहते थे पर कोई प्रबंधन कमेटी का दायित्व उठाने को तैयार ही नहीं होता था। फिर भी शर्मा जी की यह समर्पण की भावना ही थी कि लगभग अस्सी वर्ष के आसपास की अवस्था में भी मंदिर को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाने सपना देखते रहते। उनकी नज़र हर नए श्रद्धालु में समर्पित भक्त को खोजती जो मंदिर में सक्रिय योगदान दे सके।

सुरेन्द्रनाथ ने देखा, मंदिर में सिवाय शर्मा जी और कोई भी नहीं था। न कोई पुजारी और न ही कोई अन्य भक्त। हाल की आधे से अधिक लाइट्स भी ऑफ़ थीं। केवल वेदी पर पूरी रोशनी थी। शर्मा जी ने नज़र उठा कर सुरेन्द्रनाथ को ऊपर से नीचे तक देखा। उनके चेहरे की मुस्कराहट कह रही थी – मैं आपको पहचानता तो नहीं, पर स्वागत है! इधर सुरेन्द्रनाथ जी समझ नहीं पा रहे थे कि वह क्या करें? थैले में जो फल थे, वह यहीं शर्मा जी को थमा दें या जाकर मूर्तियों के आगे रख दें। इस किंकर्त्तव्यविमूढ़ अवस्था में वहीं अटक गए और शर्मा जी तरफ़ देखते हुए हाथ जोड़े। शर्मा जी अपनी कुर्सी से उठे और उन्होंने भी हाथ जोड़ कर अभिवादन किया। शर्मा जी की अनुभवी नज़र ने सुरेन्द्रनाथ में संभावनाएँ खोज लीं। उन्हें लगा कि यह व्यक्ति मंदिर के काम आ सकता है। बस, बात ढंग से आरम्भ करनी पड़ेगी। शर्मा जी ने अपना परिचय दिया और सुरेन्द्रनाथ ने अपना।

शर्मा जी ने कई परतों वाला प्रश्न किया, "आपको पहले कभी देखा नहीं, अभी इस इलाक़े में घर ख़रीदा है क्या?"

"जी मंदिर में बहुत देर के बाद आया हूँ। रह तो इस इलाक़े में बहुत देर रहा हूँ," सुरेन्द्रनाथ ने उत्तर दिया। इसमें शर्मा जी को पता नहीं चल पाया कि भक्त के पास घर है या यह भी इन बिल्डिंगों में किराए के अपार्टमेंट में रह रहा है।

उन्होंने झूठी सी हँसी हँसते हुए बात बढ़ाई, "देर से आए दुरुस्त आए। भगवान् के घर में सबका स्वागत है। आइए।" शर्मा जी ने एयर-इण्डिया के किंग की तरह एक बाँह मूर्तियों की ओर बढ़ाई और दूसरा हाथ, सिर को झुकाते हुए दिल पर रख लिया। सुरेन्द्रनाथ जी वेदी पर पहुँचे और शर्मा जी ने फलों का थैला लेकर भोग लगाया और प्रसाद दे दिया। शर्मा जी के चेहरे पर लटके प्रश्न को समझते हुए सुरेन्द्रनाथ को याद आया कि माथा भी टेकना चाहिए था, दान पेटी में भी कुछ डालना चाहिए था। अब समस्या थी कि एक हाथ में प्रसाद में मिला एक सेब और एक केला था। कैसे झुक कर माथा टेकें और किस तरह जेब में हाथ डाल कर पर्स में से पैसे निकालें! शर्मा जी ने उनकी कठिनाई दूर कर दी, बोले, "प्रसाद मुझे पकड़ा दें।"

सुरेन्द्रनाथ खिसयाए से मुस्कराए और शर्मा जी को प्रसाद थमा कर माथा टेका। जब उन्होंने जेब से पर्स निकाल कर खोला तो उसमें केवल बीस-बीस डॉलर के नोट ही थे। अब वह दुविधा में थे। इस परिस्थिति में शिष्टाचार क्या कहता है? जोत की थाली में रखे पाँच-पाँच डॉलर के नोटों के साथ अपना बीस का नोट भुना लें या कड़वा घूँट भर कर बीस ही चढ़ा दें। एक क्षण ठिठकने के बाद उन्होंने बीस डॉलर का नोट ही थाली में रख दिया। शर्मा जी के चेहरे की मुस्कराहट कानों तक फैल गई। उन्होंने प्रसाद के फल सुरेन्द्रनाथ को थमा दिए। सुरेन्द्रनाथ धीमे क़दमों से दीवारों को देखते हुए हाल के दरवाज़े की ओर चल पड़े। शर्मा जी उनके एक क़दम पीछे रहे। मेज़ के पास पहुँच कर शर्मा जी बोले, "वापिस जा रहे हैं क्या? थोड़ी देर बैठ लें। आराम से लौटिएगा।"

सुरेन्द्रनाथ को इस आमंत्रण की आशा नहीं थी। उन्होंने मुस्कराते हुए शर्मा जी ओर देखा। नज़र मिलते ही शर्मा जी बोले, "एक-एक कप चाय का पीते हैं। मेरा चाय पीने का मन हो रहा है और चाय अकेले पीकर मज़ा नहीं आता। कोई तो साथ होना ही चाहिए," शर्मा जी हल्के से हँस दिए। शर्मा जी बात काम कर गई।

सुरेन्द्रनाथ मुस्कराए, "जी आप आग्रह कर रहे हैं तो चाय तो पीनी ही पड़ेगी।"

शर्मा जी ने अवसर नहीं गँवाया, एक कुर्सी खींचते हुए बोले, "आप बैठिए बस मैं पानी गैस पर रख कर आ रहा हूँ।"

शर्मा जी मंदिर की रसोई में ओझल हो गए और सुरेन्द्रनाथ बारीक़ी से मेज़ पर बिखरी हुई वस्तुओं को देखने लगे। कंप्यूटर ऑन था। एक ओर एकाउंटिंग का रजिस्टर खुला पड़ा था। शर्मा जी की ऐनक भी वहीं थी। स्पष्ट था कि शर्मा जी लैजर की एंट्रीज़ कर रहे थे। मंदिर का हिसाब-किताब भी क्या शर्मा जी ही देखते हैं– यह प्रश्न सुरेन्द्रनाथ के मन में आया। इतने में शर्मा जी लौट आए। उनके हाथ में दो प्लेटें थीं। एक में खोए की बर्फ़ी और दूसरी में दाल-बीजी थी। मुस्कराते हुए उन्होंने मेज़ पर प्लेटें रखीं और बात फिर छेड़ी, "आप कहाँ रहते हैं?" शर्मा जी अभी भी घर का प्रश्न पूछना चाहते थे।

सुरेन्द्रनाथ बोले, "आप जानते हैं जहाँ एल्ज़मेयर रोड समाप्त होती है - मॉर्निंगसाइड के बाद; उन्हीं घरों में।"

शर्मा जी को उत्तर चाहिए था वह मिल चुका था। उस इलाक़े में घर बड़े थे और उस इलाक़े में रहने वालों की आर्थिक समृद्धता को प्रमाणित करते थे।

"बहुत अच्छा, वह इलाक़ा तो बहुत अच्छा है। शांत...।"

"जी हाँ, यह तो है। बहुत दिनों से वहीं रह रहा हूँ।"

शर्मा जी ने आगे कुरेदा, "बहन जी नहीं आईं?"

सुरेन्द्रनाथ थोड़ा सा असहज हुए, पर उत्तर तो देना ही था, बोले, "जी उनका स्वर्गवास हुए दो वर्ष हो चुके हैं? अकेला ही हूँ।"

"बच्चे क्या पास ही रहते हैं?" शर्मा जी बड़ी चतुराई से हर नवांगतुक की पूरी

जन्मपत्री बना लेते थे।

"जी हाँ, दो बेटे हैं और दोनों अपने-अपने परिवारों के साथ पास ही में रहते हैं। बस यही कोई दस-पन्द्रह मिनट की दूरी पर।"

शर्मा जी के चेहरे पर संतोष की मुस्कराहट थी। जो जानकारी वह चाहते थे वह मिल चुकी थी बस यह जानना रह गया था कि सुरेन्द्रनाथ किस पोज़ीशन से रिटायर हुए हैं। इतने में स्टोव पर रखी चाय की केतली की सीटी सुनाई दी।

"लीजिए पानी तो तैयार हो गया," शर्मा जी बोले, "आप कुछ लीजिए," उन्होंने बर्फ़ी और नमकीन की ओर इशारा किया, "मैं बस चाय लेकर आता हूँ। आप बताइए चीनी कितनी लेते हैं?"

"जी बस आधा चम्मच।"

शर्मा जी फिर रसोई में कुछ समय के लिए ओझल हो गए। सुरेन्द्रनाथ सोचने लगे कि शर्मा जी का कितना शांत व्यक्तित्व है। और मंदिर की मद्धम सी रोशनी और नीरवता उन्हें भली लग रही थी। यहाँ बैठे रहने का और बातें करते रहने का उनका मन कर रहा था। इतने में शर्मा जी दो कप प्लेटों में चाय लेकर प्रकट हुए।

"लीजिए," कह कर शर्मा जी ने भाप निकलती चाय का कप मेज़ पर रख दिया और अपना कप लेकर मेज़ की दूसरी ओर अपनी कुर्सी पर जा बैठे। एक लम्बी साँस छोड़ कर उन्होंने खुले लैजर की ओर देखा और उसे बंद करके एक ओर कर दिया। उन्होंने सुरेन्द्रनाथ जी को फिर मिठाई और नमकीन लेने का निमन्त्रण दिया और अपना कप उठा कर होंठों को लगाया।

"सुरेन्द्रनाथ जी, आपके आने से पहले सुबह से यह लैजर के आँकड़े ही देख रहा हूँ। कंप्यूटर में एंट्रीज़ करनी है। आँखें थक चुकी हैं। अब बुढ़ापा भी तो है। कब तक करूँगा!" उनके स्वर में हताशा थी।

"समझ सकता हूँ शर्मा जी, सारी उम्र यही करता रहा हूँ।"

"सच!" शर्मा जी ने नक़ली विस्मय से देखा, "अगर आप बुरा न मानें तो आप क्या..." शर्मा जी ने बात आरम्भ करके बीच में ही छोड़ दी।

"जी सी.ए. हूँ, मैं एक फ़र्म में ऑडिटर था। बस इन आँकड़ों में पूरा जीवन निकाल दिया। इसीलिए कहा 'समझ सकता हूँ' अगर आपको कुछ पूछना हो तो निस्संकोच पूछिए।"

"भाई साहिब... आपको भाई साहिब तो कह सकता हूँ न?" शर्मा जी ने मुस्कराते हुए पूछा। निश्चित रूप से शर्मा जी आत्मीयता को बढ़ाना चाहते थे।

"बिल्कुल, आप जो चाहें कह सकते हैं। वैसे मैं आपसे उम्र में काफ़ी छोटा हूँ। आप मुझे सुरेन्द्रनाथ कहें या सुरेन्द्र... मुझे कम औपचारिक लगेगा।" सुरेन्द्रनाथ ने कह तो दिया परन्तु अगले क्षण कुछ अजीब लगा। अभी तक उन्होंने अपने को 'सुरेन्द्र' कहने का अधिकार सिवाय अपनी पत्नी के, किसी और को नहीं दिया था। अब और इन्हें क्यों?

"ठीक है सुरेन्द्र जी, अगर आपके व्यक्तिगत जीवन में कोई कठिनाई न हो तो क्या आप कुछ समय मंदिर के लिए निकाल सकेंगे?" कह कर शर्मा जी ने चाय की चुस्की ली। वह कुछ समय सुरेद्रनाथ को सोचने के लिए देना चाहते थे। वैसे उनकी निगाहें निरन्तर सुरेन्द्रनाथ के चेहरे पर टिकी हुई थीं।

"जी अवश्य, मैं मंदिर की सहायता करने के लिए तैयार हूँ। आजकल ख़ाली ही हूँ।"

चाय का कप समाप्त होते-होते शर्मा जी के कंधों पर भार की कमी हो गई। सुरेन्द्रनाथ ने मंदिर के हिसाब-किताब को देखने का दायित्व सँभाल लिया था। चाय पीते हुए कुछ समाज की, कुछ राजनीति की और कुछ विदेशों में भारतीय संस्कृति की बातें होती रहीं। तय हुआ कि सुरेन्द्रनाथ सप्ताह में एक-दो दिन मंदिर अवश्य आएँगे। शर्मा जी प्रसन्न थे। सुरेन्द्रनाथ जी अपने-आप पर हैरान थे। आज के लिए इतना ही बहुत था। उन्होंने चाय का कप मेज़ पर नहीं रखा। खड़े होते हुए शर्मा जी से पूछा, "बताइए किचन कहाँ है?"

शर्मा जी समझ गए कि यह क्यों पूछ रहे हैं, "नहीं सुरेन्द्रनाथ जी, यहीं छोड़ दें, मैं उठा दूँगा बाद में। चलिए आपको दरवाज़े तक छोड़ दूँ," और वह सुरेन्द्रनाथ के आगे चलने लगे।

सुरेन्द्रनाथ ने जूते डाले, शर्मा जी से विदा लेते हुए, कल यानी शनिवार को सुबह दस बजे आने का वायदा किया और बाहर का दरवाज़ा खोला। उसी समय शर्मा जी ने उन्हें टोका, "अरे! आप अपना छाता तो यहीं भूल रहे हैं!" और छतरी उठा कर सुरेन्द्रनाथ के हाथ में थमा दी।

घर लौट कर सुरेन्द्रनाथ आज विशेष रूप से अधिक ख़ुश थे। कोने में पड़ी छतरी को वह बार-बार देखकर बाक़ी का सारा दिन मुस्कराते रहे।

शनिवार की सुबह जब वह मंदिर पहुँचे तो वहाँ इतनी भीड़ को देख कर बहुत हैरान हुए। शर्मा जी भी बहुत व्यस्त थे। उनके मेज़ के बराबर एक अन्य मेज़ लगा हुआ था जिस पर एक व्यक्ति दान पेटी के साथ बैठा था। उसके सामने रसीद-बुक और कुछ पेन पड़े थे। मंदिर की किचन से औरतों की आवाज़ें आ रही थीं। आज पंडित जी भी दिखाई दिए। उन्होंने भी सुनहरी किनारी वाली धोती और कुर्ता पहना हुआ था। कुछ लोग मंदिर को सजा रहे थे।

सुरेन्द्रनाथ को इतना हैरान देखकर शर्मा जी ने बताया, "सुरेन्द्रनाथ जी, सामने वह बिल्डिंगें देख रहे हैं न आप। यह सब लोग वहीं रहते हैं। मंदिर, समझिये, इन्हीं का है। जब भी यह लोग कोई पूजा-अनुष्ठान करना चाहते हैं या कोई निजी कार्यक्रम जैसे कि जन्मदिन, मैरिज एनिवर्सरी वग़ैरह – मंदिर का हाल इनके लिए खुला है। अगर अपनी बिल्डिंग का पार्टी हाल किराये पर लें, इन्हें महँगा पड़ता है। और वहाँ पर नियम भी अधिक कड़े हैं। बिल्डिंग के केयर-टेकर भी खाने की गंध की शिकायत करते हैं। हम यह सब समझते हैं। सुरेन्द्र जी, मंदिर केवल पूजा करने का भवन ही नहीं होना चाहिए। सामाजिक केन्द्र होना चाहिए। यही सोच के साथ इस मंदिर को स्थापित किया था।" शर्मा जी ने छोटा सा भाषण दे डाला।

सुरेन्द्रनाथ मुस्कराते हुए सुन रहे थे। उन्हें बाक़ी के जीवन का उद्देश्य मिल गया था। दिन भर वह मंदिर में व्यस्त रहे। अजनबी लोगों के बीच उन्हें अच्छा लग रहा था। मेज़

कुर्सी पर उन्हें बैठे देख बहुत लोगों ने अपना परिचय दिया। बहुत से बच्चों ने चरण-स्पर्श किया और सुरेन्द्रनाथ ने भी बहुत सी रंग-बिरंगी झोली लहँगा पहनी छोटी-छोटी बच्चियों के सर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया। बच्चियों की माओं के चेहरे पर निश्छल मुस्कराहट देखना उनके लिए संतोषजनक था। वह विस्मित थे– एक ही दिन में वह इतना बदल जाएँगे! सारी उम्र संक्षिप्त बात करने वाले सुरेन्द्रनाथ आज इतना हँस-बोल रहे थे।

दोपहर के खाने के बाद, लोगों ने मिल-जुलकर मंदिर की सफ़ाई की ताकि संध्या की आरती के समय मंदिर साफ़-सुथरा लगे। जब सब लोग जा चुके तो शर्मा जी और सुरेन्द्रनाथ मेज़ पर कुर्सियाँ खींच कर बैठ कर दिन भर के कार्यक्रम की समीक्षा कर रहे थे। शर्मा जी बहुत थके प्रतीत हो रहे थे। इतने में एक महिला ने एक ट्रे में चाय के दो कप और कुछ नाश्ता सजा कर मेज़ पर रख दिया और मुस्करा कर बोली, "लगता है अंकल जी बहुत थक गए हैं। ऐसे में मेरी चाय तो और भी अच्छी लगेगी।" एक शरारती हँसी के साथ उसने अपनी चप्पल पहनी और बाहर निकल गई। कोई धन्यवाद की प्रतीक्षा नहीं, कोई औपचारिकता नहीं बस अपनापन– जैसे घर के बुज़ुर्ग की दिनचर्या का पता था उसे– इस समय शर्मा जी को चाय चाहिए। सुरेन्द्रनाथ को लगा कि शर्मा जी का यही परिवार है। इतना बड़ा परिवार जिसका अब वो भी हिस्सा थे। उस दिन लौटते हुए जब शर्मा जी ने जब छतरी सुरेन्द्रनाथ को पकड़ाई तो सुरेन्द्रनाथ ने वापिस नहीं ली, बोले, "शर्मा जी यहीं कोट रैक में लटकता रहने दें। अगर बारिश के दिन किसी को आवश्यकता हो तो उसे दे दें।" और सुरेन्द्रनाथ घर लौट आए।

आजकल सुरेन्द्रनाथ लगभग हर रोज़ ही मंदिर जाते हैं। शर्मा जी की मेज़ के साथ ही उनका मेज़ भी लगा दिया गया है। शर्मा जी के मेज़ का कंप्यूटर अब सुरेन्द्रनाथ के मेज़ पर है। और हाँ, वह छतरी– न जाने कई लोगों के घर जा चुकी है पर हर बार वापिस मंदिर लौट आती है।

000

लघुकथा

पाव रोटी

किसलय पंचोली

यद्यपि अब उच्च मध्यमवर्गीय घरों के बच्चों से अमूमन घरेलू काम नहीं करवाए जाते। उनके हिस्से आता है नए-नए खिलौनों, किताबों कंप्यूटर और इंटरनेट का संसार। उनकी ज़िंदगी में प्रतियोगिता और उसे से बढ़कर उनके प्रति अपेक्षाएँ इतनी ज़्यादा होती हैं कि माता-पिता चाह कर भी बच्चों से कोई कार्य नहीं करवाते कि उनका टाइम बचे।

फिर भी मैंने रात के भोजन को लगाने की ज़िम्मेदारी मेरे बच्चों दीपाली और दीपेश पर छोड़ रखी है। सो वे दोनों डाइनिंग टेबल पर खाना लगा रहे थे।

आपस में हँसी-मज़ाक और बराबरी कर रहे थे। उन्होंने ताज़ा बना भोजन थालियों में परोस दिया था। मैं पहुँची। फ्रिज खोला तो देखा एक ठंडी रोटी बची है। मैंने वह आदतन अपनी थाली में डाल ली।

दीपाली ने देखा मैंने ऐसा किया, उसने रोटी उठाई चार टुकड़े किए और सबकी थालियों में पाव रोटी के एक-एक टुकड़े परोस दिए।

मैंने देखा इनकी आँखों में अँगीठियाँ सुलग आईं। मैं समझ गई कि इन्हें बेटी की यह हरकत सिरे से नागवार गुज़री है। तभी वे कहने लगे 'आइंदा जो भी ठंडा बचे मेरी थाली में पटक दिया करो।'

'नहीं पापा या तो ठंडा खाना बराबर बटेगा या गाय को डाल देंगे।' इनकी आँखों की अँगीठियों का धुँआ जैसे कह रहा था- डाइनिंग टेबल नहीं हुई हाईकोर्ट की बेंच हो गई। बेटी नहीं हुई मानों चीफ जज हो गई। यह सब मेरी नासमझी और बेजा शिक्षा का नतीजा है। मैं कुछ बोल क्यों नहीं रही बेटी से कि इस तरह का व्यवहार तुम्हें शोभा नहीं देता। दूसरे घर जाओगी और ऐसा करोगी तो हमारी नाक कटवाओगी।

लेकिन मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा। मुझे ठंडी पावरोटी भी ख़ासी गर्म लगी। सो मैंने क्रांति की चिंगारी पर राख नहीं डाली। मैंने देखा कि दीपेश का चेहरा नया पाठ पढ़ चुका था।

000

किसलय पंचोली, एफ़-8, रेडियो कॉलोनी, रेसीडेंसी एरिया,
इन्दौर, मप्र 452001
मोबाइल - 9926560144, ईमेल- kislayapancholi@gmail.com

मास्टरनी का जादूमंतर

इला सिंह

"अरे, राधा! काम छोड़, पहले इधर सुन ज़रा।"

"जी, भाभी! का हुआ ?" रसोई के बाहर से ही झाँककर रधिया पूछती है।

"अरे अंदर आ ना।"

"हम अंदर आएँ?"

"हाँ-हाँ,जल्दी आ।"

"लेकिन...ताई ?"

"ताई मंदिर गई हैं, अभी देर है उन्हें आने में।" कह जल्दी से राधा को रसोई के अंदर खींच लिया।

"ये कचौड़ी खाकर जल्दी से बता कैसी बनी है। कुछ कमी -बेसी होगी तो ठीक कर लूँगी अभी। ताई मंदिर से लौटती होंगी। वो आ गईं तो फिर कुछ नहीं हो सकता, भगवान् को भोग लगाने के बाद खाएँगी तो कमी पर डाँट के अलावा कुछ नहीं मिलेगा।" लाऑपाला सेट की सामने ही रखी प्लेट में दो कचौड़ी चटनी के साथ रख रधिया के हाथ में पकड़ा दी।

रधिया प्लेट हाथ में पकड़े किंकर्तव्यविमूढ़-सी खड़ी नई बहू का मुँह देख रही है।

"भाभी! अभी ताई भगवान् जी को भोग लगाएँगी, तभी न सब खाएँगे।"

"अरे कुछ नहीं होता, मैं तो रसोई में नहीं खा रही हूँ ना। तू तो बच्ची है, तेरे खाने में क्या दोष? फिर कन्या तो देवी रूप होती है ना, ताई जी ही तो कहती हैं,...चल अब जल्दी से खाकर बता, ठंडी भी हुई जा रही हैं। कचौड़ी तो गर्म-गर्म ही खाने में मज़ा आता है... जानती है अपने घर तो मैं दाल की कचौड़ी बनते ही टूट पड़ती थी, माँ चिल्लाती रहतीं, पर कौन सुनता था जी ...सीसी-सीसी करते हुए दो-चार कचौड़ी तो मैं रसोई में हाथ में पकड़े-पकड़े ही खा जाती थी।" बताकर हँसते हुए एक नमी तैर गई बहू की आँखों में।

रधिया लक्षित कर खिल्ल से बोल उठी, "भाभी ! आपको अपने घर की याद आ रही है ना?"

"अरे नहीं रे..." हल्के-से नाक सुड़क चेहरा कड़ाही की तरफ घुमाते हुए वह तत्पर हो उठी। "राधा, प्लीज़ जल्दी कर न, अभी ताई जी आने ही वाली हैं...वैसे आज मंदिर में सत्संग बता रही थीं, हो सकता है थोड़ा समय लग जाए, फिर भी..."

"अच्छा ठीक है, मैं अपनी पलेट ले आती हूँ।"

"अपनी प्लेट ?अरे प्लेट में ही तो दी हैं, अपनी-तेरी क्या...चल खा!"

"भाभी ! आपको नहीं मालूम क्या ?"

"क्या ?"

"जात !"

"मतलब?"

"मतलब मेरी जात जानती हैं न?"

"कचौड़ी में जाति कहाँ से घुस आई, राधा !"

राधा ज़ोर से हँस पड़ी - "अरे कचौड़ी में नहीं... पर आपने मेरे बरतन नहीं देखे क्या ...बाहर वाले आँगन के आले में रखे तो रहते हैं, रोज़ उनमें ही तो खाती हूँ।"

"अरे ठीक है बाबा! पर अभी तू इसी प्लेट में खा लेगी तो तेरा धर्म नहीं चला जाएगा, दो घंटे प्लेट लाने में लगा देगी।"

राधा बड़े शहर से आई नई बहू को मज़ाक और आश्चर्य से देख रही है, इनको कुछ नहीं पता, भला ऐसा कहीं होता है। हाथ में पकड़ी प्लेट पर नज़र जाती है, झक सफेद, एक तरफ थोड़े हल्के लाल मटमैले धूसर-से फूल, गाँव की तलैया में तैरते बगुला की याद हो आई उसे,

इला सिंह
फ़्लैट नं. 201, घनश्याम पैलेस
सेक्टर 16, इंदिरा नगर, लखनऊ
उप्र 226016
ईमेल- ilasingh1967@gmail.com

ऐसा ही तो उजला होता है और ये फूल तो बिल्कुल उसकी चोंच से हैं ...उसमें रखी कचौड़ी, हरी चटनी देख पता नहीं क्यूँ उसे लगा जैसे पानी से निकले बगुला की पीठ पर सूखी और हरी पत्ती चिपक गई हो, यह ख़याल आते ही वह फिक्क से हँस पड़ी।

घर से थोड़ी दूर ही तो तालाब है, फुरसत मिलते ही वह सीधे पहुँचती है तलैया पर। पानी में तैरते बगुलों को देखना कितना भाता है, कैसा चमकीला-चमकीला तलैया का नीला पानी और उसपर तैरते भक्क सफेद बगुले, जैसे नीले आसमान में छोटे-छोटे सफेद उड़ते बादल ...अगर सुबौ-सुबौ पहुँच जाओ तलैया तो मज़ा ही आ जाता है, कैसी तो बयार बहती है तलैया पर। मन करता है पंख लगा बयार जैसे ही हौले-हौले बहे पानी के ऊपर। और सूरज बाबा... जब थोड़े लाल -लाल से, अरे..जैसे रमली काकी के बचवा हुआ तो ऐसे ही लाल-लाल रहा ना, जैसे चून में ग़लती से सेंदुर मिला दिए हों, अपनी मइया की नीली-नीली साड़ी से झाँककर देखने लगते हैं, सच्ची में मन करता है उन्हें गोद में ले उछालूँ। जैसे रमली काकी के काका अपने बचवा को उछाल-उछाल खिलाते हैं। मगर उसे नहीं उछालने देते, हूँह ...रधिया ने होंठ बिचकाए।

"हे मेरे राम !जे का दलिद्दरपना हो रहा यहाँ?"

ताई की तीखी-तेज़ आवाज़ रसोईघर में गूँजी और रसोईघर की दीवारें दहल उठीं जैसे। राधा के हाथ काँप उठे और छन्न की आवाज़ से प्लेट उसके हाथों से छूट ज़मीन पर टुकड़ों में पड़ी थी, जैसे बगुला के टुकड़े-टुकड़े हो पड़े थे तलैया के किनारे, जब किसी जंगली जानवर ने हमला कर दिया था बगुले पर। एक कचौड़ी उछलकर ताई के पैरों के पास और एक अभी भी उसके हाथ में लगी थी जिसे मुँह तक ले जाने ही वाली थी वह। डर से कँपकँपाते हुए भी कचौड़ी वाले हाथ को अपने दुपट्टे में छिपाने का ध्यान बराबर रहा उसे।

"चल भाग चम्मट्टी कहीं की ...झाँकियों मत मेरी देहरी पै ...हिम्मत तौ देखौ ...चौका में घुसी चली आईं ...नीच जात ...भेज अपनी महतारी को, बताऊँ तेरे लक्खन।"

ताई के मुँह से क्रोध में झाग निकलने लगे, उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि अपने क्रोध को कैसे निकालें! अभी मंदिर से लौटी थीं, राधा को तो हाथ भी नहीं लगा सकती थीं। इस शहर से आई बहू बनी छोकरी को दो तमाचे रसीद करने को उनके हाथ फड़फड़ा उठे। मगर देवर बरामदे में बैठे अपने कागज़ों में मुँह घुसाए बैठे थे। इसका खसम भी अभी सोया पड़ा है पर अपनी हीर के लिए दो शब्द नहीं सुन सकता। तुरंत कूद पड़ता है, जो ज़रा इस छोकरी को समझाने लगो।

पता नहीं क्या लक्खन लेके आई है पीहर से ...कभी चौका में चप्पल लेके घुस जाएगी, कभी पूजाघर में...अकल नाम को नहीं... उस दिन इस रधिया को पूजाघर में ही घुसाए दे रही थी झाड़ू लगाने को, बोलो, चमरिया को घुसाओगी गोपाल के दरबार में... समझाओ तो देवर टपक पड़ते हैं, "अरे भाभी... बच्ची है, समझ जाएगी और आप भी जादा तनाव न लिया करो जात-पाँत के चक्कर में... अब कौन मानता है इन बातों को... जिन गोपाल की तुम बात करती हो, वो तो सबके थे। जानती हो भाभी, उडुपी में एक बड़ा प्रसिद्ध कृष्ण मंदिर है वहाँ दर्शन के लिए पीछे की तरफ एक खिड़की है। कहा जाता है कोई कनकदास थे कृष्ण के अनन्य भक्त नीच जाति के, जिन्हें मंदिर में प्रवेश की अनुमति नहीं थी और कन्हैया ने उनकी अनन्य भक्ति से प्रभावित हो दर्शन देने के लिए अपनी गरदन ही खिड़की की तरफ मोड़ दी, आज भी मुख्य द्वार की तरफ उनकी पीठ है और खिड़की की तरफ चेहरा और राम ...राम ने तो शबरी के झूठे बेर ही खा लिए, तो जब भगवान् ही नहीं मानते तो हमारी-तुम्हारी क्या औकात...।"

"लो करलो बात ...अब भगवान् से तुलना करेंगे ...अरे भगवान् हुए हो का? पुरखों से चली आ रही रीत ख़तम करेंगे, ...उनको तो अकल ही नहीं थी न जो ये नियम बनाए, बस चार किताब पढ़कर तुम्हें अकल आ गई ...हमें समझाते हैं ....बताओ आज तो हद्द ही कर दी, चम्मट्टो चौका में तौ घुसी -घुसी ...गोपाल कौ भोगअऊ न लगौ और वा पटरानी जीमन बैठ गई और वोउ इत्ती महँगी काँच की पलेट में, घर के बरतन में ...नीच जात को अब अपने बरतन में खिलाओगी, इनके तो वैसे ही दिमाग़ ख़राब कर गए नेहरू-गांधी, तुम इनै और सिर पै बिठाय लेओ। माना...लाई हो काँच के बरतन अपने पीहर से पर जाकौ ये मतलब थोड़ी है कि भूल ही जाओ कि हो तुम बहू ही... घर के आचार - विचार ही गँवाए दे रहीं हैं जे तो।" ताई का स्वगत-भाषण चले जा रहा था, सुर कभी मंद्र कभी पंचम।

बहू नीचे सर झुकाए रसोई धोने में लगी समझ रही थी, जल्दबाज़ी हो गई उससे, जन्मों के संस्कार, जो अंदर तक बिंधे हैं, पोर-पोर में समाए हैं, इतनी आसानी से नहीं जाते, सदियाँ लग जाएँगी।

अक्सर रधिया को देखती थी। मासूम-सी बच्ची, रोज़ अपनी माँ के साथ आती घर के बाहर वाले आँगन -दालान, हाते को झाड़ती-लीपती, बगल में बने घेर में बँधे भैंस-गायों को दाना-चारा डालती, नहलाती-धुलाती, अनाज फटकना -छानना करती। रधिया का बाप रमादीन भी जब खेतों से फुरसत पाता तो उनके साथ लग जाता। आज दोनों ही खेत में लगे थे सो रधिया ही अकेले आई थी, आज उसे अकेले पाकर ही वह यह हिम्मत कर बैठी थी और उसकी भूल का कितना ख़ामियाज़ा उस बच्ची और उसके माता-पिता को उठाना होगा, नहीं जानती। अक्सर रधिया की नज़रें पकड़ी थी उसने, जिनमें एक लालसा नज़र आती थी।

उस दिन बड़े भैया आए थे और महँगी कटलरी निकली थी, रधिया कैसे बैठक की खिड़की से चिपकी, खाने की प्लेटों पर निगाहें जमाए थी। ताई ने उस दिन भी उसे डाँट कर भगा दिया था। पता नहीं ताई अब उसे काम पर आने भी देंगी या नहीं। अभी तो सबसे बड़ी समस्या ताई को खाना खिलाने की थी। आज यह एक महायुद्ध उसे लड़ना होगा। इतने दिन में यह बात अच्छी तरह समझ में आ गई है, ताई का क्रोध सबसे पहले खाने पर ही निकलता है। मुँह बाँध लेती हैं बिल्कुल ही। उस दिन बड़ी भाभी को देखा था- बेचारी, ताई

के सामने खड़ी सूखती रहीं मगर ताई के मुख से नहीं निकल गई तो हाँ न हो सकी। बात सी बात नहीं थी बस भाभी ने ग़लती से ताई से बिना पूछे नाऊन को खाना दे दिया था। मगर उस दिन उस पर ताई को प्यार आ गया था, पता नहीं बड़ी भाभी को नीचा दिखाना था या भूख तेज़ लगी थी, जो ताई बड़ी भाभी के लाख मनाने, क्षमा माँगने पर खाने को तैयार नहीं थीं, उसके थाली ले जाने पर झट से ताई ने खाना खा लिया। वह आश्चर्य चकित रह गई मगर बड़ी भाभी हँस पड़ी थी -"जिस दिन ताई तुम से नाराज़ होंगी न नीरू !हमें बुला लेना, वो हमारे हाथ से खा लेंगी। बहुओं को नियंत्रण में रखने का सासों का यह भी पैंतरा है।"

मगर आज बड़ी भाभी भी नहीं है, ताई का ग़ुस्सा कैसे शांत होगा।

कुछ तो करना ही होगा, यह इम्तिहान दिए बिना काम नहीं न चलेगा, भले ही तैयारी ज़ीरो है। रसोई धो-पोंछ फिर से कचौड़ी का पूरा सरसंजाम कर काँपते हाथों से थाली ले ताई के सामने जा खड़ी हुई।

"खाना खा लीजिए, ताई जी!"

"चलौ हटौ सामने ते ....हमें भूक-बूक नाय।"

"ताईजी, प्लीज़ ...हमें माफ... कर दीजिए।"

"हम कौन होत हैं माफी देने वाले?"

"प्लीज़, ताई जी ! हमें बिल्कुल मालूम नहीं थी रधिया की जाति।"

"हाँ, तुम तो दूध पीबती बारक आई हो, कछु नाय मालुम ....अब जो जी में आऐ सो करौ। नए ज़माने की आय गईं तुम ...हम तौ आसरतू हैं तुमारे सुसर -आदमी की, सो हम का कह सकत हैं।"

ताई इतना बोल गईं तो नीरू को भरोसा हो गया कि अब ताई मान जाएँगी वरना जब वे नाराज़ होती हैं तो शुरूआती गालीगलौच-चिल्लमचिल्ली के बाद एकदम चुप्पी साध लेती हैं।

और जिससे नाराज़ हैं उससे तो कई दिन का अबोला चलता है। उसे दिखा-दिखाकर दूसरे से बात करेंगी, कहेंगी-सुनेंगी और उसके कुछ भी कहने-पूछने पर उसे अनसुना करेंगी। नीरू ने यह सब बड़ी भाभी के साथ अक्सर होते देखा है। अभी नई है वह यहाँ, लेकिन इतना समझ आ गया है ताई जी को नाराज़ करके इस घर में रहना मतलब जेल में रहना हो जाएगा।

ताई अपने विधवापन और औलादहीन होने को हथियार बनाकर प्रयोग करती हैं देवर और निर्मल के समक्ष। फिर उसे तो यहीं रहना है निर्मल के साथ। उसकी तो शर्त ही यह थी शादी की और उसे कोई विरोध भी नहीं था इस शर्त का। वह तो खुद गाँव का जीवन पसंद करती थी। कुछ था उसके दिमाग़ में, मन में जो चलता रहता था। कुछ करना चाहती थी। सामाजिक विसंगतियाँ उसे हमेशा उलझन में डालती थीं।

रधिया के परिवार का आँगन से अंदर प्रवेश निषिद्ध और वहीं नाऊन चाची रसोई में बर्तन-भाँडे सब धोती-माँजती मगर खाना वो भी नहीं छू सकतीं, बर्तन उनके भी अलग थे खाने के। मगर वो आँगन के बाहर आले में रधिया के बर्तनों के साथ नहीं, रसोई के बाहर वाले आले में रखे रहते। अक्सर नीरू ने इस अंतर के लिए रधिया और उसकी माँ के प्रति नाऊन चाची का उच्चता भाव परिलक्षित किया था।

सदियों से चले आ रहे इस कास्ट सिस्टम ने जैसे आत्माओं को जकड़ा हुआ है। इस मकड़जाल से निकलना इतना आसान है क्या! रधिया की माँ जाति के कारण इतना अपमानित होती है, मगर शौचालय साफ करने आई भंगन से वह भी दूरी अपनाती है। आख़िर इस समस्या का समाधान क्या है ?...नीरू उलझ कर रह जाती।

"अरी, तू इतनी जल्दी कैसै आ गई री, रधिया! और यहाँ तलैया पर का मक्खी मार रही है बैठी। सगरौ काम है गयो तेरौ ?" तलैया में कंकड़ फेंकती रधिया के सामने अचानक माँ आ खड़ी हुई।

"अरी बोल काय कू ना रई,साँप सूंग गयो तोय।" माँ को देख रधिया की धिग्गी बँध गई। ठोड़ी सीने में जा धँसी।

"अरी लौंडिया, का है गयो तोय ?" माँ झल्ला उठी।

इस बार भी जबाब नहीं मिलने पर रधिया की माँ घबरा गई।

"लाली ...का बात है, काई नै कुछ कही है, मोय बता लाड़ो।" माँ ने पास खींच लिया राधा को।

माँ का स्पर्श पाते ही रधिया बुरी तरह हिलक उठी जैसे बिजली का बटन दबाते ही मिक्सर ग्राइंडर की घर्र-घर्र शुरू हो जाती है। कुछ टूटे-फूटे, अधूरे, रोते-बिलखते शब्दों से जो कहानी रधिया की माँ के समक्ष खुल रही थी, वह उसकी आँखों में अँधेरा लाने में काफी थी।

"अरे लड़की ! ये तूने का कर डाला ...अब ताई छोड़ेंगी ...कभी पहले भी गई चौका में, जो पहुँच गई। जे तो सही में ग़लत है गयो लाली ! तोये पतो नाय, हम कौन हैं ?" अम्मा ने सिर पकड़ लिया।

"पर अम्मा ! नाऊन काकी कैसै घुस जाएँ उनके चौका में, वोऊ तौ नीच जात हैं।" जिन नियमों को आज तक मानती आई थी न जाने क्यों राधा का मन उनके विरुद्ध विद्रोह कर उठा।

"वामें का बात है, लाली ! बो हम ते ऊँच जात हैं तईं लैं। फिर तैनै देखी नाय, हमाई चौका में भंगन घुस सकै?" राधा की माँ रमरतिया ने अपनी तुरुप चाल चली। रधिया उलझ कर रह गई। जो चीज़ आदतों में रची-बसी थी, आज यक्ष प्रश्न बन गई थी राधा के लिए।

ताई को मनाना टेढ़ी खीर ही था रमरतिया और रमादीन के लिए। दोनों से खूब नाक रगड़बा ली ताई ने, तभी काम पर दोबारा आने की इजाज़त दी, हामी भरी। देवर रघुवीर सिंह को भी हस्तक्षेप करना ही पड़ा। वह जानते थे, अपने क्रोध और उतावलेपन में ताई ने अगर रमादीन का काम बंद करा दिया तो उनके लिए मुश्किल हो जाएगी। सारा खेती-क्यारी, खेत-खलिहान रमादीन और रमरतिया ही सँभालते थे। उन्हीं के भरोसे उनके काम चल रहे थे। रघुवीर सिंह पढ़ने-लिखने के बड़े शौकीन। ज़्यादा समय उनका अपने शौक को ही समर्पित था, अब यह खेती-खलिहान तो उनके लिए मजबूरी का नाम महात्मा गांधी ही

था।

रधिया की तो रूह काँपती ताई से। उनके सामने पड़ने से भी बचती। कब काम पर आती कब चली जाती, नीरू भी पता न लगा पाती। झरोखे से लग कभी कभार जो अंदर की रौनक झाँक देख लिया करती थी, रधिया भूल ही गई। नीरू और निर्मल इधर काफी व्यस्त भी हो चले थे अपने प्रोजेक्ट में। गाँव की अनगिनत समस्याओं को ले कर दोनों लोगों को जागरूक, शिक्षित करने में लगे रहते।

ताई दोनों से बुरी तरह उखड़ी रहती। इस बहू के लक्षण उनकी समझ से बिल्कुल परे थे। आख़िर यह बहुरिया निर्मल को सिखा-पढ़ा कराना क्या चाहती है? अभी उस दिन ही, वो तो भौंचक्की रह गई थीं जब मंदिर में बहू को सिर उघाड़े पंडित जी से बात करते देखा कि गाँव के चूहड़े-चमारों को भी मंदिर में आना चाहिए। उनकी बारातों की निकरौसी भी मंदिर से होकर निकल जाए तो क्या बुराई है और कैसै तो मीठा-मीठा हँस-हँस कर बोलती है, बाप रे, सरम-लिहाज बिल्कुल ही बेच खाई है इन्ने तो और निर्मल भी कैसा हाथ पीठ पर बाँधे बहू की बानी बोल रहा था।

घर आ उन्होंने खूब बबाल मचाया। जमकर खरीखोटी सुनाई। मगर कैसी चिकना घड़ा हो गई है। अब तो हँस-हँस कर ही उनपर हावी हुई जा रही है, कभी गले से लिपट जाएगी, कभी प्यार से लिपटा लेगी, कभी गोद में सिर रख लेट जाएगी "ताई जी, आपसे पता नहीं क्यूँ माँ की खूश्बू आती है। मन करता है आपकी गोद में सिर रख लेटी रहूँ ...कैसी तो गहरी नींद आएगी आपके आँचल तले।"

ताई बेबस सी हो चली थीं। बताओ, ऐसी बहू होती हैं क्या ? ये तो घर के सारे नियम-कर्म को ही धता बताती जा रही है। ताई को नीरू पर खूब-खूब क्रोध आता। उस पर नियंत्रण के सारे दाँव-पेंच खेलती, मगर जब नीरू उनकी गोद में मुँह छुपाती तो उसके स्पर्श से न जाने उनके किन-किन अंतर दोनों से वर्षों की जमा स्नेह धारा बहने को आतुर हो जाती। उस स्नेह धारा को थामने में ही उनकी सम्पूर्ण शक्ति लग जाती। अंदर तक डर जातीं कि कहीं यह कल की छोकरी उनकी इस कमज़ोरी को जान, उन्हें अपने मायाजाल में फँसा तो न देगी।

वो खूब-खूब सजग रहतीं। अपने क्रोध, तेज़ और संयम को बनाए रखने के लिए। पर बात इतनी आसान नहीं थी शायद। यह कल की पैदा हुई चार जमा क्लास पढ़ी छोकरी उनके सारे भेद जानती जा रही थी जैसे। उन्हें भोर में ही चार बजे गर्म पानी पीने की आदत है, पता नहीं कैसे पता लगा लिया ... सुबह-सुबह घुटनों के दर्द से कराहते हुए बिस्तर से उठतीं कि गर्म पानी लोटे में लिए खड़ी होती। थोड़ी देर बाद ही उनकी दूध-अदरक वाली खूब गाढ़ी चाय बना लाती। न जाने कैसे उनके स्वाद को जान गई बिल्कुल वैसी ही बनाती जैसी वह पसंद करतीं। उनका खाना-नाश्ता, चाय-पानी, दवाई सब समय पर ...वह गुस्सा होने का मौका ढूँढ़ती और नीरू उनके मौके की तलाश को तलाश ही रह जाने देती।

मगर ताई इतनी भी कमज़ोर नहीं थी, अपना दबदबा कायम रख, उसकी तारीफ में एक फूटा शब्द न निकलने देती मुँह से। गाहे-बगाहे अपनी जाती सल्तनत के दुख में उनके मुख से ठंडी आह तो निकल जाती मगर सँभाले रखती अपने को, नीरू को पता न चलने देती और बात-बेबात ताने-तोक की बरसात करती रहतीं उसके ऊपर और वह थी कि मीठी हँसी से उनके तानों की धार कम करती जाती, ताई फड़फड़ा कर रह जातीं।

उन्हें तो अभी ही मालूम चला कि बहुरिया तो बिदेश में भी पढ़ाई करके आई है, "भाभी, अपनी बहू को ऐसा-वैसा न समझो, विदेश से पढ़कर आई है, वहाँ के बढ़िया नौकरी के ऑफर छोड़कर आई है, गाँव की सेवा करने के लिए।"

"सेवा कि हँसी ठट्ठा... का समाजसेवा करेंगी जे गाँव में। सब कुछ तौ अच्छा ही चल रहा है देहात में... बेकार की बातें करके दिमाग़ ख़राब कर रहीं हैं लोगों का।" देवर की बात से चिड़ उठी थीं वे।

"अरे भाभी, आज कल सब कुछ बदल रहा है, रहने-सहने का ढंग, खेती-किसानी का तरीका, किसानों के फायदे के नियम-कानून। गाँव का ग़रीब आदमी कुछ जानता नहीं, पढ़ाई-लिखाई न होने से उन्हें पता ही नहीं चल पाता कि सरकार उनके फायदे के लिए कितनी योजनाएँ बनाती है, क्या-क्या लाभ मिल रहा है। कुर्सी पर बैठे लोग उन तक सूचनाएँ पहुँचने नहीं देते या दुनिया भर की तिकड़में लगा उन्हें फायदा नहीं उठाने देते। जिनके बच्चे पढ़े-लिखे हैं, कोई गाँव में नहीं रुकता, सब शहर की अंधी दौड़ में दौड़ जाते हैं, भले ही वहाँ गाँव की मिट्टी को तरसते रहें। अपनी नीरू ने नई खेती पर रिसर्च की है। किसानों के लिए कक्षा लगाया करेगी। उन्हें सिखाएगी नए तरीक़े से खेती करना। फसल को मौसम की मार से कैसे बचाएँ। ज़्यादा पैदावार कैसे हो! फसल का सही मूल्य कैसे मिले! कर्ज़ा न लेना पड़े ऐसे उपाय सुझाएगी।"

ताई तंज में मुँह बिचका कर रह गईं। ऐसी बातें उन्होंने न कभी सुनी न देखी। ये कौन-सी दुनिया की बातें हो रही हैं। ये बहुरिया गाँव में खूब मज़ाक बनबा के छोड़ेगी। तभई कमल सिंह की लुगाई कैसी हँस रही, "ताई, त्यारी बऊ तौ गजब है।"

"करौ जो मन में आयै ...ना मुँह की खाई तौ जानूँ।" ताई चिढ़ती खूब है, मगर नीरू की हँसी और मुस्कान से न जाने क्यूँ दिल में उजाला सा सो जाता है। बड़ी बहू तो पहले ही इतना डरी-सहमी रहती है कि ताई को उसे कंट्रोल करने में कुछ ख़ास मज़ा नहीं आता। मगर नीरू के इन उलजुलूल कामों से वो आश्चर्य से भर उठती हैं और उसके विरुद्ध एक मोर्चा खोले बैठी रहती हैं। मगर नीरू के पास कौन सा जादुई हथियार है जो ताई की चिढ़ को लगातार काट रहा है।

आज सुबह से ही ताई को कुछ अच्छा नहीं लग रहा। निर्मल और नीरू आज सुबह ही सुबह जीप से शहर गए हैं, सुना वहाँ से दिल्ली जाएँगे। वहाँ नीरू बहू को कोई इनाम-सिनाम मिलने वाला है सरकार की तरफ से। ऐसा क्या कर दिया इस बित्ते भर की छोकरी ने। वो मुँह फाड़े सुन रही हैं....हाँ ये तो वे देख रही हैं, बहू को गाँव-देहात के लोग ज़्यादा ही भाव देने लगे हैं, जिसको देखो वही उसके गुण गाए जा रहा है, अपने ही नहीं आस-पास के गाँव वाले

भी खूब आने लगे हैं उससे मिलने। बहुत ग़ुस्सा आता है उन्हें जब वह नीरू को गाँव के लोगों से उघाड़ी सिर बात करते देखती हैं।

न जाने का हुआ है सारी बिरादरी को, उसकी निर्लज्जता पर किसी की नज़र ही नहीं जाती... सब उसकी मीठी मोहनी हँसी में उलझे हों जैसे, हमें का... सोच-सोच कर ताई की हर बार एक गहरी साँस निकल जाती है।

हालाँकि नीरू खूब उनको प्यार-व्यार करके गई है, बोरिया भर उपदेश दे गई है, - "ताई जी समय पर खाना खा लीजिए, अपनी दवाई महाराजिन काकी से ले लेना, ज़्यादा मीठा नहीं खाइएगा, शुगर बढ़ जाएगी।" वगैरा-वगैरा। बड़ी बहू खाना-वगैरा समय से दे गई है मगर ताई को भा नहीं रहा। अपना ध्यान हटाने की पूरी कोशिश कर रही हैं, ऊपर से स्वीकार भी नहीं है उनको कि उस दीपशिखा-सी जलती जोत सी उजाला करती घूमती बहू की याद आ रही है उन्हें।

क्या सच उसकी मनमोहनी हँसी का जादू चल गया है उन पर ...उनकी बातें क्यूँ याद आ रही हैं उन्हें। रघुवीर सिंह के ग़रीब चचेरे भाई की पत्नी, जवानी में ही विधवा हुई ताई देवर के ही आसरे रहीं शुरू से। विमल और निर्मल की माँ भी बच्चों की कम उम्र में चल बसी। रघुवर सिंह को ज़रूरत थी एक घर की देखभाल करने वाली औरत की और ताई को ज़रूरत थी एक आसरे की। धीरे-धीरे ताई अपना दुख बच्चों की परवरिश में भूल-सा गई मगर एक टीस ..., अपना घर; अपने बच्चे की मन में रही हमेशा। निर्मल-विमल को उन्होंने भरपूर प्यार दिया और देवर की गृहस्थी खूब ठसके से चलाई। देवर ने भी खूब मान-इज़्ज़त दी, उनका ठसका भी सहा।

ताई के दुख देखे थे उन्होंने। इसी से जैसे ताई चाहती उन्हें करने देते। ताई का ठसका ही चला था। वे सबको अपने डंडे के नीचे रखती आईं थीं। सब रौब खाते थे उनसे। उनसे इस नीरू की तरह प्यार से कोई बात नहीं कर पाता था। नीरू का प्यार जैसे उनके सूखे-बंजर अन्त:स्थल को भिगो-भिगो जाता।

आज पाँच-छह दिन हुए निर्मल और बहू को गए। ताई अंदर से विह्वल -बेचैन हैं। बार-बार अंदर बाहर कर रही हैं। उन्हें ग़ुस्सा भी आ रहा है अपनी कमज़ोरी पर। किसी काम में मन नहीं लग रहा, मंदिर के लिए निकल रही हैं तो याद आ रहा है नीरू बहू का उनकी पूजा की डलिया तैयार कर उनके हाथ में देना।

एक उसाँस ले आँगन से निकल हाते की तरफ निगाह उठ गई। चौंक गईं, रधिया हाते की दीवार से चिपकी, दीवार के ऊपर ठोड़ी रखे, शहर से आने वाली सड़क पर नज़रें लगाए खड़ी थी। इतनी सुबह रधिया यहाँ क्या कर रही है? आज इतनी जल्दी कैसे आ गई। महीनों हो गए उस प्लेट वाली घटना को, उसके बाद उन्हें यह लड़की नज़र ही नहीं आई थी। नहा-धो चुकी थीं पर न जाने किस वशीकरण के मंत्र से बिधीं रधिया के पीछे जा खड़ी हुईं। हाथ खुदबखुद रधिया के सिर पर पहुँच गया।

चौंककर राधा ने मुड़कर देखा। ताई जी को देख रंगे हाथों पकड़े चोर-सी सकपका उठी। ताई का हाथ उसे थानेदार का डंडा ही लगा। दिमाग़ थोड़ा व्यवस्थित हुआ तो यह क्या सुन रही है वह, "अरी इतने भिनसारे का कर रही है यहाँ..नीरू बहू का रस्ता तक रही है का,...सच्ची में कै दिन है गए बोलो, अब तक ना आई तेरी भौजाई।" रधिया ने ताईजी की आँख में दो बूँद चमकते देखी तो वह भी हिलक उठी और उसके न चाहते हुए भी आँसू बूँद बन भरे बादलों -सी आँखों से टप-टप टपक पड़े।

"चल उतरिया नीचे... आ जाएगी तेरी मास्टन्नी... खूब सबपे जादू मंतर किए है तेरी भौजाई, कन्हैया बनने चली है।" आँख पे आँचल धर ताई ने खींच लिया राधा को अपने आँचल तले।

और ...और...जैसे ...एकाकार, एकरूप हो गया ताई और रधिया का दुख-सुख,...राग-विराग,...क्रोध-गुस्सा... ऊँचा-नीचा।

और उधर ...इन असीम क्षणों की साक्षी बनी उनकी मास्टरनी गाड़ी से उतर हाते की तरफ भरी आँखों से देखे जा रही है भौंचक्की हुई.....

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

चिन्ना वीदू

विनीता शुक्ला

जब से नमित अपने ननिहाल से आया है, लगातार रोए जा रहा है। वह रह रहकर, अपनी माँ मीनाक्षी को, कोस रहा है। हाल में ही, उसकी इच्छा के विरुद्ध, वह उसे दो- तीन बार, अम्मप्पा (तमिल में नानाजी के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द) के घर, वागमोन ले गई है। बहाना एक ही- कोरोना की वजह से, घर में नौकर नहीं हैं। अम्मप्पा के घर चलेंगे, कुछ दिन आराम हो जाएगा। यह बात सच थी कि नानाजी की कोठी में, नौकरों के लिए खोलियाँ थीं; वहाँ सेवा- सत्कार भी अच्छे से होता था; किन्तु नमित को वहाँ की स्वच्छंद आबोहवा में भी घुटन सी महसूस होती थी। नानाजी की बाँहें तो हमेशा स्वागत के लिए खुली रहतीं पर अमम्मा (नानी) की मिचमिची आँखें, उसे लील लेने को आतुर जान पड़ती थीं।

उसके दसवें जन्मदिन पर, अम्मप्पा- भूतपूर्व सांसद वेंकट चन्दर जी, उनके घर आए थे। जहाँ तक उसे याद पड़ता है; पहली बार उनके दर्शन तब हुए थे, जब वह तीसरी कक्षा में था। वह तब ७-८ वर्ष का रहा होगा। माँ से पूछा था, 'ये बूढ़े बाबा कौन हैं?'

'बाबा नहीं रे, अम्मप्पा हैं तेरे...जा उनके पास जा...आशीर्वाद ले ले' वे एक मंदिर में मिले थे। नमित दुविधा में पड़ गया। पूछ ना पाया कि आख़िर अब तक यह कहाँ थे...कितना समय बीत गया...वह इतना बड़ा हो गया; इस बीच उनको, अपने इस नाती की याद, क्यों नहीं आई? लेकिन ज़बान तालू से चिपक गई थी। बड़ी बहन मीनल ने बाद में उसे समझाया कि अम्मप्पा के संग, उनके परिवार के कुछ मतभेद हो गए थे, इसी से बातचीत बंद चल रही थी।

मीनल अक्का की बात से, नमित की जिज्ञासा कम होने के बजाय, और बढ़ गई थी। मतभेद...पर क्यों?? किसलिए? क्या छोटे बच्चे को, यह जानने का हक भी नहीं? बड़े लोग बहलाने के लिए, कुछ भी, उलटी पट्टी पढ़ा देते हैं। ख़ैर! अम्मप्पा से दोस्ती के बाद, उसके छोटे से जीवन में, अद्भुत बदलाव आए थे। वागमोन की सुहानी वादियों से, परिचय हुआ; वहाँ प्रकृति की गोद में रहकर, अनेक दैवीय चमत्कार देखे...छोटे-छोटे सुखों से, उसकी झोली भर गई- देवदार वृक्षों के, असीम विस्तार को, अपने नन्हें कदमों से, नापने का सुख...आसमान छूते उस फैलाव में, सरसराती हवा के स्पंदन को, साँसों में उतार पाने का सुख...चाय बागानों के जादुई लोक में, पसरी हुई हरियाली पर, सुनहरी किरणों का नृत्य...उस सुनहले जादू को, आँखों में बंद कर लेने का सुख!

किन्तु माँ...! माँ तो वागमोन के मायावी संसार से, उसे दूर रखना चाहती थीं। तब उसे यह ठीक न लगता। यह और बात है कि आज वह खुद... उस राह, नहीं जाना चाहता! हठात् ही, अतीत की धुँध में डूबी, वागमोन की सर्पिल पगडंडियाँ, उसे कहीं खींच ले गईं...जहाँ सुधियों में

विनीता शुक्ला
टाइप 5 / 9
एन . पी . ओ . एल . क्वार्टर्स,
सागर रेजिडेंशियल कॉम्प्लेक्स
पोस्ट –त्रिक्काकरा, कोची 682021,
केरल
मोबाइल- 9447870920
ईमेल - vinitashukla.kochi@gmail.com

बसा, पहाड़ी- अंचल था...पक्षियों का मधुर कलरव...सुरम्य झरना...बाग़-बग़ीचों के बीच, अम्मप्पा की भव्य कोठी।

अमम्मा की भेदती आँखों को छोड़कर... सभी कुछ तो सुन्दर था! उसके संकोच को देख, नानाजी ने स्पष्ट कर दिया कि समय के साथ, उसकी नानी कुछ पगला गई है। हालाँकि नमित को वह पगली कम, धूर्त ज़्यादा लगती थीं। उन खुलते- झपते नेत्रों में, एक विचित्र चमक थी, जो उसे भीतर तक सिहरा देती! माँ के प्रतिरोध को, तब वह समझ न पाया; न ही उनके बदले हुए रवैये को...जब वे स्वयं उसे, वागमोन ले जाने पर उतारू हो गईं। पर अब धीरे- धीरे, बहुत कुछ स्पष्ट हो रहा है...परिस्थितियों ने उसे समय से पहले, परिपक्व बना दिया है।

मीनल अक्का (दीदी) ने उसको सावधान अवश्य किया था, अमम्मा के बारे में; यह कि उनसे ज़्यादा उलझना ठीक नहीं। न जाने क्यों माँ, उनको अम्मा न कहकर, चिन्नम्मा (छोटी माँ/ मौसी) कहती थीं। घर- बाहर, आस-पड़ोस में, उनका यही नाम प्रचलित था...अक्का के हिसाब से, माँ भी इस कारण, उन्हें वैसे ही बुलाने लगीं। नमित को लगता कि उसकी वह तथाकथित नानी, अपने अंदर, कोई बैर पाले हुए है। नानाजी महँगे उपहार देते या उससे लाड़ लड़ाते तो उनके 'कपटी' नयन, और अधिक पटपटाने लगते! तब वह अम्मप्पा के बूते, उस ईर्ष्या- भाव को, एक अदृश्य पटखनी दे देता।

क्या रुतबा था उसका...पर अब! बार-बार हुई बेइज़्ज़ती को, वह किसी तरह पचा नहीं पा रहा है। माँ का लाडला, उनकी आँखों का तारा नमित...जिस पर, एक तिर्यक दृष्टि उठने पर, वे सिंहनी की भाँति गर्जन -तर्जन करने लगतीं; उसे भीड़ के बीच, जलील होते देखती रहीं। कोई रोष नहीं जताया उन्होंने; बल्कि हाथ पकड़कर, वहाँ से जबरन...लगभग घसीटते हुए हटा लिया! वह माँ से बुरी तरह रूठा है। उनसे बोलना भी पसंद नहीं करता। उसके झल्लाने, बात- बात पर रिसियाते रहने से, वे दुखित अवश्य हैं; किन्तु उसके अनकहे आरोपों का कोई उत्तर, उनके पास नहीं।

इधर मीनाक्षी से, अपने दिल के टुकड़े, अपने निश्छल बालक की छटपटाहट, देखी नहीं जाती...और उस दिन तो हद ही हो गई! तैश में आकर, उसने खाने की थाली, ज़मीन पर पटक दी। 'नमित! ये क्या हरकत है?!' माँ के घुड़कने पर, वह निशब्द आँसू बहाने लगा। मीनाक्षी मानों सदमे में आ गई। कैसे समझाए अपने भोले बच्चे को...समझाने की प्रक्रिया में उसे, जीवन के उन क्रूर रहस्यों को खोलना होगा; जिन्हें इस नाज़ुक उमर में जानकर... भोले नमित के मन को, गहरी ठेस लग सकती थी। उम्र का यही पड़ाव... और... कुछ ऐसा ही द्रोह उसके भीतर भी उपजा था।

अप्रिय स्मृतियाँ जीवंत होकर, पुन: कचोटने लगी थीं। विडम्बना की दस्तक, उसने पहली बार तब सुनी; जब अम्मा ने उसे, लन्दन वाली अक्षया बुआ के, हवाले कर दिया। पहले भी कई बार बुआ ने, मीनाक्षी को, गोद लेने का, निवेदन किया था; किन्तु माँ ने वह प्रस्ताव, रुखाई से फेर दिया... फिर क्यों उस बार...? अपनी इकलौती बच्ची को कैसे, कोई दूसरे की झोली में डाल सकता है? माना कि बुआ नि:संतान थीं, स्वर्गीय पति, पर्याप्त धन, उनके लिए, छोड़कर मरे थे; क्या केवल इसलिये, अम्मा ने उससे, नज़रें फेर लीं ?

दुर्भाग्य यहीं पर नहीं थमा। बुआ ने माँ के ख़िलाफ़, उसके कान भरने शुरू कर दिए; यह कि जल्द ही उनकी गोद हरी होने वाली थी, इसीलिए... उन्होंने मीनाक्षी को लन्दन भेज दिया। समय के साथ, माँ को दो और संतानें मिल गई थीं- एक बेटा... और बेटी भी। न चाहते हुए भी मीनाक्षी का हृदय, तिक्तता से, कसक उठता। किस बात का बदला लिया, एक जननी ने, अपनी ही कोखजाई दुलारी से ? उनका स्नेह भुलाए नहीं भूलता। उनका सीने से सटाकर चूम लेना...और...रोज़ बालों में कंघी फिराकर चोटियाँ गूँथना... फूलों की वेणी, केशों में सजाकर, चुपके से दिठौना, कान के पीछे लगा देना!

जब वह स्कूल से आती, वे दौड़कर उसका बैग थामतीं। वह नहाकर कपड़े बदलती...और अम्मा... खाने की मेज़ सजाकर, उसकी प्रतीक्षा करतीं... वह उनके जीवन की धुरी! अप्पा (पिता) तो कभी काम के सिलसिले में, कभी किन्हीं अज्ञात कारणों से, बाहर रहते। वे घर में, बहुत कम दिखाई पड़ते। एक अम्मा ही थीं जो उसके आगे-पीछे डोलतीं...उसे घुमाती- फिरातीं, पढ़ातीं-लिखातीं...बात- बात पर बलैयाँ लेतीं।

उस गहरे ममत्व को, खुद ही, एक झटके में उखाड़ फेंका...कैसे कर सकीं होंगी वह! क्या यह अनुमान तक नहीं रहा, कि उन्होंने अपनी लाडो को, कैसा मर्मान्तक आघात दिया था...? बरसों बरस अम्मा ने, बिटिया की कोई सुध न ली! कभी भूले-भटके फ़ोन कर भी लेतीं तो बुआ से ही उसके हाल- चाल मिल जाते। नपे-तुले एकाध वाक्यों में, उनसे बात होती भी तो बुआ किसी भूतिया साए की तरह, सर पर सवार रहतीं। उनके होते माँ-बेटी, खुलकर बात, करतीं भी तो कैसे?

बुआ माँ के विरुद्ध, सदैव उसके कान भरतीं। उस पर एकाधिकार जो चाहती थीं। उनके बहकावे में आकर उसने, कुछ हद तक, यह मान लिया कि अम्मा, दूसरी औलादों के मोह में, अपनी इस बिटिया को भुला बैठी थीं! एक कटुता, मन में घर करती चली गई। समय ने करवट ली, दसवीं की परीक्षा के बाद, मीनाक्षी हल्का महसूस कर रही थी। वह अक्षया बुआ के, लन्दन वाले, डिपार्टमेंटल- स्टोर में खड़ी थी...अपनी दोस्त के जन्मदिन का तोहफा- एक सुंदर सा केक, पैक करवाने में लगी थी। सहसा एक भारतीय महिला, उसके पास आकर फुसफुसाई, 'तुम्हारी अम्मा का नाम धन्या है?' मूक सहमति पाकर उसने आगे बताया, 'वे बहुत बीमार हैं... तुम्हें देखने के लिए तड़प रही हैं।'

यह सुनते ही वह विक्षिप्त सी हो गई। माँ ने जो कुछ भी किया- उसके साथ...अच्छा या बुरा; उस सबके बावजूद वह उसकी माँ थीं और उसे किसी भी तरह, उन तक पहुँचना था- जल्द से जल्द! मीनाक्षी पर ज़िद सवार हो गई; इंडिया वापस जाने की। बुआ कुछ कम न थीं! वे भी अपने हठ पर अड़ी रहीं, उस पर अपनी पकड़, उन्हें ढीली नहीं करनी थी। अंतत: जीत मीनाक्षी की हुई। वह भूख-हड़ताल पर बैठ

गई...रो-रोकर आँखें सुजा ली थीं। उसकी हालत देख, अक्षया जी को झुकना ही पड़ा।

अपने ही विचार- मंथन से थककर, मीनाक्षी वर्तमान में वापस लौट आई। दोपहर बीतने को थी। संध्या की आहट, आसमान के बदलते रंगों और वृक्षों की फैलती हुई परछाइयों से मिल गई थी। दोनों बच्चे, किसी कंप्यूटर- गेम में, सर खपा रहे थे। उसने बग़ीचे की तरफ वाली खिड़की खोल दी और ज़ोर से साँस भरी। मोतिया- पुष्पों की सुवास, अंतस में घुलने लगी। रसोई में जाकर, वह शाम के नाश्ते की, तैयारी में लग गई। धीरे-धीरे पति जनार्दन के, ऑफिस से आने का, समय हो चला था। एक बार वह काम में क्या लगी, व्यस्त दिनचर्या में फँसकर रह गई...कुछ सोचने-विचारने का होश न रहा; किन्तु रात के आते-आते, जब दैनिक क्रिया-कलाप थम गए- ख़यालों का बवंडर फिर उमड़ आया।

वह अपने वतन, अपनी धरती पर... न लौटती... तो कैसे पता चलता कि अम्मा किस हाल में थी ? उनकी दुर्दशा देख, वह खून के आँसू रोई; तब पहली बार, चिन्ना वीदू शब्द का, अर्थ पता चला था। चिन्ना वीदू का शाब्दिक अर्थ- छोटा घर (चिन्ना अर्थात् छोटा + वीदू अर्थात् घर = छोटा घर); गर्भित अर्थ- रखैल का घर। चिन्ना वीदू का, एक दूसरा निहित अर्थ, रखैल भी था। लतिका, अप्पा की रखैल ही तो थी- जिसके कपटजाल से दूर रखने के लिए, अम्मा ने उसे- अपनी जान से प्यारी मीनू को...पराये हाथों में सौंप दिया। वे उसका बचपन, पंगु होने से बचाना चाहती थीं और वह...!! न जाने क्या- क्या सोचती रही, उनके बारे में; बुआ के भुलावे में आकर।

अप्पा ने लतिका से ब्याह अवश्य किया; किन्तु पहली पत्नी धन्या के रहते, वह रिश्ता नाजायज़ था। उनके रुतबे से डरकर, कोई इस अन्याय का, विरोध न कर सका...धन्या के मायके वाले, पहले ही कमज़ोर थे...माता-पिता वृद्ध और अशक्त- जो शीघ्र काल-कवलित हो गए। इधर लतिका ने, अपने सौन्दर्य को ही अस्त्र बना लिया...उसकी हैसियत बढ़ती चली गई और अम्मा की पहचान, धूल- धूसरित होती रही। अक्षया बुआ ने सच कहा था- माँ उसे दूर भेजकर, अपनी अन्य संतानों की, सेवाटहल में लगी थीं। परन्तु यह सच, झूठ के आवरण में लिपटा था...अम्मा की वे 'तथाकथित' संतानें- उनका अंश नहीं थीं; बल्कि लतिका के वजूद का, लहराता हुआ परचम थीं।

माँ तो बस एक सेविका थीं...निरीह...असहाय...! सेविका - जो बीमारी में भी, अपनी सेवाएँ, दिए जा रही थी। क्रूर यथार्थ का सामना करते हुए, पन्द्रह वर्षीय मीनू, कच्ची उमर में ही, सयानी हो गई। लतिका बला की निर्दयी थी। उसके दोनों बच्चे- साढ़े चार वर्षीय श्रीनिवास और तीन वर्षीय पल्लवी, शाही ठाठ-बाट में जी रहे थे। बात-बात पर ऐंठना, उनकी फितरत थी। वह माँ को, उस घुटन भरे परिवेश से निकालने हेतु, कटिबद्ध हो गई। यह एक सुखद संयोग रहा कि उसके मातृप्रेम ने अंतत:, बुआ का हृदय- परिवर्तन कर दिया। उन्होंने जाते-जाते, दो मोटे कंगन और भारी सी सोने की चेन, उसे पहना दी। ये आभूषण, अम्मा ने ही, बहुत पहले, उन्हें दिए थे।

बुआ ने उसके साथ, एक मोटी नोटों की गड्डी भी रखी। परिस्थितियों से उबरने में, उनके द्वारा दी गई आर्थिक सहायता, दोनों माँ-बेटी के, बहुत काम आई। वे वागमोन से दूर, एर्नाकुलम में, एक छोटा सा घर, लेकर रहने लगीं। बीच-बीच में बुआ, उनसे मिलने आ जातीं। मीनाक्षी ने, ग्यारहवीं कक्षा में, प्रवेश ले लिया था। वह छोटे बच्चों को, अंग्रेज़ी का ट्यूशन देने लगी। लन्दन-निवास ने, उसकी अंग्रेज़ी को, ख़ासा समृद्ध कर दिया था। अम्मा भी, निकटवर्ती कार्यालयों में, लंच- पैकेट भिजवाने का, छोटा-मोटा कारोबार करने लगीं। अक्षया बुआ, पैसों से मदद करती रहती थीं। जीवन फिर से, पटरी पर आने लगा था।

एक बार बुआ, देवर के बेटे को, लेकर आ गईं...जो उनके व्यापार को सँभालने के साथ, बढ़ती हुई आयु में, उनकी देखभाल भी कर रहा था। माता- पिता के गुज़र जाने के बाद, वह नितांत अकेला हो गया; इसी से, अक्षया जी ने पास बुला लिया। दूसरे शब्दों में कहें तो वह यानी जनार्दन स्वामी, उनका अघोषित वारिस था। बुआ और अम्मा की सहमति से, जनार्दन और मीनाक्षी, विवाह के पवित्र- बंधन में बंध गए। जब माँ और बुआ, दोनों ही, दुनिया से कूच कर गईं...मीनू और उसके पति ने, लन्दन की संपत्ति बेचकर, स्वदेश में काम जमा लिया।

मीनू स्वयं को सौभाग्यशालिनी समझती है...उसे ऐसा पति मिला जो दिल का बहुत साफ और उसकी परवाह करने वाला है। अप्पा को मेहरबान होता देख भी, कभी उनके पैसों का लालच नहीं किया... बल्कि स्वाभिमान को बनाये रखने के लिए, पत्नी को निर्देश दिया, 'अपने अवसरवादी अप्पा से, कोई भी भेंट लेने से बचो' पति द्वारा प्रयुक्त 'अवसरवादी' शब्द, मीनू के कानों में चुभता...किन्तु वह खुलकर, विरोध न कर पाती। एक तरह से, जनार्दन का कहना सही है। वेंकट चन्दर अपनी परमप्रिय लतिका और उसके जने बच्चों को ही, अपना सब कुछ मानते रहे। धन्या और उसकी बेटी के लिए, उनका कर्त्तव्य-बोध सोया ही रहा।

वक्त बदला। श्रीनिवास और पल्लवी, उनकी आशाओं पर खरे न उतर सके। पल्लवी किसी मवाली के साथ भाग गई और श्रीनिवास, ड्रग-तस्करी में, संलिप्त हो गया। यदि ऐसा न होता, तो भला, मीनू की याद, उन्हें क्यों आती? मीनू के बेटे, नमित से मिलकर; उनके मन में, ढेरों उम्मीदें जाग उठीं। जान पड़ा कि यह बालक, बड़ा होकर, उनका नाम रौशन करेगा। लतिका के दोनों बच्चे, उनके दिल से उतर चुके थे। पहली बार उन्हें, वैध और अवैध संतति का अंतर, महसूस हुआ। नमित के भोले शैशव में, वेंकट चन्दर की उपस्थिति ने, एक नया रोमांच, भर दिया था- परीलोक जैसे अनोखे, वागमोन का, उससे परिचय कराकर।

अब तो, वह अक्सर वागमोन जाने लगा था। वहाँ राजसी वैभव को, भोगते हुए... नैसर्गिक सुन्दरता में, नित- नए आयामों को, जुड़ते देखना... किसी मधुर स्वप्न का, हिस्सा लगता था। वह चिन्नम्मा के आँखों की किरकिरी बनता जा रहा था; यह जान-

समझकर उसकी माँ, उसे वहाँ जाने से रोकना चाहती थीं। तब वह उनकी उस आपत्ति में निहित, गूढ़ रहस्य को नहीं जानता था...ठीक से तो अब भी नहीं जानता...किन्तु संबंधों पर पड़ी यवनिका के उठ जाने से, उसे उनके, भुरभुरे होने का आभास अवश्य हो गया है।

इधर मीनाक्षी, इस पूरे सिलसिले को याद कर, परेशान होती रहती है। उसे ध्यान आता है कि अप्पा के स्नेह की बौछारें, धीरे-धीरे उसे भिगोने लगी थीं। जीवन भर, पिता के स्नेह को तरसती मीनू, उसे पाकर अभिभूत हो गई। वह भूल गई कि इसी पिता ने, उसे और उसकी अम्मा को, भगवान् भरोसे छोड़ दिया था। उनकी मेहरबानियों को, चाहकर भी, वह ठुकरा नहीं पाई। जो हक उन्होंने, उसकी माँ से छीना- उसका प्रतिकार नमित कर रहा था, उनके साम्राज्य में, अपना दबदबा बनाकर। किन्तु उसका परिणाम...। मीनू ने संयमित भाषा में, नमित के समक्ष, विगत की परतों को खोलना शुरू कर दिया...ताकि वह विचलित मन:स्थिति से, उसे उबार सके।

'तो चिन्नम्मा आपकी माँ नहीं ...अम्म्प्पा की दूसरी पत्नी हैं?' नमित तथ्यों की चीरफाड़ करने लगा था। मीनू ने यंत्रवत्, सिर हिलाकर, हामी भरी। 'और श्रीनिवास मामा...चिन्नम्मा के सगे बेटे...?' अगले प्रश्न के साथ, मासूम नमित की आँखों में, परिपक्वता की कौंध, दिखाई दी। अपने नन्हें बच्चे को, रिश्तों की पेंचीदगी में, उलझते पाकर, माँ का मन भर आया। उसका बस चलता तो...बेटे पर, विद्रूपताओं की, छाया तक ना पड़ने देती। मीनाक्षी का मौन समर्थन मिलने पर, नमित ने बात आगे बढ़ाई, 'तभी तो वे उस दिन...मेरे साथ...।' उसका वाक्य पूरा भी न हुआ था कि माँ ने, तसल्ली देने के अंदाज़ में, ज़ोर से, उसे भींच लिया।

माँ और बेटा, दोनों ही; अबोले की स्थिति में, जा पहुँचे। स्मृतियों के भँवर, उन्हें पाश में, जकड़ते चले गए। वेंकट चन्दर ने, अपने नाती में; भविष्य की संभावनाएँ, देख ली थीं। वे अक्सर, उसे पास बुलाने लगे। यूँ भी वागमोन की धरती, अपनी तरफ खींचती थी। केरल का यह हिल-स्टेशन, दैविक सौन्दर्य से भरपूर, अद्भुत पर्यटन-स्थल है। वहाँ रहना किसे पसंद न होगा? नमित को भी वागमोन बहुत भाता। चिन्नम्मा की काली नीयत को, वह ठीक से समझ नहीं पाया। जब अम्मप्पा, गंभीर रूप से बीमार पड़े; चिन्नम्मा के तेवर, और भी आक्रामक हो गए थे।

तब मीनू जान रही थी कि लतिका ने, अपराध की दुनिया में गुम हुए, श्रीनिवास को, खोज-निकालने की जेद्दोजेहद क्यों की...संबंधों को लात मारकर, दूर चली गई पल्लवी को, ढूँढ़ने का जतन क्यों किया। निश्चित ही उसे; अपना सिंहासन, डोलता हुआ, लगा होगा...राजमहिषी का पद, छिन जाने की, आशंका हुई होगी। आख़िर उसे, अपनी नामुराद औलादों का, पता-ठिकाना मिल गया। उसने तत्काल, उन्हें बुलवा भेजा। उनके पिता, जीवन की लड़ाई, हार भी सकते थे। ऐसे संवेदनशील समय में, जब बिरादरी के लोग; प्रख्यात वेंकट चन्दर का, हाल-चाल पूछने को, जमा हुए थे- अवसर को भुनाने से, चूकना नहीं था।

यह ज़रूर था कि नमित को वहाँ जाना, अब अच्छा नहीं लग रहा था। श्रीनिवास और पल्लवी की शह पाकर, लतिका उसे, कुछ ऊल-जलूल बक देती थी...कभी उसकी वेशभूषा तो कभी उठने- बैठने...बोलने-चालने...चलने- फिरने के ढंग पर कटाक्ष! उसकी माँ के, सौन्दर्य-बोध तक की खिल्ली उड़ाते...वे लोग!! नमित संस्कारों में जकड़ा था। तमतमाकर, उन्हें तीखी नज़र से घूरता...लेकिन इसके अलावा, कुछ न कर पाता। उसने माँ से साफ़ कह दिया कि उसे वागमोन में नहीं रहना। किन्तु माँ, आधा जीता हुआ युद्ध, वापस हारना नहीं चाहती थीं... उन्हें उसकी नानी का बदला लेना था- लतिका को उसकी औकात दिखाकर!

उस दिन नानाजी का जन्मदिन था। अपने हर जन्मदिन की तरह, उन्हें अपने 'भक्तों' को संबोधित करना था। इस बार अपने भाषण में, उन्होंने संकेत दिया कि उनका उत्तराधिकारी, नमित जैसा तेज़स्वी बालक ही हो सकता था। भाषण के बाद, वे क्लांत होकर, आरामकुर्सी पर ढह गए; किन्तु चिन्नम्मा से रहा न गया। वह अपने स्थान से उठ खड़ी हुई और नमित पर उँगली तानकर, उसे मनहूस और भिखारी जैसे अपशब्दों से, नवाजने लगी। इस बार, उस छोटे बच्चे ने, धैर्य खो दिया...इतने जनों के सामने, ऐसा निरादर! वह पूरी शक्ति लगाकर चीखा- 'चिन्ना वीदू...!!!' भीड़ स्तब्ध थी। बालक इतने दिन, रिश्तेदारों की दबी- छिपी खुसपुसाहटों में...अपने कुनबे के बारे में, गुप्त चर्चाओं की, भनक पाता रहा। आख़िरकार, उसने सच का संधान, कर ही लिया।

वह पल, मानों रुक सा गया था। वक्त के सीने पर, एक बोझिल सन्नाटे का भार था। सहसा श्रीनिवास ने सैंडल निकाली और नमित की तरफ दौड़ा... नानाजी ने बगल में पड़ा माइक उठाया...वे कुछ कहते कहते रुक गए- नाज़ुक हालात का ख़याल कर! मीनाक्षी अपने बच्चे को बचाकर, वहाँ से ले आई। भीड़ में से कोई न आया- बीचबचाव करने। उनके निजी मामले में, हस्तक्षेप का साहस, किसी में न था। वेंकट चन्दर, अपने व्यक्तिगत जीवन का, तमाशा नहीं बनाना चाहते थे...सो चुप ही रहे। धीरे- धीरे वह, अपनी व्याधि से उबरने लगे थे। उनके अंगरक्षक, उनकी सुरक्षा के लिए, और अधिक सक्रिय हो गए।

फ़िलहाल, नमित के सौतेले मामा और मौसी, अपनी- अपनी दुनिया में, वापस लौट गए थे। चिन्नम्मा सर्प की भाँति, अपनी बाँबी में, दुबकी पड़ी थीं। नमित, नाना जी से रूठा है। उनका फ़ोन नहीं उठाता...न ही व्हाट्स एप सन्देश, देखता है। सोच का क्रम भंग हुआ, जब मीनल ने टी. वी. चला दिया... कोई गाना, ज़ोरों से बज रहा था...तीव्र संगीत को सुनकर, माता और पुत्र; लगभग साथ ही, विचार-समाधि से बाहर निकले।

नमित ने गहरी साँस लेकर, मीनाक्षी को देखा और धीरे से कहा, 'अम्मा! नानाजी से कह देना कि अगर, वे इतने लोगों के आगे भी...मेरे अपमान को, रोक नहीं सकते- तो उनकी जायदाद से मुझे, एक धेला भी नहीं चाहिए!' प्रत्युत्तर में, माँ ने, उसे गले लगा लिया।

000

अनछुआ

अंशु जौहरी

किसी बेनाम आवाज़ की खुसर-पुसर से उसकी आँखें गहरी नींद में भी चौंक कर यूँ खुल गई थीं, जैसे उन्हें किसी ने सोते हुए, चोरी करते हुए पकड़ लिया हो, जैसे कसी हुई मुट्ठी अचानक दंभ तोड़कर, खुली हथेलियों में अपने को ढाल लेती है। उसने करवट ली तो उसके सिर के नीचे रखा तकिया बिना किसी शिकवे और शिकायत के गुड़ीमुड़ी हो गया जैसे उसे मालूम था कि राखी अधिक देर तक बिस्तर पर टिकने वाली नही है।

"जब कुछ सोचने को नहीं हो तो किस बारे में सोच-विचार किया जाए?" यह सोचते हुए राखी ने खिड़की के बाहर दृष्टि डाली। आकाश काला सा था जिसमें कँपकँपाते हुए कुछ तारों ने उसे आकर्षित किया। अपनी उनींदी आँखों की झपकती पलकों के बीच तारों की डगमगाती चमक को समेटते हुए उसे लगा जैसे इस समय उसकी नींद इस रोशनी को ग्रहण करने के लिये ही टूटी थी। वह रोशनी जिसकी यात्रा लाखों प्रकाश वर्षों पूर्व आरंभ हुई थी। "ऐसी असाधारण यात्रा का कैसा साधारण सा अंत!" उसने उठते हुए सोचा।

करीब एक हफ्ता होने को आया था जब उसने बर्ड-फीडर में अनाज भरा था पर अब तक वह अनछुआ पड़ा था। ये राखी के लिये बड़ी हैरानी की बात थी; क्योंकि पहले तो उसमें अनाज भरते ही तरह-तरह के रंगों और आकारों के पक्षी आकर दाना चुगने लगते थे। अपनी जगह बनाने के लिये बड़े आकार के पक्षी, छोटे पक्षियों पर दादागिरी दिखाते हुए उन्हें चोंच मार-मार कर भगा देते थे। और छोटे पक्षी, बड़े पक्षियों के बीच में से घुसकर वापस दाना चुगने में लग जाते थे। काले रंग के उस बर्ड फीडर पर अच्छी खासी रौनक हुआ करती थी जो दूर से एक लैम्प पोस्ट की तरह दिखता था। यह उसे मोयत्रा दंपति की तरफ से उपहारस्वरूप मिला था, जब उसने उन्हें अपने घर रात्रिभोज के लिये आमंत्रित किया था।

राखी को तीन हफ्ते लगे थे, उसे डिब्बे से निकालने में, उसके बाद एक और हफ्ता लगा था उसे असैंबल करने में, और एक और हफ्ता लगा था उसे बैकयार्ड में लगाने, चिड़िया के लिये अनाज के दाने लाने में। उस समय राखी को लगा था कि पक्षियों को कम से कम एक हफ्ता तो लगेगा यह समझने में कि लैंप पोस्ट से दिखने वाले उस फीडर में उनका दाना था। मगर दूसरे दिन ही एक चहचहाते कोलाहल से राखी की नींद एक घंटे पहले ही खुल गई थी। सूरज उस दिन भी आसमान में चढ़ा नहीं था और अचानक नींद टूट जाने के कारण उसे चिड़चिड़ाहट भी हुई थी। उसके घर के पिछवाड़े की तपस्यारत तंद्रा जिन सुरों से टूटी थी, न तो उनमें संगीत था, न ही

अंशु जौहरी
2839 नोर्क्रेस्ट ड्राइव,
सैन होज़े , कैलिफ़ोर्निया , 95148 यूएसए
मोबाइल- 408 -274 -5160
ईमेल- chichijohri@gmail.com

शोर, पर जिन्होंने प्रकृति की लापरवाह शांति को भंग किया था।

और आज घड़ी की टुकटुक, फ्रिज की घरघराती अनुगूँज और हर थोड़ी देर बाद टॉयलेट के स्वचलित फ्लश की ध्वनियों के बावजूद वही शांति एक उदास सन्नाटे सी बिखरी पड़ी थी। अचानक उसे याद आया कि टॉयलेट टैंक को नए रबर गैसकिट की ज़रूरत थी। दिनचर्या के एक साधारण से काम के याद आते ही वह चुस्त होकर उठ खड़ी हुई।

क्षितिज पर भोर के स्लेटी आकाश पर गुलाबी धारियाँ उदित हो रही थी। उसने खिड़की से झाँका, शायद ख़ामोश पक्षियों का कोई झुंड उसको जगाए बिना अपना नाश्ता कर रहा हो पर उसके हाथ निराशा हाथ लगी। बर्ड फीडर पूरा का पूरा भरा हुआ अनछुआ खड़ा था। उसकी खिड़की से दिखाई देती स्लेटी सड़क सुबह के रंग से बखूबी मेल खा रही थी, सिवाय उस आदमी के जो हरी जैकिट और पीले शार्ट्स में जॉगिंग कर रहा था, और जिसके पीछे लाल फ्लीस जैकिट पहने एक औरत अपने सफेद कुत्ते के साथ तेज़ कदम चल रही थी। खिड़की से दिख रहे पीछे वाले घर की लाल ईंटो से बनी चिमनी पर उसे एक कबूतर दिखाई दिया जो अपनी गर्दन को अपनी चोंच से साफ कर रहा था। पर कबूतर ने भी अपनी गर्दन सीधी की, फिर पंख फड़फड़ाए और बर्ड-फीडर के अनाज को नज़रअंदाज़ करके उड़ गया।

"यह मुझे क्या होता जा रहा है? जंगली पक्षियों से ऐसी अपनों जैसी आस? और अपने भी कब अपनी आसों पर खरे उतरा करते है? हर रिश्ता, हर बंधन जैसे काल की बहती धारा से कुछ क्षणों के लिये तुम्हारी ओर उठता है, तुम्हारा होता है और फिर तुमसे जुदा हो जाता है। पर तुम उन क्षणों को ही शाश्वत मान लेते हो, उन्हे सँभालकर, संजो कर फ्रोज़िन सब्ज़ियों की भाँति मस्तिष्क के फ्रीज़र में डाल लेते हो, इस विश्वास के साथ कि जब कभी ज़रूरत होगी, इन क्षणों को उष्ण किया जा सकता है। वो गतिमान होकर भी तुम्हारे लिये रुक जाएँगे।" राखी एक नि:श्वास के साथ वापस बिस्तर में लेट जाती है। एक

अजन्मे शिशु की मुद्रा में स्वयं को गहरे नीले कंबल से ढाँप लेती है कि ओढ़ा हुआ अंधकार रात का अहसास देता है, वह और सोना चाहती थी। नींद की भटक में उसे याद आया थोड़ी देर में ऑफ़िस के लिये निकलना होगा, ऑफ़िस से उसे मौली की याद आई, मौली जो एडमिनिस्ट्रेटिव असिस्टैंट थी।

एडमिनिस्ट्रेटिव असिस्टैंट बोले तो सेक्रेटरी, पर अमेरिका में 'सेक्रेटरी' शब्द अपमानजनक है। ऑफ़िस में मौली के फैशन और स्टाइल का दबदबा था, हर कोई उससे मुस्करा कर, विनम्रता से बात करता था, सिवाय उन तीन देसी बंदों के। वो तीन देसी बंदे मौली से ज़्यादा, कुछ ज़्यादा ही विनम्रतापूर्वक मुस्कराते हुए, अलबत्ता हँसते हुए बात करते थे।

वे तीनों कुँवारे थे और हमेशा साथ रहते थे। एक अपार्टमैंट, एक कार और ऑफ़िस में भी तीनों एक बड़े क्यूब में इकट्ठे बैठते थे। राखी ने गौर किया था कि जब भी मौली वहाँ से गुज़रती वो एक दूसरे को आँख मारते थे और फिर मुस्कराते थे। राखी को अहसास होता था कि वो उस पर भी हँसते थे एक दोस्त की तरह नहीं बल्कि जैसे कोई एक हिकारत, एक मज़ाक के ऊपर हँसता है, जैसे वह कोई इंसान नही, सिर्फ चलता फिरता माँस का लोथड़ा थी। वो कभी उससे खुद होकर बात नहीं करते थे हालाँकि वो भी देसी थी और कुँवारी भी। राखी को उनकी अनुपस्थिति से फ़र्क नहीं पड़ता था, पर उनकी उपस्थिति से उसे चिढ़ छूटती थी...चिढ़ छूटती थी उसके लिये उठी, उसे नापती तोलती, हेय दृष्टि से भरी उनकी हँसी से। उसे उनकी हँसी से उतनी ही घृणा थी जितनी पक्षियों के लिये इस प्रतीक्षा से थी।

वह वापिस घूम-फिर कर फिर पक्षियों पर पहुँच गई थी। सोना हो नहीं पाएगा। वह उठ खड़ी हुई।

ऑफ़िस में वह कॉफी मशीन से अपना कॉफी का मग भर रही थी, जब उसके पीछे खड़े जॉन ने उससे पूछा-"हैलो रैकी, वीकएंड कैसा था? क्या किया?"

राखी को पता था, जॉन उसका नाम नहीं उपनाम था, पर वह कभी उसका नाम याद नही रख पाती थी। जॉन से उसे सिर्फ अंग्रेज़ गायक, "एल्टन जॉन" याद रहता था। दिमाग़ में उसके नाम को ढूँढ़ने के घोड़े दौड़ाते हुए उसने जवाब दिया-"कुछ नहीं घर पर दोस्तों के साथ मिलकर मूवी देखी, 'रैबैक्का', फिर हम सब खाने के लिये थाइ रैस्टोरैंट गए, फिर ताश हुए। रविवार को देर से उठी और वही लाँड्री, बर्तन!" जॉन अभिभूत होकर अपना सिर हिलाकार बोला, "बहुत बढ़िया। मेरी पत्नी को तो फ्लू हो गया था। उसी की देखरेख में समय चला गया।"

कॉफी लेकर अपनी डैस्क पर लौटते हुए राखी को अपने झूठ से ग्लानि हुई। कैसे बताती कि वीकएंड पर उसने सिर्फ चिड़ियों का रास्ता देखा। दोपहर के भोजन के समय जॉन फिर उसके ऑफ़िस में था,"हम सब खाने के लिये बाहर जा रहे है। तुम आओगी क्या?"

"बहुत शुक्रिया एल्टन, सॉरी मेरा मतलब डेविड..." उसके दिमाग के घोड़ों ने अंतत: जॉन का नाम ढूँढ़ ही लिया। वहाँ डेविड जॉन बौखलाया सा उसे देख रहा था। राखी का मन हुआ कि कह दे कि मैं घर से खाना लाई हूँ, पर उसके मुँह से निकला-"कौन-कौन आ रहा है?"

"मै हूँ, रागवैन, विलियम, ज्यूड, मैनजिट और मार्क।"

"ठीक है, मैं भी आती हूँ।"

वे सब पास के मैक्सिकन रैस्ट्राएंट में पहुँचे। राखी ने चिकन फहीता ऑर्डर किया।

उसके ऑर्डर पर मनजीत ने उसकी टाँग खींची, "...तो तुम चिकन को सावर क्रीम में डुबाकर बीन्स के साथ खाओगी?"

"...तुम ग्वाकामोली सॉस को भूल गए।" राखी ने तिलमिलाकर जवाब दिया।

"...हाँ वह भी! पर बिचारे तोरतिया ने क्या बिगाड़ा है। उसे क्या चिड़िया को खिलाने के लिये छोड़ दोगी?" मनजीत ने उसका वाक्य पूरा किया। उसने मनजीत को घूरकर देखा जो इस समय अपनी बत्तीसी निपोर कर खिलखिता रहा था। राखी का मन हुआ कि एक घूँसे से उसकी उसी बत्तीसी के दो टुकड़े कर उसे उस प्लेट में डाल दे, जिसे बैरा उसके सामने रख रहा था। ग़ुस्से को काबू में करने के लिये उसने सड़क पर दृष्टि डाली तो एक काली चिड़िया को लोगों की प्लेट से गिरी जूठन को चुगते देखा। उस काली चिड़िया की चौकस लाल आँखों और लंबी नुकीली चोंच में राखी को क्रूरता दिखाई दी, उसे लगा जैसे मनजीत कुछ-कुछ उस क्रूर चिड़िया की तरह दिखता था। सोच कर वह मन ही मन मुस्कराई थी।

"...तो ये मुझे फईता खाते हुए देखता है, फिर मज़ाक उड़ाता है। क्यों, क्यों खाऊँ मैं सबकी तरह? क्यों खाऊँ उस तरह से जैसे उसे खाया जाना चाहिए? जैसा मेरा मन करेगा मैं वैसे खाऊँगी। चिकन को सावर क्रीम और ग्वाकामौली सॉस के साथ, एक चम्मच रिफ्राइड बीन्स के साथ, बिना तोरतिया के!" उसकी साँस अपनी ख़ामोश बग़ावत की तीव्रता से भारी थी जब जॉन ने मनजीत से कहा-" मैनजिट, तुम्हारे खाने को देखकर मेरे मुँह में पानी आ रहा है।"

मनजीत मुस्करा कर कुछ कहे उसके पहले मार्क ने राघवन से पूछा-" रैगवैन तुम्हारी सर्फिंग कैसी रही?"

"एकदम ऑसम मार्क!" और फिर सब सर्फिंग, समंदर, हवाओं के रुख और उससे जुड़ी बातों में मशगूल हो गए थे, जब उसे अचानक चम्मच से खाना मुँह में डालते हुये "ब्लू जे" की याद आ गई जो नियम से दाना चुगने आया करती थी। उसके नीले-नीले पंख, उसकी उड़ान, उसका गर्दन घुमाकर

खुद को साफ करना। ये सब अरुल की ग़लती थी कि वह बर्ड फीडर में दाना डालने से, या कुछ भी करने से एकदम उचाट हो गई थी। और फिर चिड़ियों ने निराश होकर आना ही छोड़ दिया।

"राखी तुन्हें तैरना आता है?" मार्क उससे पूछ रहा था।

"सॉरी मैं समझी नहीं।"

"मैंने पूछा तुम्हें भी तैरना आता है?"

"नहीं, मुझे शार्क से डर लगता है।" उसने सकपकाहट से उबर कर फुर्ती से जवाब दिया था ऐसे जैसे वह बड़ी तन्मयता से उनकी बाते सुन रही थी जो सर्फिंग, समंदर और पैरा सेलिंग से शुरू हुई थी।

"शार्क से डर! स्विमिंग पूल में?" मनजीत ने साँप की तरह फुफकारते हुए ज़ोर का ठहाका लगाया था। राखी ने चोरी से नज़र घुमाकर देखा, सबके चेहरे पर मुस्कराहट नाच रही थी। उसका मन हुआ कि काश! इस वक्त वह सचमुच ऐसे स्विमिंग पूल में होती जो शार्क, पिराना, मगरमच्छ और उड़ते साँपों से भरा हुआ था। उस समय राघवन, मार्क और बाकी सब बड़े स्वाद के साथ अपना-अपना बुर्रिटों खा रहे थे, जब उसका मन हुआ कि वह वहाँ से उठ कर भाग खड़ी हो। उसने स्वयं को संयत किया और अब उसकी आँखें वापस उस काली चिड़िया पर थी।

खाना खाने के बाद वे लोग वापस ऑफ़िस की ओर चल पड़े थे जब राघवन ने ऐलान किया, "ख़बर है कि मनजीत की शादी होने वाली है।"

"किससे?" जॉन ने पूछा।

"एक लड़की से, है ना।" राखी ने उत्तर दिया और मनजीत ने खा जाने वाली नज़र उसकी ओर बढ़ाई।

"क्या ये अरेंज्ड मैरिज है?" मार्क ने पूछा।

"हाँ।" मनजीत ने उत्तर दिया।

"और वो लकी लेडी यहाँ पर है?" विलयम ने पूछा।

"नहीं, भारत में।"

"तुम जानते हो, उसे?" जॉन ने अपनी भारी आवाज़ में पूछा था।

"नहीं। पर मेरी मॉम जानती है उसे और उसके परिवार को। और मैं उससे वॉट्स ऐप पर रोज़ बातें करता हूँ। आजकल जिस तरह लोग टिंडर जैसे डेटिंग ऐप पर ब्लाइंडली मिलते है, उससे तो ये हज़ार गुना बेहतर है।" मनजीत ने पूरे जोश के साथ अरेंज्ड मैरिज की प्रतिरक्षा में पैरवी की थी।

"...तो राखी तुम भी ऐसे ही अपनी मॉम के चुने हुए लड़के से शादी कर लोगी?" ज्यूड ने राखी से पूछा था।

राखी कुछ जवाब दे पाए उसके पहले मनजीत ने जवाब दिया था।

"लड़कियों के लिये इतना आसान नहीं है। खासकर विदेशों में रह रही लड़कियों के लिये।"

"मॉम भी ढूँढ़ रही है। पर वे चाहती हैं कि मैं खुद अपने हिसाब से ढूँढ़ लूँ कोई यहाँ।"

"और तुम्हें एक अजनबी के साथ शादी करने में कोई दिक्कत नहीं होगी।" ज्यूड उसका पीछा ही नहीं छोड़ रहा था।

"हम सभी किसी न किसी सतह पर अजनबी होते है। कुछ लोग थोड़ा ज़्यादा, कुछ लोग थोड़ा कम। अब चाहे आप शादी किये बिना दस साल बिता दो और फिर जानो कि अजनबी अब भी है, चाहे शादी करके शादी के दस साल बाद जानो, क्या फर्क पड़ता है! शादी तो एक सेफ्टी नेट है मेरे हिसाब से, व्यवहारिक तौर पर यदि दो लोग आत्म निर्भर है तो भावनात्मक आत्मिकता के लिए शादी की ज़रूरत नहीं है।"

कहने को राखी ने कह दिया पर मन में वह सोचती बैठी कि क्यों बात कर रही थी वह इन सबसे? कितनी बड़ी मृगतृष्णा थी भावनात्मक आत्मीयता! खट्टी, मीठी, कड़वी, चटपटी, बेइंतिहा स्वादों को समेटे और टूटे तो कोरी और बेस्वाद!

"यानी की जैसे भी हो किसी भी रिश्ते की आत्मा की उम्र दस बरस की होती है- चाहे शादी करो या बिना शादी के रहो। दस साल के बाद हम एक दूसरे के लिए अजनबी हो जाते है, और रिश्ते की जगह रिश्ते की लाश को ढोने लगते हैं।" राघवन ने बौद्धिक निर्भीकता को दर्शाते हुए उत्तर दिया था।

"...तो मैनजिट यह बताओ, अगर तुम्हें कोई लड़की यहाँ अमेरिका में पसंद आ जाती तो तुम क्या करते?" ज्यूड ने पूछा।

राखी को ज्यूड एक कठफोड़वे की तरह लगा, जो बार-बार तने पर एक ही जगह अपनी चोंच से प्रहार कर रहा था- "टुक टुक, टुक टुक" और तना था कि जैसे लकड़ी का नहीं, लोहे का बना था।

"मैं अपने माँ डैड के आशीर्वाद के बिना शादी नहीं करता।" मंजीत में छुपे लोहे के तने ने बड़े भरोसे के साथ उत्तर दिया था।

"और अगर वे आशीर्वाद न देते तो?" अब ज्यूड पर राखी को चिढ़ छूट रही थी, क्योंकि अब राखी चिड़ियों के बारे में नहीं सोच पा रही थी, अब उसे अरुल की याद आ रही थी।

"मैं अपने माँ-डैड को जानता हूँ। वे मेरी पसंद को नकारते नहीं। उन्हें बस थोड़ा समझाना पड़ता।" मंजीत ने फिर अपने असीम विश्वास का भौंडा सा प्रदर्शन किया था।

"... या तुम्हारे माँ-डैड तुम्हे समझा लेते कि "बेटा, यह लड़की तुम्हारे लायक नहीं है। समझाते तुम्हें कि ज़िंदगी के बारे में उन्हें तुमसे ज़्यादा पता है।"

"मेरे माँ-डैड को तुम नहीं जानती, उन्हें मुझ पर पूरा भरोसा है।" मंजीत ने क्रुद्ध स्वर में जवाब दिया था।

"... कि उनका पुत्तर खुद होकर अपने लिए लड़की ढूँढ़ कर ज़िंदगी में रास्ता नहीं भटकेगा।" मंजीत के चिढ़े हुए कथन को

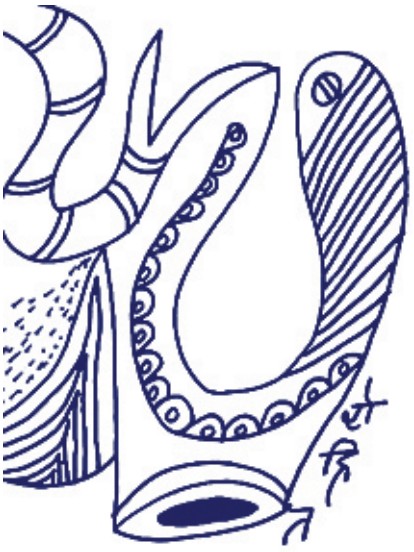

राघवन ने उसे और चिढ़ाते हुए पूरा किया था। गुस्से से मंजीत का चेहरा फिर लाल हो गया था।

"क्या करोगे मंजीत जो तुम्हें अपनी बीवी शादी के बाद पसंद न आए?" ज्यूड जैसे पीछे ही पड़ गया था।

"अरे ज्यूड, शादी के बाद इस बात की ज़्यादा संभावना है कि मंजीत की बीबी को मंजीत न पसंद आए।"

"ऐसा नहीं होता।" मंजीत फुफकारा था।

"कैसा?" राघवन ने पूछा।

"यही कि शादी के बाद कोई तुम्हें पसंद न आए। सब हमारे हाथ होता है। अगर हमारा मन दृढ़ हो तो, हमारा चरित्र..."

चलते-चलते, सब लोग मिल कर प्रेम, अरैंजड और डिरेन्ज विवाह की बात कर रहे थे और राखी को याद आ रहे थे "टरडस मिग्राफोरस", यानी ब्लू रौबिन नाम की चिड़िया के झुण्ड। उस दिन वह अरुल को उसी चिड़िया के बारे में बता रही थी कि कैसे पिछले दो दिनों से वे उसके फीडर पर मंडरा रहे थे, जब अरुल ने उससे कहा था, "मुझे बधाई दो। मेरी शादी तय हो गई है।"

"चल हट! तुम्हें पता है अरुल कि रौबिन ब्रीडिंग के मौसम के बाद अपने-अपने रास्ते चले जाते है।" उसने अरुल की घोषणा को नज़रअंदाज़ करते हुए उत्तर दिया था।

"क्या रौबिन को लेके बैठी हो यार! जानना नहीं चाहती किसके साथ कर रहा हूँ?"

"बताओ किसके साथ कर रहे हो। और जिसके साथ भी कर रहे हो, यह बताओ मैं अब चिड़ियों के बारे में किसके साथ बात करूँगी, बोलो? चलो अच्छा है, मेरी जान छूटी।" कहकर यूँ उसने ठहाका लगाया था, पर भीतर तीव्र वेदना की कसक उसे भेद गई थी।

अभी पाँच महीने पहले ही तो उनका ब्रेकअप हुआ था। अरुल ने उससे कहा था कि मॉम-डैड उसके साथ शादी को राज़ी नहीं हो रहे, "पर हम हमेशा दोस्त तो रह सकते हैं?"

"शादी की जगह फ्रेंडज़ोनिंग?"

पर उसे अरुल चाहिए था, वह उसे रोज़ देखना चाहती थी, उससे बातें करना चाहती थी। उसने सोचा नहीं था कि उसकी ज़िंदगी भी करोड़ों फिल्मों की घिसी-पिटी थीम होकर रह जाएगी, जिसका फिल्मी अंत मन माफिक दूल्हे से शादी होना होता है।

"क्या सोच रही हो राखी?" विलयम का प्रश्न उसे वर्तमान में ले आया था।

"रॉबिन्स के बारे में। मेरा मतलब, मेरे कुछ दोस्त ग्रैंड कैनियन जा रहे है और कुछ सैक्रामैंटो नदी में वाइट वाटर राफ्टिंग करने। दोनों ने ही मुझे आमंत्रित किया है। समझ नहीं आ रहा कि क्या करुँ?"

"इस तरह की अनिर्णय की स्थिति को एक अच्छी दुविधा माना जाना चाहिए। भगवान् सब को ऐसी दुविधा के अवसर नहीं देते। तुम क्या कहते हो, मार्क?" विलियम ने राखी के मैनेजर मार्क की ओर प्रश्न फेंका था।

"मेरे हिसाब से दोनों करना चाहिए। एक हफ्ते की छुट्टी लो और अपनी ज़िंदगी जियो।"

यह सुनकर राखी की आँखें चौड़ी हो गईं - "मार्क, सचमुच? तुम मज़ाक कर रहे हो, है ना?"

"न, मैं बिलकुल मज़ाक नहीं कर रहा।"

बातें करते हुए वे ऑफ़िस के निकट पहुँच गए थे। दूर से उन्हें "क्रिएटिव सेमीकंडक्टर्स" का बोर्ड दिखाई दे रहा था। राखी को हलकी हवा में जम्हाई लेती टहनियों पर कुछ गौरैया फुदकती दिखाई दी। उसे फिर अपने फीडर का अनछुआ खाना याद आ गया। गौरैया तक

उसका खाना खाने नहीं आई। वो लोग अब बिल्डिंग के बाहर थे। राखी ने जब गेट पर मशीन में अपना कार्ड स्वाइप किया, तब उसने जाना की अपनी ही धुन में वह सबसे आगे निकल आई थी।

"क्या सोचते होंगे सब। यही कह देती कि कुछ काम बाकी है सो उसे जल्दी भागना होगा।"

अपने डेस्क पर आकर उसने लॉगिन किया, पर उचटा हुआ मन बार-बार अरुल में अटकता जा रहा था। अरुल की मँगनी के बाद, उसका मन हर चीज़ से फिरने लगा था। उसने खुद की सुध खोई, चिड़ियों की भी।

बस, एक बात काटती रहती, "माँ का कहना है कि लड़की की उम्र तुमसे ज़्यादा है, पीऍच.डी है, पढ़ी-लिखी भी तुमसे ज़्यादा है। ऐसे संबंध ज़्यादा देर टिकते नहीं है।"

"तुम्हें भी ऐसा लगता है क्या?"

"नहीं, मुझे नहीं लगता। पर मेरे लगने न लगने से फ़र्क नहीं पड़ता है?"

रिश्ता ख़त्म हुआ, पर उनकी दोस्ती कायम रही। राखी को कहीं आस थी कि अरुल को दोस्ती के उस अंतराल में, शायद उसकी ज़रूरत का आभास होने लगे, लेकिन ऐसा कुछ हुआ नहीं।

अरुल को उससे फ़र्क नहीं पड़ता था।

दिन बीते, वह काउच पर पड़े-पड़े देखती की कैसे चिड़ियों का झुण्ड, चोंच मार मारकर सूखे छिलकों के ढेर में दाने ढूँढ़ता, फिर उड़ जाता। फिर उन्होंने आना छोड़ दिया।

अरुल के उसे नकारने में, वह अपनी सकरात्मकता को, अपनी उड़ानों को दोषी मानने लगी थी।

विवाह के बाद वह अरुल की पत्नी से मिलने गई थी। अरुल ने उसका परिचय कराया था- "यह राखी है। क्रिएटिव सेमीकंडक्टर्स में इंजीनियर है। दिमाग़ दौड़ता है इसका। किताबें और चिड़ियों की भक्तन है और मुझमें प्रेरणा भरने वाली अच्छी दोस्त। राखी, मीरा से मिलो, फंडू खाना बनाती है, बहुत सुन्दर गाती है और बहुत बड़ी जादूगरनी है।" कहते-कहते उसने मीरा के कन्धों पर अपनी बाहें फैला दी थी। राखी चाहती थी कि

वह बाहें फैलाना बंद करके उसे यह बताए कि वो उसमें कौन सी प्रेरणा भरती थी। पर वह चुप रही और मुँह फेरकर खिड़की के बाहर देखने लगी थी।

उस दिन घर लौटकर उसे लगा कि वह भी खाली छिलकों में अनाज के दाने ढूँढ़ रही थी अब तक। उसे याद आया बहुत पहले उसे अरुल ने एक लवबर्ड का जोड़ा भेंट किया था। एक नीली थी, एक पीली। वह उन्हें निल्लो और पिल्लो बुलाती थी। उनमें से एक को जब खुजली हो, तो वह दूसरी को अपनी चोंच से वहाँ खुजलाती, जिस जगह उसे खुजली हो रही हो और फिर दूसरी चिड़िया समझ कर पहली वाली को अपनी चोंच से खुजला देती थी।

परवाह वह नहीं होती जो हम अपने हिसाब से करे, वह होती है जो हम उसके हिसाब से करे, जिसकी हमें परवाह है। थी अरुल को भी कभी उसकी परवाह, अब नहीं है। परवाह न होती तो लवबर्ड का जोड़ा न लाकर देता उसे और हो सकता है कि शायद उसकी माँ ज़्यादा जानती हो उसे।

कुछ रिश्तों की उम्र कम होती है। उसे याद आया कि उस कम-उम्र रिश्ते ने उसे एक नए तरीके से सींचा था, पोषित भी किया था। ऐसे अहसास भरे थे उसमें, जिनसे वह अनभिज्ञ थी। कुछ चार महीने बाद एक चिड़िया मर गई, दूसरी उड़ गई थी। ये मोइत्रा के बर्डफीडर उपहार में देने के पहले की बात है।

आज फिर अरुल उसे एक संवेदनशील लल्लो बना रहा था। एक अनमनी दृढ़ता के साथ वह कॉफी के लिए उठ खड़ी हुई।

कैपुचिनो के एक घूँट ने उसमें संरचना भरी। लौटी और कॉफी पीते हुए उसने गूगल बार पर टाइप किया, "घर के पिछवाड़े चिड़िया कैसे आएँ?" और तभी उसे एक खटखटाहट का आभास हुआ। घूम कर देखा तो मार्क था। वह अपना सर खुजाता हुआ पूछ रहा था, "वह एनकोडर वाले बग के बारे में कुछ आगे पता चला?"

"मैं बस उसी पर काम करने जा रही थी।" राखी ने तुरंत क्रोम ब्राउज़र के चिड़िया वाले पेज को बंद करते हुए कहा। तभी उसे खिड़की पर बैठे गुटूरगूँ करते कबूतर नज़र आए।

"ठीक है।" मार्क जाने को उद्यत हुआ था, जब कबूतर और ज़ोर से गुड़गुड़ाये।

"जाओ यहाँ से तुम ! हुश हुश !" वह बड़बड़ाई।

"मुझसे कहा तुमने?" मार्क ने मुड़कर हँसते हुए पूछा।

"नहीं, नहीं वो कबूतर ! उस खिड़की पर?" पर वहाँ अब कोई कबूतर नहीं था।

"कौन से कबूतर?" मार्क ने हैरानी से पूछा था, "रॉकी, तुम्हें सच में कुछ दिनों की छुट्टी की ज़रूरत है।" कहकर वह हँसा था और राखी झेंप कर रह गई थी।

उस शाम वह घर लौटी तो फिर से जाकर फीडर देखा। उसे अपने भीतर एक अजीब से सुख और संतुष्टि का आभास हुआ। उसमें सिर्फ छिलके बचे थे और सारा अनाज ग़ायब था...यानी कि चिड़िया फिर लौट आईं थी!

अब वह कही नहीं जाएगी। छुट्टी के बाद वह मार्क से और सबसे, बड़े आराम से ग्रैंड कैनियन और वाइट वाटर राफ्टिंग की बातें कर सकती थी, इसके लिए कहीं जाने की ज़रूरत नहीं थी, गूगल काफी था।

गुनगुनाते हुए वह खाना पकाने में जुट गई। वह आश्वस्त थी कि आज की रात उसके पास इंटरनेट था, नेटफ़्लिक्स था, फ़ेसबुक था, यूट्यूब था! आज चिड़िया लौट आई थी, कल उसके पंख भी ज़रूर खुलेंगे।

000

फटा हुआ बस्ता

डॉ. रमाकांत शर्मा

"माँ तू मेरा फटा हुआ बस्ता सिल देगी।" – उसने बहुत उम्मीद से पूछा था।

"हाँ बेटा सिल दूँगी, पर अभी नहीं। देख रहा है ना खाना बना रही हूँ।"

"खाना बनाने के बाद सचमुच सिल देगी ना?"

"कह तो रही हूँ, बस थोड़ी देर रुक जा।"

उसने सोचा, पता नहीं माँ को कब फुरसत मिलेगी। एक के बाद एक काम में जो लगी रहती है। इसलिए उसने एक सीधा सा उपाय उसे सुझाया था– "मैं मोची से सिला लाऊँ ?"

"वहाँ कौन सा हमारा रिश्तेदार बैठा है, मुँह खोल कर पैसे माँगेगा।" – माँ ने चूल्हे की लकड़ी से राख झाड़ते हुए और उसे फिर से चूल्हे में डालते हुए कहा।

"आठ-दस रुपये से ज़्यादा नहीं लगेगा, माँ।"

"आठ-दस रुपये? कहाँ से लाऊँगी, इस ज़रा से काम के लिए। थोड़ा सा कोना ही तो फटा है। सँभाल कर स्कूल ले जाया कर। फिर मैं कह रही हूँ ना कि सिल दूँगी।"

"पर, कब सिलेगी? सब लड़के-लड़कियाँ हँसी उड़ाते हैं मेरी – 'देखो, इसका बस्ता फटा हुआ है।' तूने ध्यान से नहीं देखा है, छेद बड़ा होता जा रहा है।"

"अच्छा बाबा, आज ज़रूर कर दूँगी। चैन से खाना तो बनाने दे" - माँ ने चिमटे से पकड़ी रोटी को लकड़ियों की आँच पर पलटते हुए कहा।

वह रुँआसा सा उठ कर चला गया। पर, उसने सोच लिया था कि माँ जैसे ही खाना बना कर चुकेगी, वह उसे छोड़ेगा नहीं, आज बस्ता सिलवा कर ही दम लेगा। पता है, फटा हुआ बस्ता लेकर स्कूल जाने में उसे कितनी शर्म आती है।

माँ अभी रोटियाँ सेंक ही रही थी कि उसे बापू हमेशा की तरह कंधे पर थैला लटकाए दरवाज़े से घर में घुसते नज़र आए। वे सीमेंट मिल में बोरियाँ गिनने और उन्हें गोदाम में रखवाने का काम करते थे। सुबह पौने दस बजे मिल का भौंपू बजते ही वे घर से निकल जाते। माँ उनके जाने से पहले जल्दी-जल्दी खाना तैयार करने में लग जाती। वे घर से खाना खा कर ही निकलते। ज़रा भी देर हो जाती तो माँ पर ग़ुस्सा हो जाते। फिर शाम को घर आते ही उन्हें खाना तैयार मिलना चाहिए था। सुबह का खाना खा कर गए वे शाम को घर आने पर ही पेट में कुछ डाल पाते थे। दोपहर में

डॉ. रमाकांत शर्मा
402-श्रीराम निवास, टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी, पेस्तम सागर रोड नं.3, चेम्बूर, मुंबई – 400089
मोबाइल- 9833443274
ईमेल- rks.mun@gmail.com

कुछ खा लें, इसके लिए उनके पास पैसे होते ही कहाँ थे। माँ उनके आने से पहले खाना तैयार करने में लग जाती। वे कपड़े बदल कर और हाथ मुँह धोकर सीधे चौके में जाते और उनके पहुँचते ही माँ उनके लिए खाना परोसने लगती। बापू को इसमें ज़रा भी देरी बर्दाश्त नहीं थी। कभी किसी कारण से थोड़ी भी देर हो जाती तो वे माँ पर बरस पड़ते और माँ अपराधिनी की तरह सिर झुकाए और भी तेज़ी से अपने हाथ चलाने लगती।

उसे बहुत बुरा लगता। माँ ज़्यादातर चूल्हे-चौके में ही लगी रहती। चूल्हा फूँकते-फूँकते उसकी आँखों से पानी बहने लगता; जिसे वो अपने पल्ले से बार-बार पोंछती रहती। उसे आँखों से कम भी दिखने लगा था। उधर, चूल्हे से उठता धुँआ साँस के साथ-साथ उसके भीतर उतरता रहता। उसे बीच-बीच में खाँसी का ज़बरदस्त दौरा उठता तो उसे रोकने के लिए वह मुँह में पल्लू ठूँस लेती। माँ की ऐसी हालत देखकर वह सोचता कि जब कभी वह, बापू या दादी में से कोई बीमार पड़ जाता है तो उसे तुरंत डाक्टर को दिखाया जाता है। माँ को तो कब से इतनी ज़बरदस्त खाँसी है, फिर भी उसे कोई डॉक्टर को नहीं दिखाता। क्या माँ को डॉक्टर की ज़रूरत नहीं है?

बापू से पता नहीं वह इतना क्यों डरता था। अकसर उनका मूड बिगड़ा रहता और बात-बेबात वे माँ को डाँटते रहते। ऐसे समय उसका डर और भी बढ़ जाता और वह उनसे दूर ही रहने की कोशिश करता। बापू से कोई प्रश्न कर ले इतनी हिम्मत तो उसमें थी ही नहीं। माँ की खाँसी ठीक कराने के लिए वे उसे डॉक्टर को क्यों नहीं दिखाते, यह ज़रूरी प्रश्न पूछने की भी हिम्मत वह कभी नहीं जुटा पाया। ऐसा नहीं था कि बापू उसे प्यार नहीं करते थे, पर माँ के साथ उनका जो व्यवहार था, उसकी वजह से वह उनसे अनजाने में दूर होता जा रहा था।

उधर दादी सारे दिन घर में यूँ ही पड़ी-पड़ी माँ पर हुकुम चलाती रहती। उसे पानी भी पीना होता तो माँ को आवाज़ लगाती। माँ को दादी की हर आवाज़ पर बिना देर किए भागना पड़ता, नहीं तो "तेरी माँ ने कुछ सिखाया भी है" या "बड़ों की इज़्ज़त कर लोगे तो तुम्हारी नाक नीची नहीं हो जाएगी" या फिर "काम की ना काज की नौ मन अनाज की" जैसे जुमले सुनने को हमेशा तैयार रहना पड़ता।

ऐसा नहीं है कि माँ की सहायता के बिना दादी कोई काम करती ही नहीं थी। वह बैठी-बैठी सरौते से सुपारी काटती रहती और लगभग हर डेढ़-दो घंटे में अपने लिए पान बनाती जिसे अपने मुँह में रखने का काम भी खुद ही करती। वह एक काम और बड़ी शिद्दत से करती और वह था माँ को कभी सुस्ताने का मौका न देना। जब भी माँ घर की झाड़ू-बुहारी, कपड़े धोने, खाना बनाने और बर्तन माँजने जैसे कामों से फुरसत पाकर अपनी पीठ सीधी करने के लिए चटाई पर लेटने के लिए जाती, तभी अकसर दादी को उसके लिए कोई ना कोई काम याद आ जाता। वह मन ही मन दाँत पीस कर रह जाता। माँ के लिए कवच बन कर खड़े होने की उसकी इच्छा दादी और बापू की डाँट का सामना करने की कल्पना से भीतर ही भीतर दम तोड़ देती। वह सोचता, चलो वह तो छोटा बच्चा ठहरा, पर माँ तो बड़ी है, वह क्यों दादी और बापू की हर सही-ग़लत बात चुपचाप मान लेती है।

बापू अब खाना खा रहे होंगे। उनके खाना खा चुकने के बाद माँ दादी को और उसे खाना देगी। सबसे बाद में बचा-खुचा खुद खाएगी, फिर बर्तन माँजने और चौका साफ करने के काम में लग जाएगी। बस सिल चुका उसका फटा बस्ता। वह मन ही मन खीज कर रह गया। लेकिन, आज उसने ठान ली थी कि वह अपना बस्ता सिलवा कर ही रहेगा। वह कहीं खेलने भी नहीं गया। सब कामों से निपटने के बाद जब माँ रसोई से निकली तब रात की कालिमा पसर आई थी।

थकी-हारी माँ ने उसे देखते ही कहा – "ला, तेरा बस्ता, कहाँ है, सिल देती हूँ।" वह वहीं दालान में बैठ गई तो वह उत्साह में भर कर अपनी छोटी सी कोठरी की तरफ भागा और अपना फटा हुआ बस्ता लेकर एक मिनट में ही हाज़िर हो गया।

उसने बस्ता माँ को थमाया तो वह फटे हुए हिस्से को देखते हुए बोली – "ठहर, मैं सुई धागा तो ले आऊँ।" वह ज़मीन पर अपने दोनों हाथ टिका कर अभी पूरी तरह उठ भी नहीं पाई थी कि दादी की आवाज़ आई – "अरे, कहाँ मर गई। मेरा सिर दर्द से फटा जा रहा है, यह नहीं कि थोड़ी देर सिर की मालिश ही कर देती।"

माँ सुई-धागा लाने की जगह सरसों का तेल लेने चली गई। जाते-जाते उससे कहती गई – "बस, दादी के सिर की मालिश करके अभी आती हूँ, फिर सिल दूँगी तेरा बस्ता।"

वह हाथ में बस्ता लिये माँ को जाते हुए बेबस सा देखता रहा।

माँ के जाते ही बापू अपने कमरे से बाहर निकल आए। उसे दालान में बैठे देखा तो पूछा – "माँ कहाँ है तेरी? अभी तक काम ख़त्म नहीं हुआ उसका?"

"दादी का सिर दर्द से फटा जा रहा है, उसके सिर की मालिश करने गई है।"

बापू ने बुरा सा मुँह बनाया और फिर कमरे में चले गए। थोड़ी देर बाद वे फिर बाहर आए और उससे कहा – "तू अभी तक यहीं बैठा है? अपनी कोठरी में जाकर पढ़ता-वढ़ता क्यों नहीं?"

वह बिना कुछ बोले चुपचाप अपनी उस कोठरी की तरफ चल दिया, जहाँ वह पढ़ता भी था और ज़मीन पर बिछे बिस्तरे पर सोता भी था। आज उसे नींद नहीं आ रही थी। वह माँ का इंतज़ार कर रहा था। कब वह दादी के पास से आएगी और कब उसका बस्ता सिलेगी। वह बीच-बीच में उठ कर बाहर झाँक लेता। उसने देखा बापू दो-तीन बार उधर का चक्कर काट आए थे जहाँ माँ दादी के सिर में तेल लगा रही थी। फिर कमरे में जाकर उन्होंने ज़ोर से दरवाज़ा बंद कर लिया। दरवाज़ा बंद करने की आवाज़ से ही उसे पता चल गया कि बापू का मूड ठीक नहीं है।

थोड़ी देर बाद उसने माँ को आते देखा। वह अपना फटा हुआ बस्ता उठा कर उसके पास जाने के लिए उठा ही था कि उसने देखा माँ अपने कमरे का दरवाज़ा धीरे-धीरे खटखटा रही थी। कई बार दरवाज़ा खटखटाने के बाद बापू ने दरवाज़ा खोला और माँ के

अंदर जाते ही उसी तेज़ आवाज़ के साथ दरवाज़ा बंद हो गया।

परेशान सा वह दरवाज़े के पास पहुँच कर रुक गया। अंदर से आती आवाज़ें उसके कानों में पड़ने लगीं, बापू कह रहे थे – "कब से इंतज़ार कर रहा हूँ तेरा। मेरे लिए समय नहीं है तेरे पास?"

"कैसी बातें कर रहे हो जी, रसोई का काम निपटा कर आ ही रही थी कि माँजी ने आवाज़ लगा दी। उनके सिर में तेल लगाने चली गई थी।"

"तेरा हमेशा से यही रोना है। मैं सारे दिन घर से बाहर रहता हूँ। तू तो बस माँजी और अपने बेटे की ही होकर रह गई है। तेरी माँजी तो सारे दिन घर में ही पड़ी रहती है, उसके काम तब क्यों नहीं निपटा लेती? थका-हारा घर आता हूँ। तुझसे तो यह भी नहीं होता कि थोड़ी देर मेरे पास बैठ कर दु:ख-सुख की बातें कर ले।"

"अब आ तो गई हूँ जी, चलो अपना ग़ुस्सा थूक दो।"

"क्यों आई अब भी, किसने कहा था?"

"माँजी को बीच में छोड़कर कैसे आती मैं?"

"क्यों वैसे तो बहुत बहाने रहते हैं तेरे पास, माँ को टाल कर मेरे पास आने के लिए ही कोई बहाना नहीं हैं। मैं सब समझता हूँ, तुझे मेरी परवाह हो तब ना?"

"जाने भी दो न जी।"

"क्यों जाने दूँ, हमेशा ही मेरा मूड ख़राब कर देती है। तुझे जहाँ भी जाना हो जा चली जा।"

"मैं तुम्हारे हाथ-पैर जोड़ती हूँ जी। मुझे माफ कर दो।"

बाहर खड़ा वह समझ नहीं पा रहा था कि जब माँ ने कोई ग़लती की ही नहीं है तो वह माफी क्यों माँग रही है? और बापू तो चुप ही नहीं हो रहे हैं। ऐसे तो पता नहीं कब तक चलेगा इनका झगड़ा? इनके झगड़े में आज तो सिल लिया मेरा बस्ता। वह रुँआसा हो आया और अपने बिस्तर पर औंधे मुँह जाकर पड़ गया। वह जितना ही सोने की कोशिश करता, नींद उससे उतना ही दूर भागती रही।

फिर पता नहीं कब उसे झपकी आ गई। सपने में उसने देखा, वह फटा हुआ बस्ता लेकर स्कूल गया है। फटी हुई जगह से किताब-कॉपियाँ और पेंसिलें झाँक रही हैं। घबराकर उसने फटी हुई जगह को मुट्ठी में कस कर पकड़ लिया है। पर, उसकी तमाम कोशिशों के बावजूद वह छेद बड़ा होता जा रहा है और बस्ते में रखी चीज़ें निकल-निकल कर फर्श पर गिरने लगी हैं। स्कूल के सारे लड़के-लड़कियाँ उसके चारों तरफ जमा हो गए हैं और ज़ोर -ज़ोर से हँस रहे हैं। वह शर्म के मारे ज़मीन में गड़ा जा रहा है और उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे हैं। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। कितना अजीब सपना था। उसने खिड़की से बाहर झाँक कर देखा, रात शायद आधी से ज़्यादा बीत चुकी थी।

वह उस सपने के बारे में सोच-सोच कर परेशान हो उठा। अगर सचमुच कुछ ऐसा हुआ तो वह तो शर्म से मर ही जाएगा। बहुत सोचने के बाद उसने तय किया कि वह खुद ही बस्ता सिलने की कोशिश करेगा। इस निश्चय के साथ ही वह उठा और बरामदे की बत्ती जला कर उसके कोने में बनी आलमारी में सुई-धागा ढूँढ़ने लगा। कुछ देर की कोशिश के बाद एक डिब्बे में उसे सुई-धागा रखा मिल गया। धागे की गिट्टी में सुई खुँसी हुई थी। वह उसे निकालने लगा तो सुई की नोक ज़ोर से उसकी उँगली में चुभ गई। न चाहते हुए भी उसके मुँह से चीख निकल गई। उसने तुरंत मुँह पर हाथ रख लिया और दर्द सहने की कोशिश करने लगा।

तभी कमरे का दरवाज़ा खुला और माँ घबराई सी बाहर निकली – "क्या हुआ, इस समय यहाँ क्या कर रहा है? चीखा क्यों था? अँधेरे में कहीं गिर-गिरा तो नहीं गया?"

वह उँगली में छलक आए खून को छुपाने लगा तो माँ की नज़र ने उसे पकड़ लिया। पास में पड़े बस्ते और सुई-धागे को देख कर उसे माज़रा समझते देर नहीं लगी – "ओह, तो तू खुद बस्ता सिलने चला था।" माँ की आवाज़ में दर्द था। वह तुरंत गीली पट्टी लेकर आई और उसकी उँगली पर बाँधते हुए बोली – "ला बेटा, मैं अभी सिल देती हूँ।"

माँ ने अपनी धुँधली हो आई आँखों से बड़ी मुश्किल से सुई में धागा डाला और उसके बस्ते को सिलने लगी। तभी अचानक उसे खाँसी का वह नामुराद दौरा उठ आया। रात के सन्नाटे में उसकी खाँसी की आवाज़ गूँजने लगी तो बापू कमरे से बाहर निकल आए – "ये इतनी रात में तुम दोनों यहाँ बैठे क्या कर रहे हो? एक तो बरामदे की बत्ती जला रखी है, और उस पर फिर यह खाँसी। सुबह काम पर जाना है, जल्दी से सब बंद करो और सोने दो।" माँ कभी बापू की बात टालने की हिम्मत नहीं कर पाती थी। पर, खाँसी रुकते ही वह फिर से बस्ता सिलने लगी।

बापू चिल्लाकर बोले – "सुना नहीं, मैंने क्या कहा। जो कुछ करना है, वह सुबह करना।"

माँ ने उनकी बात को सुना-अनसुना करके बस्ता सिलना जारी रखा तो बापू उनके हाथ से बस्ता छीनने लगे। माँ ने उनका हाथ रोकते हुए दृढ़ शब्दों में कहा – "तुम अंदर जाओ, अपनी नींद ख़राब मत करो। मैं बस दस मिनट में आती हूँ।"

बापू के चेहरे पर अविश्वास उग आया। माँ के चेहरे पर उभरे भाव देख कर उन्होंने बस्ता छीनने की कोशिश बंद कर दी और यह कहते हुए कमरे में चले गए – "पता नहीं, इस औरत को क्या हुआ है, आधी रात को बैठी बस्ता सिल रही है। ना खुद सो रही है और ना ही सोने दे रही है। जल्दी ख़त्म कर यह सिलना-सिलाना, समझी।"

माँ ने फटा बस्ता सिलना जारी रखा। वह उसे ध्यान से देखे जा रहा था। उसने पहली बार माँ का यह रूप देखा था।

तभी उसकी सोच को झटका देते हुए माँ ने उसकी ओर बस्ता बढ़ाते हुए कहा – "ले, दोहरी सिलाई कर दी है मैंने, अब यह नहीं फटेगा।"

उसके हाथ में सिला हुआ बस्ता था और सिर पर माँ का प्यार भरा हाथ। वह यह सोच-सोच कर पुलकित हो रहा था कि अब फटे हुए बस्ते को लेकर स्कूल में उसे कोई नहीं चिढ़ा पाएगा।

000

क़ब्ज़ा कर लिया गया मकान

लातिन अमेरिकी कहानी

जूलियो कोर्टाज़ार

अनुवाद : सुशांत सुप्रिय

सुशांत सुप्रिय,
A-5001,गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड,इंदिरापुरम्, ग़ाज़ियाबाद
201014 (उ. प्र.)
मोबाइल : 8512070086
ईमेल : sushant1968@gmail.com

हमें यह मकान पसंद था क्योंकि पुराना और बड़ा होने के अलावा इसमें हमारे परदादा, दादा, माता-पिता और हमारे समूचे बचपन की स्मृतियाँ सुरक्षित थीं। वह भी ऐसे समय में जब पुराने मकानों को उनके बनने की लागत वसूलने के लिए अक्सर नीलाम कर दिया जाता था।

इरीन और मैं इस मकान में रहने के आदी हो गए थे। यह पागलपन था, क्योंकि बिना एक-दूसरे को तंग किए कम-से-कम आठ लोग मज़े से इस मकान में रह सकते थे। हम दोनों सुबह सात बजे उठ कर मकान की सफ़ाई में जुट जाते थे। ग्यारह बजे इरीन को बचे हुए कमरों की सफ़ाई करता हुआ छोड़ कर मैं रसोई में चला जाता। ठीक बारह बजे हम दोपहर का भोजन करते। इसके बाद कुछ जूठी प्लेटों को धोने के अलावा और कोई काम नहीं बचता। दोपहर का भोजन करते समय हमें इस बड़े, खोखले और शांत मकान से संलाप करना अच्छा लगता था। हमारे लिए यही पर्याप्त था कि हम इस मकान को साफ़-सुथरा रखते थे। कई बार हम यह सोचते कि शायद इस मकान के रख-रखाव की ज़िम्मेदारी की वजह से ही हम दोनों भाई-बहन ने किसी से शादी नहीं की। इरीन ने अकारण ही दो प्रेमियों के विवाह-प्रस्तावों को ठुकरा दिया। मेरी प्रेमिका मारिया एस्थर मुझ पर मरती थी लेकिन हम दोनों की सगाई नहीं हो सकी। अब हम दोनों की उम्र चालीस वर्ष से अधिक हो गई थी और हम दोनों के मन में यह धारणा बैठ गई थी कि हमारे विवाह के बिना इस मकान में हमारे परदादा के वंश का अंत अवश्यंभावी था। किसी दिन यहीं हमारा निधन हो जाएगा। हमारे दूर के अज्ञात-से चचेरे, ममेरे भाई-बहन हमारी मृत्यु के बाद इस मकान के स्वामी बन जाएँगे। संभवत: वे इस मकान को तोड़ देंगे, इसकी ईंटें बेच देंगे और इस भूखंड की बदौलत अमीर हो जाएँगे। या कौन जाने, ज़्यादा देर हो जाने से पहले हम स्वयं ही यह काम कर लें।

इरीन किसी को तंग नहीं करती थी। जब सुबह घर के काम पूरे हो जाते, वह दिन का बाक़ी बचा समय शयन-कक्ष के सोफ़े पर स्वेटर बुनते हुए बिताती। मैं आपको यह नहीं बता सकता कि वह इतनी ज़्यादा देर तक स्वेटर क्यों बुनती रहती थी। मुझे लगता है, जब महिलाओं के पास करने के लिए और कुछ नहीं होता तो वे स्वेटर बुनने का बहाना बनाती हैं। लेकिन इरीन ऐसी नहीं थी। वह ऊन से केवल ज़रूरत की चीज़ें ही बनाती थी — सर्दियों के लिए स्वेटर, मेरे लिए जुराबें, सुबह पहनने वाले ऊनी लबादे, और अपने लिए रात में बिस्तर पर जाते समय पहना जाने वाला कोई ऊनी जैकेट। यदि उसे अपनी बनाई कोई चीज़ पसंद नहीं आती, तो वह उसे वापस उधेड़ देती थी। मुझे उसकी बुनाई की टोकरी में पड़ा उलझे ऊन का ढेर अच्छा लगता था। वह ऊन का ढेर कुछ घंटे तक अपना आकार बनाए रखने की हारी हुई लड़ाई लड़ रहा होता था। शनिवार वाले दिन मैं शहर के मुख्य बाज़ार के इलाक़े में ऊन ख़रीदने के लिए चला जाता। ऊन के मामले में इरीन को मेरी अच्छी पसंद पर भरोसा था। मैं जो रंग पसंद करता था, वे रंग उसे भी अच्छे लगते थे। इसलिए मेरे द्वारा ख़रीदे गए ऊन को कभी लौटाने की नौबत नहीं आई। इन मौक़ों का लाभ उठा कर मैं किताबें बेचने वाली दुकानों के चक्कर भी लगा लिया करता, जहाँ बिना किसी ख़ास वजह के मैं पूछ लेता कि क्या उनके पास फ़्रांसीसी साहित्य की कोई नई किताब है। १९३९ के बाद अर्जेंटीना में ढंग की कोई किताब नहीं आई थी।

लेकिन मैं इसी मकान के बारे में बात करना चाहता हूँ। मकान और इरीन के बारे में। मैं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं हूँ। मैं सोचता हूँ कि यदि इरीन बुनाई नहीं किया करती, तो वह क्या करती? किसी किताब को हम दोबारा पढ़ सकते हैं, लेकिन एक बार जब स्वेटर पूरा बन जाता है तो आप उसी को दोबारा नहीं बुन सकते। ऐसा करना तो अपयश होगा। एक दिन मैंने पाया कि जाली वाली अलमारी के निचले हिस्से में कीड़े मारने वाली दवाई के बीच सफ़ेद, हरे और बैंगनी रंग की कई शालें पड़ी हुई थीं। वहाँ से कपूर की गंध भी आ रही थी। यह सब किसी दुकान की

तरह लग रहा था। मुझमें उससे यह पूछने की हिम्मत नहीं थी कि वह इन सबका क्या करेगी। हमें जीवन यापन करने के लिए नौकरी करने की ज़रूरत नहीं थी। हर महीने खेती-बाड़ी से पर्याप्त रुपया-पैसा आ जाता था। रुपयों की गड्डियाँ तिज़ोरी में जमा होती रहती थीं। लेकिन इरीन की रुचि केवल बुनने में थी और वह इस काम में शानदार दक्षता दिखाती थी। दूसरी ओर मैं उसे बुनता हुआ देखकर अपना समय बिताता था। वह पूरी कुशलता से बुनने वाली सलाइयों का प्रयोग करती। टोकरी में पड़ा ऊन का गोला बुनने के क्रम में उछलता रहता। मुझे यह सब बहुत प्यारा लगता।

मैं इस मकान की बनावट के बारे में कैसे बात नहीं करूँ ? एक कमरा भोजन-कक्ष था। एक और कमरा बैठक था, जिसमें चित्रपट लगे थे। फिर एक पुस्तकालय था। उसके बाद तीन बड़े शयन-कक्ष थे, जिनमें सबसे ज़्यादा ताक और आले थे। ये कमरे रोड्रिगेज़ पेना की ओर खुलते थे। आगे के मकान से इस हिस्से को केवल एक गलियारा अलग करता था, जिसका विशालकाय द्वार बलूत की लकड़ी से बना था। वहीं एक स्नान-कक्ष, रसोई, हमारे शयन-कक्ष और एक और बड़ा कमरा मौजूद थे। आप इस मकान में एक ड्योढ़ी से होकर दाखिल होते थे, जहाँ तामचीनी के खपड़े लगे हुए थे। यहाँ पिटवाँ-लोहे का दरवाज़ा बैठक में खुलता था। आप ड्योढ़ी से होते हुए आते थे और दरवाज़ा खोलकर बैठक में घुसते थे। दोनों ओर हमारे शयन-कक्ष के द्वार स्थित थे। इसके ठीक उल्टी ओर स्थित एक गलियारा मकान के पिछले हिस्से की ओर ले जाता था। इस गलियारे में से होकर आगे बढ़ने पर आपको दम लगा कर बलूत की लकड़ी वाला विशाल दरवाज़ा खोलना पड़ता था। तब जाकर मकान का दूसरा हिस्सा नज़र आता था। दरवाज़े से ठीक पहले आप बाईं ओर मुड़कर एक सँकरे रास्ते से होकर रसोई और स्नान-कक्ष तक जा सकते थे। यह दरवाज़ा जब खुला होता, तब आप इस मकान के बड़े आकार को देख सकते थे। जब यह दरवाज़ा बंद होता तो आपको यह मकान थोड़ा छोटा लग सकता था, जैसे आज-कल के फ़्लैट बने होते हैं जिनमें चलने-फिरने की जगह कम ही होती है।

इरीन और मैं हमेशा से मकान के इसी हिस्से में रहते थे और बलूत की लकड़ी वाले विशाल द्वार के दूसरी ओर बहुत कम जाते थे। हमारा उधर जाना केवल वहाँ मौजूद कमरों की सफ़ाई करने के उद्देश्य से ही होता था। मेज़-कुर्सियों पर अविश्वसनीय रूप से बहुत ज़्यादा धूल-मिट्टी इकट्ठी हो जाती थी। हालाँकि ब्यूनेस आयरेस एक साफ़-सुथरा शहर है, पर इसका कारण केवल इस शहर की जनसंख्या है। यहाँ हवा में बेइंतहा धूल-मिट्टी है। ज़रा-सी हवा चलने की देर होती और यह धूल-मिट्टी चारों ओर हर चीज़ पर नज़र आने लगती। पंखों वाले झाड़न की मदद से इस धूल-मिट्टी को चीज़ों पर से हटाना बड़ी मेहनत का काम होता। धूल के कण हवा में लटके रहते और एक मिनट के बाद वापस मेज़-कुर्सियों और पियानो पर जम जाते।

मेरे ज़हन में उस घटना की याद हमेशा स्पष्ट रहेगी; क्योंकि वह घटना बिना किसी उपद्रव के सामान्य रूप से घटी। इरीन अपने शयन-कक्ष में स्वेटर बुन रही थी। उस समय रात के आठ बज रहे थे। अचानक मुझे गरम पानी पीने की इच्छा हुई। मैं गलियारे में से चलता हुआ बलूत की लकड़ी वाले दरवाज़े की ओर गया। वह दरवाज़ा आधा खुला हुआ था। फिर मैं बड़े कमरे में से होता हुआ रसोई की ओर मुड़ गया। तभी मुझे पुस्तकालय या भोजन-कक्ष में से कोई आवाज़ सुनाई दी। हालाँकि वह आवाज़ मंद और अस्पष्ट थी, जैसे क़ालीन पर कोई कुर्सी गिर गई हो या वह बातचीत की दबी हुई गूँज हो। उसी समय या पल भर बाद मुझे गलियारे के अंत में भी वैसी ही आवाज़ सुनाई दी — वह गलियारा जो दोनों कमरों की ओर जा रहा था। इससे पहले कि बहुत देर हो जाती, मैंने झपट कर वह दरवाज़ा बंद कर दिया। मैं अपनी देह का पूरा भार उस दरवाज़े पर टिका कर वहाँ खड़ा रहा। सौभाग्यवश चाबी लगाने वाला हिस्सा दरवाज़े के इसी ओर था। पूरी तरह सुरक्षित महसूस करने के लिए मैंने उस दरवाज़े की बड़ी-सी चटखनी भी लगा दी। फिर मैं रसोई में गया। वहाँ चूल्हे पर पानी गरम किया और उसे ले कर अपने कमरे में लौट आया। मैंने इरीन को बताया, "मुझे गलियारे के अंत में मौजूद हिस्से को बंद कर देना पड़ा। उन्होंने मकान के पिछले हिस्से पर क़ब्ज़ा कर लिया है।"

इरीन के हाथ से छूट कर बुनाई करने वाली सलाइयाँ नीचे गिर गईं। उसने मेरी ओर थकी हुई गंभीर आँखों से देखा।

"क्या तुम्हें यक़ीन है ?" उसने पूछा। मैंने हाँ में सिर हिलाया।

"तब तो," अपनी बुनाई की सलाइयाँ फिर से उठाते हुए वह बोली, "हमें इसी ओर रहना होगा।"

मैं ध्यान से गरम पानी पीता रहा लेकिन इरीन को बुनाई दोबारा शुरू करने में समय लगा। वह एक धूसर स्वेटर बुन रही थी। मुझे वह स्वेटर पसंद था।

पहले कुछ दिन हम पीड़ित रहे क्योंकि हम दोनों के काम की कई चीज़ें मकान के पिछले हिस्से में छूट गई थीं। उदाहरण के लिए फ़्रांसीसी साहित्य से संबंधित मेरी किताबें पुस्तकालय में ही रह गई थीं। इरीन की चप्पलों की एक जोड़ी जिसका इस्तेमाल वह सर्दियों में करती थी, और उसकी लेखन-सामग्री के कई पन्ने भी उधर ही रह गए थे। मैं उधर छूट गई अपनी चिलम की कमी महसूस करता था और इरीन को भी हेस्पेरेडिन की एक बहुत पुरानी बोतल के उधर छूट जाने का दुख था। पहले कुछ दिनों तक लगातार ऐसा होता रहा कि हम कोई पेटी या दराज़ बंद करते और एक-दूसरे की ओर देख कर कहते, "वह यहाँ भी नहीं है।"

हमें मकान के पिछले हिस्से में छूट गई अपनी एक और चीज़ के बारे में इसी तरह पता चलता।

लेकिन इसके फ़ायदे भी थे। अब कमरों की सफ़ाई करने का काम आसान हो गया था। जब कभी हम देर से जगते — उदाहरण के लिए साढ़े नौ बजे, तब भी ग्यारह बजते-बजते हमारा सारा काम ख़त्म हो जाता और हम बाँहें मोड़कर चुपचाप बैठ जाते। अब इरीन ने रसोई में आ कर दोपहर का भोजन बनाने में मेरी

मदद करने की आदत डाल ली थी। सोच-विचार के बाद हम इस निर्णय पर पहुँचे, मैं दोपहर का भोजन बनाता था जबकि इरीन भी पहले ही रात का खाना बना लेती थी। काम के इस बँटवारे से हम ख़ुश थे; क्योंकि शाम में शयन-कक्ष से उठ कर रात का खाना बनाना किसी बोझ से कम नहीं था। अब हम इरीन की मेज़ पर पहले से बना रात का खाना खाते थे।

इरीन को भी बुनने के लिए पहले से अधिक समय मिलता था, जिसकी वजह से वह संतुष्ट थी। अपनी किताबों के अभाव में मैं थोड़ा खोया हुआ महसूस करता था, लेकिन मैं अपनी बहन को तंग न करूँ, इसलिए मैंने पिताजी द्वारा एकत्र की गई डाक-टिकटों के संग्रह को नए सिरे से लगाना शुरू कर दिया। इससे थोड़ा समय और बीत जाता था। हम दोनों अपने-अपने काम में अपना मन लगाए रखते। इरीन का शयन-कक्ष अधिक आरामदेह था, इसलिए अक्सर हम दोनों वहीं अपना समय बिताते।

हर थोड़े समय के बाद इरीन कहती, "इस नमूने को देखो। क्या यह तिपतिया घास जैसा नहीं लगता ?"

कुछ समय बाद मैं इरीन के सामने किसी डाक-टिकट को सरका रहा होता ताकि वह उसकी उत्कृष्टता को सराह सके। हम दोनों अच्छी तरह रह रहे थे और कुछ समय के बाद हमने मकान के एक हिस्से पर हो गए क़ब्ज़े के बारे में सोचना छोड़ दिया। आप सोचे बिना भी जीवित रह सकते हैं।

(जब कभी इरीन नींद में बातें करती, मैं उसी समय जग जाता और फिर मुझे नींद नहीं आती। मैं ऐसी किसी आवाज़ का आदी नहीं हो सकता था जो किसी प्रतिमा या किसी तोते के मुँह से आती हुई प्रतीत हो — एक ऐसी आवाज़ जो किसी सपने में से आती हुई लगे, किसी के गले में से नहीं। इरीन बताती थी कि अपनी नींद में मैं सांट से अनाज पीटने जैसी अजीब आवाज़ निकालता था और ओढ़ा हुआ कम्बल अपने ऊपर से उतार कर फेंक देता था। हम दोनों के शयन-कक्षों के बीच में बैठक स्थित थी लेकिन रात में आप उस मकान में सारी आवाज़ें सुन सकते थे। जब हम दोनों में से किसी को भी नींद नहीं आ रही होती तो हम दोनों अपने-अपने कमरों में एक-दूसरे के साँस लेने, खाँसने या बत्ती जलाने की आवाज़ें सुन सकते थे।

हमारी रात्रिकालीन बड़बड़ाहटों के अलावा पूरे मकान में निस्तब्धता रहती थी। दिन के समय में मकान में आम तौर पर होने वाली सामान्य आवाज़ें गूँजती थीं — स्वेटर बुनने वाली सलाइयों की आवाज़, डाक-टिकटों के ऐल्बम के पृष्ठों के पलटने की सरसराहट आदि। बलूत की लकड़ी का दरवाज़ा विशालकाय था। यह बात मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ। रसोई या गुसलखाने में हम ज़ोर-ज़ोर से बातें कर लेते थे या इरीन लोरियाँ गा लेती थी। ये हिस्से मकान के क़ब्ज़ा कर लिए गए भाग के क़रीब थे। रसोई में वैसे भी आम तौर पर बहुत सारी आवाज़ों का शोर सुना जा सकता है, जैसे थालियों और गिलासों की उठा-पटक की आवाज़ें। यहाँ अन्य आवाज़ों के लिए फ़ुरसत नहीं होती। रसोई में शायद ही कभी चुप्पी रहती हो, लेकिन जब हम बैठक में या अपने-अपने कमरों में जाते, तब मकान में ख़ामोशी छा जाती। हल्की रोशनी में हम मकान में दबे पाँव चलते ताकि हम शांति को भंग करके एक-दूसरे को तंग न करें। (मुझे लगता है, इसी वजह से मैं तभी जग जाता था जब इरीन नींद में बोलना शुरू करती।)

नतीजे के अलावा यह मामला लगभग एक ही दृश्य के दोहराव जैसा है। उस रात मुझे प्यास लगी थी और सोने जाने से पहले मैंने इरीन से कहा कि मैं रसोई में पानी लेने के लिए जा रहा हूँ। तभी शयन-कक्ष के दरवाज़े से मैंने (इरीन स्वेटर बुन रही थी) रसोई में से आती हुई आवाज़ सुनी। यदि वह आवाज़ रसोई में से नहीं आई थी तो गुसलखाने में से आई थी। उस कोण पर गलियारा उस आवाज़ को मंद बना रहा था। वह आवाज़ सुनकर मैं जिस रूखेपन से रुक गया था, उस पर इरीन ने भी ग़ौर किया। वह बिना कुछ बोले चलते हुए मेरी बग़ल में आ कर खड़ी हो गई। हम दोनों उन आवाज़ों को सुनते हुए वहीं खड़े रहे। अब यह स्पष्ट हो गया था कि ये आवाज़ें बलूत के दरवाज़े के हमारी ओर वाले हिस्से से आ रही थीं। यदि ये आवाज़ें रसोई में से नहीं आ रही थीं तो गुसलखाने में से आ रही थीं या फिर हमारे कमरे के साथ वाले बड़े कमरे में से आ रही थीं।

हम एक-दूसरे की ओर देखने के लिए नहीं रुके। मैंने इरीन की बाँह पकड़ी और उसे अपने साथ ज़बर्दस्ती पिटवाँ लोहे के दरवाज़े की ओर दौड़ाया। हमने पीछे मुड़कर नहीं देखा। अब हम स्पष्ट रूप से अपने पीछे उन आवाज़ों को सुन सकते थे। हालाँकि वे आवाज़ें दबी हुई थीं, पर अब वे पहले से तेज़ थीं। मैंने जाली वाला दरवाज़ा बंद किया और हम ड्योढ़ी में रुक गए। यहाँ कोई आवाज़ नहीं आ रही थी।

"उन्होंने मकान के हमारे हिस्से पर भी कब्ज़ा कर लिया है, " इरीन ने कहा। उसका स्वेटर बुनने वाला ऊन का गोला उसके हाथ से छूटकर रास्ते में कहीं गिर गया था और ऊन की डोरी दरवाज़े तक जा कर उसके पीछे ग़ायब हो गई थी। जब इरीन ने देखा कि ऊन का गोला दरवाज़े के दूसरी ओर रह गया है तो उसने अपना अधबुना स्वेटर भी वहीं छोड़ दिया।

"क्या तुम्हें कुछ भी साथ लेकर आने का समय मिला ?" मैंने बिना किसी उम्मीद के पूछा। "नहीं। कुछ भी नहीं।"

हमारे पास केवल अपने पहने हुए कपड़े थे। मुझे याद आया कि अपने शयन-कक्ष की अलमारी में मैंने पंद्रह हज़ार पेसो रखे हुए थे। लेकिन उसे लाने के लिए अब बहुत देर हो चुकी थी।

मेरी कलाई-घड़ी अब भी मेरे पास थी। मैंने देखा कि उसमें रात के ग्यारह बज रहे थे। मैंने इरीन की कमर में हाथ डाला (मुझे लगा, वह रो रही थी) और इस तरह हम बाहर सड़क पर आ गए। मकान छोड़ते समय मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने मुख्य द्वार को बंद करके उस पर ताला लगा दिया और चाबी उछाल कर नाले में फेंक दी। क़ब्ज़ा कर लिए गए उस मकान में रात के इस पहर चोरी के इरादे से किसी चोर का घुस जाना ठीक नहीं होता।

000

लघुकथाएँ

मूल : डॉ. अशफाक़ अहमद
लिप्यांतरण : सेवक नैयर

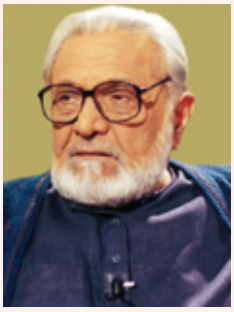

सेवक नैयर
801-802, ए – 2 ए, माणिकचंद मालाबार
हिल्ज़, वानोवरी, पुणे- 411 040
मोबाइल : 8308093028
ईमेल : sewaknayyar@gmail.com

पहली इच्छा

दीपक अपनी पत्नी और पाँच वर्ष के बेटे सोनू के साथ पहली बार अमेरिका से अपने देश वापिस आ रहा था। इसके बारे में उसने अपने माँ-बाप को बहुत पहले से ही बता दिया था और उसके आने की ख़बर सुनते ही घर में ख़ुशी की लहर दौड़ गई थी।

दादा-दादी अपने इकलौते पोते को मिलने के लिए बहुत उत्साहित थे और खुश भी। दादा ने तो उसके लिए शहर से ढ़ेरों खिलौने भी मँगवा लिए थे। दादी-माँ भी पोते की हर इच्छा पूरी करने के लिए तत्पर थी। एक दिन उसने अपने पति से कहा, "सुनते हो जी ? अमेरिका में सोनू दिन-रात कारों में घूमता है। हम रेलवे स्टेशन से उसे बैल-गाड़ी में बैठाकर घर लाएँगे तो उसे अच्छा लगेगा क्या.... ? मैं तो कहती हूँ कि हमें भी एक कार का प्रबंध कर लेना चाहिए। अन्यथा नाक कट जाएगी।" दादा ने तुरंत गाँव के सरपंच से बात की और एक कार का प्रबंध कर लिया गया।

अंतत: वह दिन आ गया जब दीपक अपने परिवार सहित अपने गाँव आ रहा था। उसके माता-पिता कार में बैठकर रेलवे-स्टेशन पहुँचे। ट्रेन प्लैटफ़ार्म पर लगी तो दादी-माँ ने लपक कर पोते को गोद में ले लिया। सब ख़ुशी-ख़ुशी स्टेशन से बाहर आए। लेकिन सोनू ने जब कार को देखा तो वह ठिठक गया और अपने पिता से कहने लगा,

"डैड, बैल-गाड़ी कहाँ है ? आपने तो कहा था कि हम बैलगाड़ी से घर जाएँगे .....?"

फिर उसने दादी-माँ की ओर देखा और पूछने लगा, "फ़ोन पर तो आप हर रोज़ कहा करती थीं कि तुम जल्दी गाँव आओ.... मैं तुम्हारी हर इच्छा पूरी करुँगी। फिर मेरे लिए बैल-गाड़ी क्यों नहीं लाए ?" सोनू को निराश देखकर दादा-दादी के चेहरे पर भी उदासी छा गई। वे चुपचाप एक-दूसरे को देखने लगे। उनकी चुप्पी साफ़ कह रही थी कि वे अपने प्यारे पोते की पहली इच्छा भी पूरी नहीं कर पाए थे .....!

ooo

भविष्यवाणी

मैं जब भी उस तरफ़ से निकलता था, एक ज्योतिषी को हमेशा लोगों के बीच घिरा हुआ पाता था। वह हाथ की रेखाएँ पढ़कर सबका भाग्य बताया करता था।

एक दिन मैं भी उस भीड़ में जा खड़ा हुआ। लेकिन मेरी बारी आने तक काफी रात हो चुकी थी। ज्योतिषी ने मेरी ओर देखा और कहने लगा, "तुम्हारा भविष्य मैं कल बताऊँगा। तुम कल अवश्य आना। मैं तुम्हें यहीं मिलूँगा।"

दूसरे दिन जब मैं वहाँ पहुँचा तो पता चला कि हाथ की रेखाएँ पढ़कर सारी दुनिया का भाग्य बताने वाला ज्योतिषी स्वयं अपने ही भाग्य से अंजान था।

वह आज सुबह ही इस संसार से कूच कर गया था .....!!

ooo

कमी

उसे बहुत दिनों से एक नौकरानी की तलाश थी। एक दिन एक महिला उसके घर आई और कहने लगी, "दीदी, मैं इंदिरा नगर में रहती हूँ। मेरे पति का देहांत हो चुका है। मेरे दो छोटे-छोटे बच्चे हैं। मैं बहुत लाचार हूँ। कुछ भी करके बच्चों का पेट पालना चाहती हूँ। मुझ विधवा पर तरस खाकर मुझे काम पर रख लीजिए। आप मुझे जो भी पगार देंगे, मैं ले लूँगी।"

"वह सब ठीक है लेकिन मुझे तुम्हारे जैसी नौकरानी तो मुझे बिल्कुल नहीं चाहिए।"

"क्यों.....? आपको मुझमें कोई कमी दिखाई देती है, दीदी ?"

"हाँ, तुममें बहुत भारी कमी है। तुम मुझसे अधिक सुंदर हो .... !!"

ooo

जनसंचार का बदलता परिदृश्य

नंद भारद्वाज

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हिन्दी के जनसंचार माध्यमों के प्रचार-प्रसार और लोकप्रियता में जो विस्फोटक वृद्धि हुई है, वह आज समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों और जनसंचार विशेषज्ञों के लिए कौतुहल और चिन्ता का विषय बन गई है। बावजूद इसके कि इस दौरान हिन्दी भाषी क्षेत्रों में लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और साक्षरता का तेज़ी से विस्तार हुआ है, लेकिन इसी के साथ वैश्वीकरण के बढ़ते दबाव में मुक्त बाज़ार-व्यवस्था और नए आर्थिक सुधारों के कारण तकनीक की उपलब्धता ने भी कुछ अलग तरह की भूमिका अदा की है। इस सब का परिणाम यह हुआ कि पिछले तीन दशकों में हिन्दी के समाचार पत्रों और मीडिया चैनल्स की पहुँच तथा प्रभाव का दायरा बहुत व्यापक हो गया है। आँकड़ों में भी ये अंग्रेज़ी या दूसरी भारतीय भाषाओं के मुकाबले बहुत आगे निकल गए हैं। उर्दू के ५३४ और अंग्रेज़ी के ४०७ दैनिक समाचार पत्रों की तुलना में वर्ष २००१ में प्रकाशित होने वाले हिन्दी दैनिकों की संख्या २५०७ तक पहुँच चुकी थी। इस सदी की शुरूआत के सर्वेक्षण के अनुसार २ करोड़ ३३ लाख ८२ हज़ार प्रतियों के साथ हिन्दी समाचार पत्रों ने अंग्रेज़ी सहित सभी भाषाई अखबारों की कुल प्रसार संख्या के ४० प्रतिशत पर कब्ज़ा जमा लिया था, जबकि अंग्रेज़ी दैनिक, जो अब तक प्रसार संख्या में अव्वल थे, ८७ लाख प्रतियों तक सीमित होकर रह गए। इसे सन् २०१७ के जनवरी-जुलाई के आँकड़ों से मिलान करके बेहतर तरीके से समझा जा सकता है –

१ दैनिक जागरण (कानपुर)-३९,६४,०६४
२ दैनिक भास्कर (भोपाल)-३७,५८,९४९
३ दैनिक हिन्दुस्तान (नई दिल्ली)-२७,३५,२५२
४ टाइम्स ऑफ इंडिया (नई दिल्ली) -२७,१६,२९१
६ मलयालम मनोरमा (कोट्टायम)-२३,८८,८८६
७ ईनाडू – तेलुगू (हैदराबाद)-१८,६२,०१८
८ राजस्थामन पत्रिका (जयपुर)-१७,८४,१४२

समाचार पत्रों के बरक्स जब हम इलैक्ट्रॉनिक मीडिया (टी वी चैनल्स) के विस्तार पर नज़र डालते हैं तो पाते हैं कि एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में टेलीविजन का आगमन पश्चिमी देशों की तुलना में हमारे देश में काफी देर से हुआ और वर्षों तक उसके विकास की गति भी बेहद धीमी रही। पश्चिम में रेडियो कारपोरेशन ऑफ अमेरिका जहाँ सन् १९२९ में टेलीविजन प्रसारण

नंद भारद्वाज
71 247, मध्यम मार्ग,
मानसरोवर, जयपुर – 302020
मोबाइल - 9829103455
ईमेल- nandbhardwaj@gmail.com

की विधिवत शुरूआत कर चुका था, हमारे देश में इस 'चमत्कार' को शुरू होने में पूरे ३० वर्ष लग गए, और वह भी बहुत डरते-डरते। यानी १५ सितम्बर सन् १९५९ को जब दिल्ली में देश के पहले दूरदर्शन केन्द्र की शुरूआत की गई तो उसे देखने के लिए किसी के पास एक टी.वी. सैट तक नहीं था और वह प्रसारण मात्र २५ किलोमीटर की परिधि तक सीमित था। सन् १९६२ तक केवल ४१ लोगों के पास ही टी.वी. सैट उपलब्ध हो पाए। उसके बाद सन् १९६५ में हिन्दी समाचारों के साथ एक घंटे का नियमित प्रसारण शुरू हुआ और प्रसारण में हिन्दी को प्राथमिकता मिली। प्रसारण के इस प्रारम्भिक दौर में सामुदायिक विकास, जनजागृति और संकीर्णता की भावना से उबरने के संदेशों के साथ कुछ मनोरंजन के कार्यक्रमों का लक्ष्य रखा गया और ये सभी कार्यक्रम प्रमुख रूप से हिन्दी में ही प्रसारित होते थे। सन् ६५ के बाद टेलीविजन सैटों की संख्या में कुछ बढ़ोतरी हुई और सन् १९७१ तक यह संख्या ४४ हज़ार को पार कर गई, जबकि सन् २००० के बाद तो यह संख्या ९-१० करोड़ के भी ऊपर पहुँच गई थी।

टेलीविजन प्रसारण की दृष्टि से भारत में अगले तीन चरण बेहद महत्त्वपूर्ण रहे - पहला था, अगस्त १९७५ में सैटेलाइट प्रयोग की शुरूआत, जो प्रारम्भ में एक वर्ष के लिए शुरू किया गया और जो आगे भी जारी रहा। दूसरा था - अप्रेल १९८२ में इन्सैट १ए का सफल प्रक्षेपण, भारत में एशियाई खेलों का आयोजन, जिसे दूरदर्शन पर सीधा दिखाया जाना था, यहीं से भारत में रंगीन टेलीविजन प्रसारण की शुरूआत हुई और पूरे देश में उच्च और लघु-शक्ति रिले ट्रांसमीटर्स की स्थापना शुरू हुई, परिणामस्वरूप सन् १९८० तक पूरे देश में जहाँ मात्र १८ ट्रांसमीटर थे, वहीं १९८५ तक यह संख्या १७२ हो गई, और सन् २००४ में यह आँकड़ा १४०० को पार कर गया था। टेलीविजन प्रसारण के तीसरे महत्त्वपूर्ण चरण के रूप में हम सन् १९९१ के उस नाटकीय घटनाक्रम को देखते हैं, जहाँ अमरीकी समाचार नैटवर्क सी.एन.एन. ने अपने शक्तिशाली उपग्रह और डिश-एण्टिना के जरिये भारत और एशियाई देशों में खाड़ी-युद्ध का सीधा प्रसारण आरम्भ कर एक नई चुनौती का सूत्रपात किया। इसी क्रम में एक ओर स्टार टेलीविजन ने हांगकांग से अपना अन्तर्राष्ट्रीय नैटवर्क प्रसारण आरम्भ किया तो दूसरी ओर भारत के निजी टेलीविजन नैटवर्क जी ने केबल नैटवर्क के माध्यम से अपनी हिन्दी सेवा शुरू की। ये दोनों ही सेवाएँ कुछ ही अरसे में शहरी मध्यवर्ग में आकर्षण का केन्द्र बन गईं। और फिर देखते ही देखते विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में केबल की दुनिया ने चैनलों का जो जादुई पिटारा खोला, उसने सारा परिदृश्य ही बदल दिया। निश्चय ही इन निजी चैनल्स की प्राथमिकताओं में हिन्दी भाषा को तो अवश्य प्राथमिकता मिली, लेकिन सामाजिक सरोकारों और स्वस्थ मनोरंजन के लिए कहीं कोई गुंजाइश नहीं थी।

उपग्रह प्रणाली में आए क्रान्तिकारी बदलावों के कारण आज देशी-विदेशी सैकड़ों व्यावसायिक चैनल भारतीय शहरों में आ चुके हैं। ये चैनल बाज़ार और घरों में लोकप्रिय भी हैं, बावजूद इसके कि इनके पास घरों और लोगों को नई दिशा देने वाले या उनका स्वस्थ मनोरंजन करने वाले कोई कार्यक्रम नहीं हैं और न ही उनकी कार्यसूची में इस तरह के कार्यक्रमों को कोई प्राथमिकता। जनोपयोगी सूचना और शिक्षा के प्रति तो वे शुरू से ही उदासीन रहे हैं। दिलचस्प बात यह है कि इन माध्यमों का संचालन और नियंत्रण भी उन्हीं बाज़ारवादी शक्तियों के हाथ में है, जो हर दर्शक को सिर्फ एक उपभोक्ता के रूप में देखती हैं।

दुनिया के अन्य बहुत से देशों की तरह भारत भी एक बहुजातीय संस्कृतियों वाला देश है। ऐसे देश में एक राष्ट्रीय संस्कृति के विकास का अर्थ होता है, उन विभिन्न जातीय संस्कृतियों की विशेषताओं और पारस्परिक संबंध को स्वीकार करते हुए उनकी स्वायत्तता का सम्मान करना, उनमें अन्तर्निहित एकसूत्रता को पहचानना और उन्हें मजबूत करना। यह समन्वय और सामंजस्य उस सनातन संस्कृति की अपनी मूल प्रकृति और ऐतिहासिक पहचान भी रही है। इस एकसूत्रता को मज़बूत करने और उसे विकसित करने का कार्य संस्कृति की स्वाभाविक प्रक्रिया को अनुशासित या नियंत्रित करके नहीं किया जा सकता।भारत में जहाँ भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलने वाले और अलग-अलग धर्मों को मानने वाले अनेकों समुदाय शताब्दियों से साथ रहते आए हैं, इसी सचाई को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य पर विशेष बल दिया गया है, जहाँ किसी भी व्यक्ति या समुदाय के साथ धर्म, भाषा, जाति या क्षेत्र के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता।

भारतीय गणराज्य २८ राज्यों और ७ केन्द्र शासित प्रदेशों का ऐसा विशाल संगठन है, जो अपने आप में एक उप-महाद्वीप की कल्पना को साकार करता है। उदाहरण के लिए जैसे राजस्थान को ही लें, जो भौगोलिक दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य है। सांस्कृतिक दृष्टि से जितनी विभिन्नताएँ किसी एक देश में हो सकती हैं, वे भारत के इस बड़े प्रदेश में शताब्दियों से विद्यमान रही हैं - चाहे वे भाषा और बोलियों को लेकर हों, धर्म और जातियों को लेकर हों या अलग अलग वेष-भूषा, खान-पान और रहन-सहन को लेकर हों, इन सारी भिन्नताओं के बावजूद राजस्थान की अपनी एक अलग सांस्कृतिक पहचान रही है, जिसमें सभी भाषाओं, धर्मों और क्षेत्रीय विशेषताओं का अपना साझा है।

हमारे देश की इस समृद्ध बहु-भाषाई संस्कृति और जीवन के प्रति जनसंचार के वर्तमान परिदृश्य और उसकी माध्यम इकाइयों के रवैये की बारीकी से पड़ताल करें, तो पाएँगे कि इस विशाल जनमानस की ज़रूरतों, आकांक्षाओं और पीड़ाओं की आवाज़ बनने का दावा करने के बावजूद ये माध्यधम इकाइयाँ अपने उत्तरदायित्व के प्रति न केवल गंभीर नहीं हैं, बल्कि कई बार तो अपने आर्थिक हितों और लालसाओं के चलते सचाई और वास्तीविकता को छुपाने की दोगली भूमिका भी निभाती रही हैं। अपने समय-समाज और लोक-शासन की वास्तविकताओं और घटनाओं की सही और

वस्तुपरक जानकारी के लिए हम रोज सुबह जिन अख़बारों को खरीदकर पढ़ते हैं, या हर घंटे सबसे तेज़ और निष्पक्ष रिपोर्टिंग का दावा करने वाले किसी न्यूज़ चैनल को देखते हैं तो अमूमन निराशा ही हाथ लगती है। पिछले कुछ सालों से जहाँ बहुत-से मीडिया-हाउस और न्यूज चैनल्स कारपोरेट घरानों द्वारा ख़रीदे जा चुके हैं या जिन पर परोक्ष नियंत्रण कर लिया गया है, ऐसे में समाचार प्रसारण की यह सारी प्रक्रिया जिस तरह मैनेज और अनुकूलित की गई है, अधिकांश न्यूज़ चैनल अपनी साख और विश्वसनीयता पूरी तरह खो चुके हैं। जो तथ्यपूर्ण, निष्पक्ष और खरी बात लिखने वाले पत्रकार या कॉलम लेखक हैं, वे शासनतंत्र और मालिकों द्वारा पहले ही किनारे किये जा चुके है, जो चैनल या पत्रकार उनके दबाव में नहीं आते, उन पर कई तरह के दबाव बनाए जाते हैं, उन्हें प्रताड़ित और परेशान किया जाता है, यहाँ तक कि उनकी हत्या तक कर दी जाती है और अपराधी उनके संरक्षण में बेखौफ घूमते हैं।

इस कठिन परिस्थिति के बावजूद मौजूदा दौर में क्षेत्रीय समाचार पत्रों की भूमिका निश्चय ही महत्त्वपूर्ण हो गई है। जन-साधारण अब अपनी छोटी-बड़ी माँगों और अन्याय-अत्याचार के प्रतिरोध की अभिव्यक्ति के लिए क्षेत्रीय समाचार पत्रों के मंच का उपयोग कर रहा है। उसकी अभिव्यक्ति की आकांक्षा को इन पत्रों के प्रसार से पंख लग गए हैं। जाहिर है पाठकों की संख्या बढ़ने और ज़मीनी सचाइयों की खोजपूर्ण रिपोर्टिंग के कारण इन पत्रों की भाषा के स्वरूप में भी परिवर्तन आया है, इन पत्रों के शहरी परिशिष्ट बेशक भाषा संबंधी विकारों और भटकाव का शिकार हो रहे हों, इनकी अंदरूनी देहात की रिपोर्टिंग में निश्चय ही सकारात्मक परिवर्तन आया है, और वही उनके लोकप्रिय होने का कारण भी है।

इस क्षेत्रीय पत्रकारिता की भाषा में नेकनीयत और सदाचार के बावजूद कुछ अतिरंजनापूर्ण शब्दों और उक्तियों का प्रचलन बढ़ा है, इससे वास्तविकता के सही-सही आकलन में असुविधा अवश्य होती है, लेकिन लोकतंत्रीकरण और जनजागरण की प्रक्रिया में मोटे तौर पर यह प्रक्रिया सहायक ही सिद्ध होती है। समाचारों के मामले में यह आम धारणा बन गई है कि जब तक हालात का अतिरंजनापूर्ण वर्णन नहीं किया जाएगा, वह प्रभावी समाचार का रूप नहीं ले पाएगा और न जनसामान्य का ध्यान ही आकर्षित कर पाएगा, ऐसे में कई शब्द और उक्तियाँ रूढ़-सी हो गई हैं, मसलन् किसी क्षेत्र में पानी की समस्या है तो लिखा जाएगा कि 'जल-संकट के करण जनता त्राहि-त्राहि कर रही है' या जल-संकट ने विकराल रूप धारण कर लिया है, अगर कानून व्यावस्था में कोई खामी पाई जाती है तो लिखा जाएगा 'व्यवस्था चरमरा गई है', कोई छोटी-मोटी दुर्घटना घट जाती है तब भी उसे 'भीषण' ही लिखा जाएगा, याकि क्षेत्र के किसी स्कूल कॉलेज में कोई गतिविधि या सांस्कृतिक कार्यक्रम हो तो यही लिखा जाएगा, छात्र-छात्राओं ने समा बाँध दिया, या दर्शक मंत्रमुग्ध गए। अक्सर ऐसे कार्यक्रमों की रिपोर्टिंग भी किसी विद्यार्थी, अध्यापक या शैक्षणिक कर्मचारी द्वारा की जाती है, जिसमें अतिशयोक्ति की पूरी गुंजाइश रहती है। यही हाल धरना, प्रदर्शन या जुलूसों की रिपोर्टिंग का रहता है, जहाँ मामूली भीड़ भी जन-सैलाब में तब्दील हो जाती है। इसी तरह दुर्घटना, वारदात, पुलिस कार्यवाही, प्राथमिक उपचार या अदालती कार्यवाही की भी एक बंधी-बंधाई रूढ़ शब्दावली बन गई है।

क्षेत्रीय समाचार पत्रों के साथ प्रकाशित होने वाले शहरी परिशिष्टों की भाषा में एक अजीब किस्म की प्रवृत्ति पिछले एक अरसे से देखने को मिल रही है, और वह है, इन पृष्ठों पर छपने वाली भाषा का मनमाना और गैर-ज़िम्मेदाराना रूप। वे शहरी युवा-वर्ग की भाषा संबंधी बदलती अभिरुचि के नाम पर जिस तरह हिन्दी के वाक्य विन्यास में जिस तरह बिना सोचे-समझे एक आरोपित मानसिकता के बतौर जिस अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग करने लगे हैं, उसने हिन्दी के प्रयोग को मखौल बना दिया है, क्या वे इसी तर्क को किसी अंग्रेज़ी अख़बार की भाषा पर लागू करने का साहस दिखा सकते हैं, क्या किसी अंग्रेज़ी समाचार या रिपोर्ट में हिन्दी या क्षेत्रीय भाषा की शब्दावली का बेरोक इस्तेमाल कर सकते हैं, जब वहाँ संभव नहीं, तो हिन्दी के अख़बार में किस आधार पर उचित मानते हैं? जिसे क्षेत्रीय हिन्दी अख़बारों ने अपनी रोज़ की आदत बना लिया है – नमूने के तौर पर ऐसे कुछ शीर्षक आप भी देख सकते हैं –

एग्ज़ीबीशन में पाँच सौ फोटोज़ होंगे प्रेजेंट (पाँच सौ छायाचित्रों की होगी प्रदर्शनी)

लैपर्ड कन्ज़र्वेशन से जुड़ेंगे स्टूडेंट्स (चीता संरक्षण अभियान से जुडेंगे छात्र)

ग्रेजुएट्स की टॉप रिक्रूटर है ये इंडस्ट्रीज़ (स्नातक भर्ती का शिखर उद्योग)

प्रोफ़ेशनल कनैक्शन के बिना मिलेगी ग्रोथ (व्यावसायिक संपर्क के बिना मिलेगी बढ़ोतरी)

स्टोरी राइटिंग के लिए क्रिएटिव टिप्स (कहानी लेखन के लिए रचनात्मक संकेत)

पार्टिसिपेंट्स के लिए एण्ड्यूरेंस स्पोर्ट्स पूरा करने का टारगेट (प्रतिभागियों के लिए सहन-क्रीड़ा अभ्यास का लक्ष्य।

मैंने एक मार्शल आर्टिस्ट की लाइफ जी है (मैंने एक योद्धा का जीवन जीया है)

अवार्ड प्रोग्राम में न्यू ट्रेनीज़ को करेंगे मोटिवेट (पुरस्कार कार्यक्रम में नये प्रशिक्षकों को करेंगे प्रेरित)

कहना न होगा कि इन तमाम शब्दों के लिए हिन्दी में आसान और बहु-प्रचलित शब्दावली पहले से मौजूद है, लेकिन व्यवहार में अगर ग़ुलामी मानसिकता गहरी पैठी हो तो उससे निजात पाना आसान नहीं है। विडंबना तो तब और भी बड़ी हो जाती है जब व्यवस्था के शिखर पर बैठे लोगों में यही प्रवृत्ति एक आदत बनती जा रही हो, तो उस दुष्प्रवृत्ति से देश को मुक्त करवा पाना निश्चय ही कठिन हो जाता है। क्या कारण है कि तमाम राष्ट्रीय योजनाओं, कार्यक्रमों और अभियानों के लिए हिन्दी में एक से एक सुलभ और सार्थक शब्द उपलब्ध होते हुए भी जब हम इन्क्रैडिबल इंडिया, स्टार्टअप, न्यूइंडिया, मेक इन इंडिया जैसे जुमलों को गर्व से दोहराने लगते हैं, तो ऐसे में क्षेत्रीय पत्रों में पनपती इस मानिसिकता पर क्या अचरज करें?

000

ख़ाली स्थान की सुरंगों से

धर्मपाल महेंद्र जैन

मैं डॉक्टर नहीं हूँ पर दिमाग़ के बारे में पढ़ता रहता हूँ। जो अपने पास नहीं हो उसके बारे में विस्तृत जानकारी रखनी चाहिए। इतनी आलतू-फालतू चीजों के बारे में विशेषज्ञ हूँ। इसमें भी विशेषज्ञ हो गया तो कुछ नुक़सान होने वाला नहीं है। कभी-कभी फ़ालतू चीज़ें भी काम की निकल आती हैं। दिमाग़ के बारे में मेरे पास केवल कुछ मूल जानकारियाँ थीं। जैसे कि मेरे शिक्षकगण कहा करते थे इसमें भूसा भरा है। निर्माण विशेषज्ञ पिता निर्णय दे चुके थे कि इसमें गोबर भरा है। 'साहित्य' रचना शुरू किया तो अनपढ़े पाठक कहने लगे कि पेंच ढीला है। संपादकों ने जो कहा वह शिष्ट भाषा में यहाँ लिखना असंभव है। यही वजहें रहीं कि दिमाग़ के बारे में सही-सही मालूमात की जाए। इच्छा हुई, अपना बोनट खोल कर देख लूँ, कहाँ कट्ठा-ढीला करना है, कहाँ कचरा-बगदा हटाना है और कहाँ पाँच सौ बारह जीबी की युवा चिप फिट हो सकती है। कोई मोटर मैकेनिक इसे अच्छी तरह ठोक-पीट कर ठीक कर सकता है। पर मैं डरता हूँ, लेखक का दिमाग़ वैसे भी कबाड़ से कम नहीं होता। उसका और कबाड़ा कराने से साहित्य अकादमियों को कुछ नया मिलने वाला नहीं है।

सोचा किसी वैज्ञानिक को बता दूँ। वैज्ञानिक अपनी असलियत जानते हैं कि उनकी खोपड़ी खोलने में अंदर से कुछ ख़ास नहीं निकले और वे हड़प्पाकालीन खोपड़ियों के समकक्ष मान लिए जाएँ। इसलिए वे दूसरों पर ही परीक्षण करते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने मुझसे पहले दूसरों की खोपड़ियाँ खोलकर देखी थीं। उन्हें दिमाग़ में बहुत सारी छोटी-छोटी सुरंगें मिली थीं। ऐसी सुरंगें जिनमें घुसकर पाकिस्तानी आतंकवादी कश्मीर की वादियों में घुसपैठ करते हैं। मुझे साफ़-साफ़ समझ आ रहा था कि मेरे ख़ाली स्थान में जो बाग़ी विचार आते हैं वे कहाँ से आते हैं। वह तो अच्छा है कि दिमाग़ में आने वाले हर विचार पर मैं अमल नहीं करता, अन्यथा मेरी तीन-चार सौ प्रेमिकाएँ होतीं और अब तक एक ट्रक में अपनी प्रेम कविताओं की ग्रंथावलियाँ भर कर मैं भारत भवन के सामने खड़ा होता।

बहुत हिम्मत करके मैं एक वैज्ञानिक से मिला। सच कहूँ, वैज्ञानिक बड़ी बेहूदा क़ौम है। वे इतना विस्तार से पूछते हैं जैसे पुलिस वाले पीड़िता से बलात्कार की प्राथमिक रिपोर्ट ले रहे हों। हद तो तब हो गई जब वे मुझे ही ज्ञान देने लग गए। व्यंग्यकार को गाली दे दो तो वह पचा सकता है, पर ज्ञान देने लगो तो उसे अजीर्ण हो जाता है। वैज्ञानिक, भाषा शास्त्री नहीं होते जिन्हें मालूम हो कि आ बैल मुझे मार का उद्भव किन परिस्थितियों में हुआ होगा। आदमी के दिमाग़ के बारे में समझाते हुए वैज्ञानिक बोले कि मनुष्यों का दिमाग़ चूहों जैसा होता है। दिमाग़ों की तुलना करनी ही थी तो बंदर से कर देते, मेरी वंश परंपरा सुदृढ़ हो जाती। पर मैं अपने दिमाग़ को चूहे जैसा मानने को कतई तैयार नहीं था। मैं विशुद्ध भारतीय मूल का हूँ। चीन वालों की बात अलग है, वे उनके दिमाग़ की चूहों से लगा कर चमगादड़ तक से तुलना करा सकते हैं। हाँ, जो विपक्षी पार्टी के लोग हैं उनके दिमाग़ बिल्ली के डर से दुबके चूहों जैसे हो सकते हैं। पर जब सारे ज्ञानवान् लोग धड़ाधड़ मेरी पार्टी में ट्रांसफर ले कर अपने घर भर रहे हों तो डूबते विपक्ष में वही बैठा रहेगा जिसका दिमाग़ केवल कुतरना जानता है, चूहे जैसा थोड़ा-थोड़ा। मैंने उस मरदूद वैज्ञानिक का नाम-पता सोशल मीडिया पर वायरल करने का विचार बनाया जो मानव जाति का नाम शर्मसार कर रहा था। संस्कृति रक्षकों को एक इशारा करने की देर थी, वे एक हल्ले में पश्चिमी सोच के ऐसे करतूतियों का दिमाग़ ठिकाने लगा आते। यह वैज्ञानिक विदेशी था, इस तकनीकी कठिनाई के चलते अब तक बचा रहा, पर अब उसकी ख़ैर नहीं। हमारे प्रवासी भाई दुनिया के कोने-कोने

धर्मपाल महेंद्र जैन
1512-17 एनडेल ड्राइव, टोरंटो
M2N2W7, कनाडा
ईमेल- dharmtoronto@gmail.com
मोबाइल- + 416 225 2415

में एकनिष्ठ हो गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, वे यह काम आसानी से निपटा सकते हैं। हमारे दिमाग़ को चूहे जैसा बता कर विदेशी हमारी संस्कृति का उपहास नहीं उड़ा सकते।

अब तक मैंने जो शोध किया है उसके अनुसार दिमाग़ हाईकमान जैसा होता है। शरीर में कहीं कुछ भी हो जाए, सबसे पहले उसे ही पता चलता है। ग़ुस्सा यदि दिमाग़ को आए तो भी वह अपनी जगह नहीं छोड़ता। उसके गुप्त संदेश पर दायाँ हाथ उठ कर विपक्षी को ठोक आता है। तत्क्षण, हाईकमान रूपी दिमाग़ पैरों को आदेश देता है, भागो रे। पैर शताब्दी एक्सप्रेस की तरह बिना रुके दौड़ने लग जाते हैं। वही दिमाग़ हाथ को शाबाशी देते हुए कहता है अच्छा ठोका। आगे से किसी को ठोकना हो तो हथेली से ठोकने की बजाय कार का दरवाजा भिड़ा देना, सामने वाली की टाँग टूटगी और माथा भी फूटेगा। दिमाग़ से ऐसा समर्थन मिले तो हाथ जगन्नाथ बनता है। जो लोग सोचते हैं कि दिमाग़ घुटनों में होता है, वे सही सोचते हैं। मारपीट कर ऐसे लोग ही सुरक्षित तरीके और द्रुतगति से भाग सकते हैं। जिनका दिमाग़ केवल ऊपरी हिस्से में होता है वे घायल होने के बाद, रक्त से सने चेहरे वाले अपने फ़ोटो अख़बारों में देख रहे होते हैं। दिमाग़ ऐसी आपदा को भी अवसर में बदलने से नहीं चूकता। कुछ नहीं तो ऐसे फ़ोटो अपने प्रियजनों तक पहुँचा कर वह हमदर्दी बटोरना और दिल टटोलना शुरू कर देता है। दिल की फिसलपट्टी पर खड़े लोग दिमाग़ के इस चक्रव्यूह में आसानी से फँस जाते हैं। इसलिए जो पाठक प्रेम के मामले में हताश और निराश महसूस कर रहे हो अपने दिमाग़ को ठुकवा कर बड़ा पट्टा करवा लें। सफलता की गारंटी है।

डॉक्टर बताते हैं कि कई लोगों के दिमाग़ में ज़्यादा पानी भर जाता है। ऐसे लोग वयस्क हो कर भी गुड्डू रह जाते हैं, मंद दिमाग़ वाले। वे अपनी बुद्धि का मौखिक प्रदर्शन अधिक करते हैं। बेसिर-पैर का बोलते हैं, लोग उन पर हँसे तो वे इसे अपनी प्रशंसा समझते हैं। यह छूत की बीमारी होने जैसा है। जिसे यह बीमारी लग जाए वह व्यक्ति वेबिनारों के वेबनरों और वेबनारियों में अपनी कस्तूरी की महक फैलाता रहता है। इस मायावी भ्रम के मारे सृजनपीठ के महाकवि के साथ झोला उठाने वाले खुद को महाकवि समझने लगते हैं, और पदारूढ़ राजनेता के पिछलग्गू हों तो वे राजनेता के घरेलू चप्पल बन जाते हैं। इसलिए जब कभी आप अपना दिमाग़ खुलवाएँ तो अतिरिक्त पानी निकलवा दें। तनाव और संक्रमण रहित हो कर बिंदास आदमी बनने का यह रामबाण उपाय है।

अपना दिमाग़ आप ख़ुद नहीं खोलें। दिमाग़ में बहुत सारे तंतु (टिशू) होते हैं जिनकी वायरिंग जटिल होती है। किधर का वायर किधर फिट हो जाए तो बड़े लोचे हो जाते हैं। मेज़बान पार्टी दलबदलू को टिकट नहीं देकर जैसा पगला बना देती है, वैसे मनोरोग आम आदमी को होने लग जाते हैं। आपने ग़ौर किया होगा, कुछ लोगों के दिमाग़ आकार में बड़े पर सोच में छोटे होते हैं। उनकी आसपास की चीज़ों में रुचि कम होती है। वे सचिवालय से नीचे बात नहीं करते और राजधानी के बाहर नहीं जाते। वे ख़याली पुलाव पकाते हैं कि कब उन्हें सत्ता, भत्ता और पत्ता मिले और वे प्रतिष्ठित घोषित हो जाएँ। वे अपना दिमाग़ नपवा आए हैं, पर आपको अपने दिमाग़ का घेरा अभी नापने की ज़रूरत नहीं है। जिनके घेरे पहले नापे गए थे वे भी दो-तीन साल आगे की प्रतीक्षा सूची में हैं।

दिमाग़ के बारे में मैं अपने अपार ज्ञान से अभिभूत हो गया था। यही ज्ञान मैं अपने आठ वर्षीय नाती से साझा कर रहा था। उसने किताब का एक अध्याय खोलकर कहा, नाना इसे पढ़ो- 'वीडियो गेम्स खेलने से दिमाग़ तेज़ चलता है। हाथ, पैर और आँखें तालमेल में काम करना सीखते हैं। याददाश्त बढ़ती है। दिमाग़ कम समय में निर्णय लेना सीखता है।' वह वीडियो गेम्स में मुझे हरा देता है। पाठको, आपके नाती-पोते या बच्चे भी आपको वीडियो गेम्स में पक्का हरा देंगे। इसलिए तेज़-तर्रार दिमाग़ के लिए वीडियो गेम्स खेलिए और हार कर भी ख़ुश रहिए। दिमाग़ अपना हो या दूसरों का, है ही नहीं तो ताक-झाँक क्या करना।

000

दोहे

जय चक्रवर्ती

दंगा, हिंसा, साजिशें, मुर्दों पर अभियोग।
करती रहीं हुकूमतें, नित-नित नए प्रयोग॥

लगे हुए थे हर तरफ, नफरत के बाज़ार।
हुकूमतें करतीं मिलीं, खुद सारा व्यापार॥

वादे, भाषण, अर्ज़ियाँ, संविधान, कानून।
हुकूमतों की दाढ़ पर, था सपनों का खून॥

बोती रहीं हुकूमतें, मरने का सामान।
हुकूमतों के जाल से,जन-गण था अनजान॥

फंदे पर टाँगी गई, हर गर्दन चुपचाप।
हुकूमतों के पास थी, हर गर्दन की नाप॥

हुकूमतों से दर्द-दुख, कहते कैसे लोग।
हुकूमतों के सामने, भुनगा-जैसे लोग॥

पल-पल भीगी खून में, दंगों की तारीख।
हुकूमतों ने कब सुनी, मज़लूमों की चीख॥

आँसू-डूबी बस्तियाँ, पंछी पंख-विहीन।
गुणा,भाग,ऋण,जोड़ में, हुकूमतें तल्लीन॥

यूँ तो खौलाती रहीं, भाषण-भाषण रक्त।
बोली कहाँ हुकूमतें, ज़रूरतों के वक़्त॥

जब–जब हुई हुकूमतें, आँख-कान से दूर।
दबी रियाया बोझ से, मरने को मजबूर॥

000

जय चक्रवर्ती, एम.1/149, जवाहर विहार,
रायबरेली-229010 उप्र
ईमेल–jai.chakrawarti@gmail.com

शादी-ब्याह की नेटवर्किंग में जनवासा क्वारिण्टीन

डॉ. रंजना जायसवाल

बसन्त की गुलाबी ठंड बसंती बयार में पड़ोसी मिश्रा जी ने लगे हाथ बसन्त पंचमी के शुभ दिन अपनी बिटिया की शादी तय कर दी। सब कुछ इतना जल्दी-जल्दी हुआ कि मिश्रा जी की बहन और बहनोई इस शुभ मौके पर भी न पहुँच सके। ख़ैर शादी में बुलाने का लॉलीपॉप दिखाकर किसी तरह उन्हें शांत किया गया पर होनी को कुछ और ही मंज़ूर था। बिटिया के ससुराल वाले अलग नहा-धोकर पीछे पड़े थे।

"मिश्रा जी!!..शादी-ब्याह का मामला है देख लीजिए। देर करने से क्या फायदा।"

मिश्राइन भड़क गई-

"अनुरोध कर रहे हैं कि धमका रहे हैं!"

"अरे भाग्यवान्!... शादी सात जन्मों का बंधन है पर ये जो नौ महीने से बिना बात के हम बन्धन में फँसे पड़े हैं उसका क्या...एक महामारी में दूसरी महामारी।"

मिश्राइन तो पहले से ही भड़की हुई थी और भड़क गई-

"क्या कह रहे हो मिश्रा जी!!... तुम तो उम्र से पहले ही बूढ़ा गए हो। शादी दो आत्माओं का मिलन, दो परिवारों का मिलन है और तुम उस मुये कोरोना से तुलना कर रहे हो।"

मामला बिगड़ते देख मिश्रा जी के हाथ-पाँव फूल गए-

"अरे मिश्राइन!...काहे अपना बी पी बढ़ा रही हो। तुम ही बताओ शादी कि ऐसी क्या जल्दी पड़ी थी अगर एक साल देर से ही हो तो कौन सा आकाशगंगा में से नौ ग्रह में से एक कम हो जाएगा या...कौन सा बच्चों की ज़िंदगी की पोथी में से एक पुण्य कम लिखने से रह जाएगा। अलबत्ते, बाप के टेलीफ़ोन का बिल ज़रूर बढ़ने लगा है।"

मिश्रा जी की लाडली अपने सोना, बेबी,हन्नी से रोज़ दो-दो घण्टे फ़ोनियाती थी। ऊपर से कोई न कोई रोना लेकर वो रोज़ हाजिर ही रहती है-

"डैड!... देखो न सोच रही था कि अपनी शादी में ज़ीरो फिगर बनाकर अनीश मेहरोत्रा की डिज़ाइनर गाउन पहनूँगी.. पर मम्मी के चक्कर में सारा फिगर ही बर्बाद हो गया।"

मिश्रा जी सोचने लगे, एक तो इन बच्चों का ये समझ में नही आता, जीते जी हँसते-खेलते बाप को मरा घोषित करने का ये कौन सा तरीका है। बेचारी माँ कोरोना के चक्कर में कांता बाई बनी टहल रही थी...पर बिटिया ने खड़े-खड़े धो दिया। मम्मी की भी क्या ग़लती ...सोची बिटिया चार दिन की मेहमान फिर तो अपने घर ही जाना है पता नहीं क्या मिले क्या नहीं। ये भारतीय माँओं का समझ नहीं आता बेटी का ब्याह करते वक्त ऐसी परेशान रहती है जैसे बिटिया को ससुराल नहीं सियाचिन बार्डर भेज रही हो।

इस कोरोना के चक्कर में पूजा स्थल भी बन्द। ग्रहण के समय तो पूजा स्थलों को बंद होते देखा और सुना था पर हमारे पालनहार हमारे तारणहार भी कन्फ्यूजन में थे ...भई ये कौन सा ग्रहण है जो ख़त्म होने का नाम ही ले रहा। अचानक से भूलोक पर क्या हो गया ...सबके दुख, इच्छाएँ, सपने अचानक से मिट गए अब तो हमारे चौखट पर कोई माथा टेकने भी नहीं आता...कोई फरियादी नहीं..कोई दुखियारी नहीं। अब धरतीवासियों के लिए ही कोरोना एक नया शब्द था तो अपने पालनहारों को क्या समझाते। भक्तों की राह तकते-तकते उनकी आँखें भी पथरा गई...पर ये मुआ कोरोना नहीं गया। पर एक बात तो माननी ही पड़ेगी, जिस सर्दी-ज़ुखाम को कभी समाज में और बीमारियों की तरह इज़्ज़त नहीं मिली थी ...इस कोरोना ने ऐसी इज़्ज़त दिलायी कि पूछिये मत। कभी भरी महफ़िल छींक और खाँसकर तो देखिए...लोग रास्ता खुद ही

डॉ. रंजना जायसवाल
लाल बाग कॉलोनी, छोटी बसही बजाज स्कूल के बगल में, मिर्जापुर, 231001, उप्र,
मोबाइल- 9415479796

ख़ाली कर देते हैं। बड़ी वी.आई.पी. वाली फीलिंग आती है। इधर समधी साहब का बार-बार फ़ोन आ रहा था,मिश्रा जी अजीब असमंजस में थे...करें तो क्या करें।

एक तो इस साल लग्न कम... ऊपर से कोरोना, शादी-विवाह जैसे समारोह में पहले पचास, फिर सौ फिर दो सौ और फिर से सौ की संख्या कर दी। सरकार का भी समझ नहीं आता शादी-विवाह के लिए सौ और धरना प्रदर्शन के लिए नो लिमिट...भई वाह! हमारे यहाँ मोहल्ले में अगर कोई ज़ोर से छींक दे तो पचास लोग तो ऐसे ही खड़े हो जाए। कह तो सही ही रहे थे....सच बता रहे बड़ी अजीब सी फीलिंग आती थी...पचास वाले में तो हम होंगे नहीं पर कम से कम सौ वाले में तो होंगे ही... ये संख्या का सवाल ट्रिग्नोमेट्री के सवाल से भी ज़्यादा कठिन हो गया। अब इस सौ की संख्या में हलवाई, वेटर, नाऊ, पंडित जी, साज-सज्जा और बैंड बाजा वाले भी होंगे कि नहीं ...ये पता लगाने के लिए भी आदमी दौड़ाना पड़ता।

हम तो पहले से ही दुखी थे ऊपर से लोगों ने भी आग में घी डालने का पूरा काम किया... हमारे दूर के मित्र ने सोशल नेटवर्क पर एक सन्देश डाला...ईश्वर की असीम अनुकम्पा जगतजननी माँ विंध्यवासिनी के आशीर्वाद और मेरे पिछले जन्म के पुण्य कर्मों के कारण तीन शादियों के मेहमान सूची में मेरा नाम टॉप पचास में आ गया है। सच बता रहे ऐसी फीलिंग आ रही थी कि बस प्रशासनिक सेवा की प्रवेश परीक्षा का अंतिम चरण में बस हमारा चयन होते-होते रह गया। जिन लोगों को कार्ड मिला वो तो चौड़े हुए घूम रहे थे पर जिन्हें नहीं मिला...सस्ते में निपट लिए पैसा बच गया...जैसे संवादों से कोरोना को मन ही मन कोसते रहे।

"मिश्रा जी!...बिटिया की शादी की तैयारी कैसी चल रही है। अब तो सरकार ने भी लिमिट कर दी है, चलिए अच्छा है एक तो कमाई-धमाई नहीं है, इसी बहाने कुछ पैसा तो बचेगा।"

हमारे पतिदेव भी बोलने से पहले एक बार भी नहीं सोचते, मिश्रा जी तो पहले से ही जले बैठे थे।

"कितना पैसा बचा ये तो लड़की वाले ही जानते हैं... जानते हैं जायसवाल जी...लड़के वाले भी कम नहीं है बोले... भाईसाहब तीन सौ बाराती की बात हुई, अब तो सरकार भी पाबंदी लगा दी है। बजट तो आपका पहले से ही तय था...ऐसा कीजिए अपनी बिटिया के नाम की एफ डी कर दीजिए।"

बिटिया की विदाई से पहले ही मिश्रा जी की आँखों से आँसू छलक आए। आख़िर ये कैसे रिश्तेदार थे जो रिश्ता जुड़ने से पहले ही मोलभाव कर रहे थे, मिश्रा जी का गुस्सा जायज़ था...पर हमारा ग़ुस्सा किसी को नहीं दिख रहा था।

मिश्रा जी की परेशानी बढ़ती ही जा रही थी। मिश्रा जी के फूफा जी फ़ोन पर ही बिफर पड़े...क्या अब बड़े-बूढ़ों के आशीर्वाद के बिना बहू-बेटियाँ विदा होगी... पर कर भी क्या सकते थे। रिश्तेदारों को कार्ड सबसे पहले चाहिए होता है पर काम की उम्मीद उनसे न करो। धेले भर का भी काम उनसे न होगा...और फुला-फुली अलग से। मिश्रा जी के लिए एक और समस्या शादी सर पर, कार्ड कैसे छापेंगे और छप भी गए तो बटेंगे कैसे... मिश्रा जी का लड़का थोड़ा-थोड़ा यो-यो टाइप था...घर के इस इकलौते कुल दीपक, चिराग़ का भी क्या कहना ...लंबे और बिखरे हुए बाल हफ़्तों से मैली टी शर्ट और बरमूडा लादे, जिनका नहाना, धोना, खाना, पीना सब सोशल नेटवर्किंग पर ही होता है। उनकी उँगलियों ने फटाफट एप्प डाऊनलोड किया और फटाफट कार्ड हाजिर...कोरोना काल ने सोशल नेटवर्किंग के नाज़ुक कंधों पर इतना बोझ लाद दिया कि पूछिये ही मत...मिश्राइन अपने नौनिहाल की बलाएँ लेती नहीं थक रही थी "देख लो जी बार-बार कहते रहते हो ये दिन भर लैपटॉप पर जोंक जैसा चिपका रहता है दे खो कितना पैसा बचा लिया आपका...आप तो बस।"

मिश्र जी का सीना भी गर्व से ३२ से ४२ इंच का हो जाता ...इस लॉक डाउन में कुछ कमाई -धमाई तो है नहीं चलो कुछ तो बचे। पर मिश्रा जी फिर से सोच में पड़ गए कि जिस देश में कार्ड भेज दिया तो किसके हाथ भेजा, स्टाफ आया था कि खुद...स्टाफ आया था तो डायलॉग ये कि नौकर-चाकर के हाथ भिजवाएँगे तब थोड़ी जाएँगे। खुद आये तो कितनी बार मनुहार किया और आने वाले ने ग़लती से अपनी व्यस्तता का रोना रो दिया तो दाँत निपोर कर कहेंगे... अरे घर की ही बात थी कार्ड-शार्ड की फ़ारमेलटी में क्यों पड़ गए...बस एक बार फ़ोन घुमा दिए होते। इन्हीं लोगों को सिर्फ फ़ोन कर दो तो कहते हैं दस दिन पहले एक बार फ़ोन करके सूचित तो किए थे...बिना कार्ड के भला कौन जाएगा।

अपने बाल-गोपाल द्वारा बनाये गए निमंत्रण पत्र को सो कॉल्ड मेहमानों को मिश्रा जी ने बड़े शान से चिपका दिया। सच पूछिए कभी-कभी बड़ी दया आती है जिन रिश्तेदारों की संख्या पचास और सौ के बाद आती थी...जीवन भर जो रिश्तेदार फूटी आँख न सुहाते थे उन्हें मजबूरी ही में ही सही निपटाने के चक्कर में ही पचास और सौ की संख्या तो चुटकियों में पार हो जाती है। अब इन्हें बुला भी लिया तो पहले कोरोना की जाँच कराओ... अगर ग़लती से एक-आध कोरोना पॉजिटिव निकल आये तो हो गई छुट्टी..सरकार खुद ही कन्फ्यूज़ हो गई है, रोज़ कोई न कोई एडवाइज़री जारी हो जाती है और दूसरे दिन अख़बारों में मोटी-मोटी लाइनों में लिखा होता है... सरकार के दिशा-निर्देश... शादी-विवाह में मेहमानों के भी होंगे कोविड टेस्ट।

सरकार तो सरकार लोगों का भी समझ नहीं आ रहा निमंत्रण पत्र पर कुछ ऐसा लिखते हैं कि पूछो ही मत ... श्रीमती एवं श्रीमान् प्रकाश चन्द्र, सपरिवार नोट-दो के बाद जितने भी आएँ, वो खुद ही देख लें...अरे भाई बुला रहे हो या डरा रहे हो। एक महाशय तो और भी समझदार निकले कार्ड के नीचे एक लाइन और भी चिपका दिए "स्टे होम, स्टे सेफ"...सुरक्षित तो हम पहले भी थे पर आप बुला रहे हो या मना कर रहे, पहले ये तो तय कर लो। शायद ऐसी ही ग़लतफ़हमी मिश्रा जी के घनिष्ठ मित्र को भी गई और उन्होंने अपने समस्या के निवारण के लिए मिश्रा जी को फ़ोन घुमा दिए, हम छत पर कपड़े सुखाने गए

थे ...मिश्रा जी किसी से ज़ोर-ज़ोर से बतिया रहे थे

"शुक्ला जी!!...बिटिया की शादी में आ रहे हैं न आप ?"

"भाई साहब!..आने को तो आ जाएँ पर आपका परिवार ही इतना लंबा-चौड़ा है, सौ तो ऐसे ही समा जाएँगे।"

सच बता रहे हैं लोग जेम्स बांड ००७ के भी अब्बा हो गए...क्या योजना बना रहे हैं। मिश्रा जी के चेहरे पर एक बार फिर से कुटिल मुस्कान खिल गई-

"भाईसाहब आप, बिल्कुल चिंता न करिए...सब इंतज़ाम हो गया ...पुलिस की चैकिंग बड़ी तगड़ी है पर हम भी कोई कम खिलाड़ी थोड़ी हैं। हमें भी डर और चिंता है कि बिटिया की डोली उठने से पहले पुलिस वाले हमें ही न उठा ले जाए।"

"आप ऐसा कीजिये भाभी जी और एक बच्चे को...पहले भेज दीजिएगा जब तक वो खा-पी कर निपटते हैं तब तक आप गाड़ी में बैठे रहियेगा...और जब भाभी जी बच्चे के साथ खाकर आ जाएँ, तब आप धावा बोल देना...प्रॉब्लम सॉल्व।"

सच बता रहे मिश्रा जी की योजना को सुनकर उनके चरण स्पर्श करने का मन कर गया। छत से उनका चेहरा तो नहीं दिख रहा था पर उनकी प्रकाशपुंज युक्त अलौकिक छवि आँखों के सामने से गुज़र गई। कोरोना के चक्कर में मिश्रा जी की अम्मा तो यही सोच-सोच दुबली हुई जा रही थी घर की पहली शादी है दुनिया भर के लोगों को आज तक व्यवहार दिए हैं ...जब अपने घर की शादी पड़ी, लोगों की व्यवहार लौटाने की बारी आई... तो किसी को बुला ही नहीं सकते।

खैर छोड़िए...हमें अभी तक मिश्रा जी की बिटिया की शादी का न्योता नहीं मिला था पर हमने भी उम्मीद नहीं छोड़ी थी। इतना मजबूर तो हम जीवन में कभी भी न हुए थे। गिनती का महत्त्व जीवन में इतना होगा सोचा न था।

आख़िर वो दिन भी आ ही गया ... मास्क पहने बराती ऐसे लग रहे थे... मानों वो बरात में नहीं गाँव लूटने आए हों। सच पूछिए तो मास्क भी एक टास्क बन कर रह गया है। बरातियों को थोड़ी-थोड़ी देर में सेनेटाइजर ऐसे दिया जा रहा था...जैसे सेनेटाइजर नहीं पंचामृत बाँटा जा रहा है। लोग ऐसे आगे बढ़-बढ़ कर हाथ आगे बढ़ाते हैं जैसे पुण्य की गठरी में एक और जुड़ने से न रह जाए। कुछ बराती तो ऐसे थे कि अपने वाले से एक बार फुच करके ही सेनेटाइजर प्रयोग करते पर मुफ्त में मिला तो फुच-फुच-फुच।

कोई काम बता दो तो रिश्तेदार कोरोना और दो गज़ दूरी का राग अलापने लगते पर जब मिलनी का वक्त आया तो स्पाइडर मैन की तरह भीड़ को चीरते हुए नक़ाबपोश जीजा और फूफा... "हम यहाँ हैं" कहकर अपनी उपस्थिति दर्ज कर दी। अब इतनी महँगाई में जब सोने का दाम आसमान छू रहा है वहाँ अँगूठी न सही ग्यारह-इक्कीस सौ का नकद पुरस्कार मेरा मतलब नकद व्यवहार मिल जाए तो क्या बुरा है।

पंडित जी पूरी तरह अस्त्र-शस्त्र से लैस थे...मुँह पर मास्क,हाथ में ग्लव्स और कुर्ते में सेनेटाइजरजिसे वो थोड़ी-थोड़ी देर में निकालते और जजमान से प्राप्त नकद धन राशि पर फुच-फुच कर छिड़कते और अपने कुर्ते में धीरे से सरका देते। पंडित जी की इस गतिविधि को देख एक शरारती तत्व ने एक प्रश्न उनकी तरफ उछाल दिया।

"पंडित जी!!...नोट में भी तो कोरोना वायरस हो सकता है ??"

लड़के की धृष्टता पर पंडित जी को क्रोध तो बहुत आ रहा था पर उन्होंने अपने क्रोध पर नियंत्रण करते हुए कहा..

"पुत्र... नोट जिस स्याही से छापी जाती है उसके सम्पर्क में आकर सारे कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और वैसे भी मैं अग्नि के निकट बैठा हूँ जहाँ सारे कुत्सित विचार क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं फिर इस तुच्छ कीटाणु की क्या बिसात।"

दो गज़ की दूरी एक बड़ी समस्या बन चुकी है। आख़िर आप ही बताइए...खाना परोसने के लिए मिश्रा जी दो गज़ का चम्मच, पोंना, कलछुल कहाँ से लाते। ये समस्या पूरी शादी में बनी रही...मिश्रा जी सबसे खाने के लिए मनुहार कर रहे थे। तभी मिश्रा जी के बेटे ने एक व्यक्ति की तरफ इशारा किया। मिश्रा जी सोच में पड़ गए ..ये तो बराती नहीं लग रहा क्योंकि बरात में तो सबने एक जैसी पगड़ी पहन रखी है पर इसने नहीं, आजकल तो कॉलेज भी बन्द है तो हॉस्टल वाले लड़के भी नहीं हो सकते फिर, जनाब मिश्रा जी की शादी में मास्क पहनकर बिन बुलाए मेहमान बनकर पहुँच गए थे। इमरती के स्टॉल के सामने खड़े वो तीन इमरती उड़ाने के बाद चौथी की तरफ हाथ बढ़ाने ही वाला थे कि मिश्रा जी ने पीछे से पकड़ लिया और बोले-

"हम तो लड़की वाले हैं और ये लड़के वाले, आप किसकी तरफ से हो ?"

जनाब बड़े बेशर्मी से बोले-

"मिश्रा जी... हम गिनती करने वाले हैं। शादी में काफी अच्छा इंतज़ाम किए हैं पर आपके शादी में पच्चीस लोग ज़्यादा हैं, चालान कटेगा, नहीं तो दूल्हा दुल्हन की पहली रात जेल में होगी। भई एक दिन तो गुज़ारिये हवालात में... ।"

मिश्रा जी को ए. सी.कमरे में भी पसीने आ गया, मिश्रा जी ने दूल्हे की कुर्सी पर बैठाकर बिटिया की अम्मा के हाथों से जनाब को खाना खिलवाया और फिर चलते-चलते ग्यारह सौ का लिफाफा दिया सो अलग।

मिश्रा जी अब कोई भी गड़बड़ नहीं होने देना चाहते थे। बिटिया के जयमाल के समय डंडियों के सहारे वर-वधू ने एक-दूसरे को माला पहनाई गई। दूल्हे मियाँ शायद तीरंदाज़ी के शौकीन थे ...माला एकदम टारगेट को छूते हुए बस निकलने ही वाली थी कि बड़ी अदा से दुल्हन ने सँभाल लिया बस समझो इज़्ज़त बच गई। वरना माला पड़ोस की गुप्ता जी के बेटी के गले मे पड़ जाती।

एक तो आजकल लड़कियाँ अपनी विदाई में वैसे भी नहीं रोती,ऊपर से सदरी वाले सज्जन पुरुष की बात का भी तो मान रखना था। बिटिया अपनी दादी से गले मिलने के लिए आगे बढ़ी ही थी कि मिश्रा जी ने डपट दिया...क्या ज़माना आ गया है। सच मानिए आजकल बस एक ही गाना याद आ रहा"ये दुनिया ये महफ़िल मेरे काम की नहीं!!"

000

पहली कहानी

मेरा नाम सुहानी है...

जुगेश कुमार गुप्ता

गाँव की घुमावदार गलियों से निकल कर नहर के रास्ते स्कूल पहुँचने की दूरी कुछ कम नहीं थी जिसे मैं हर रोज़ पैदल तय करती थी। बाल में तेल, चेहरे पर पाउडर लगाए, पॉलीथीन में कुछ किताबें, सीने से दबाए निकल जाती थी। हर सोमवार को गड़बड़ा धाम मंदिर जाती थी भगवान् से मन्नत माँगने, इसमें सहयोग करती थी मेरी सहेली बिंदू, जो इंदरवार से आती थी। घर पर सुबह से उठ कर पशुओं को सानी-पानी, गोबर, चूल्हा-बर्तन, खाना करते-करते स्कूल जाने का समय हो जाता था, इसके अलावा भी कई तरह के काम थे जो मुझे करने होते थे, शाम को भी इसी तरह की कई ज़िम्मेदारियाँ थीं, और हमको लगता था यही ज़िंदगी है। पढ़ती कब थी !आपको नहीं बता सकती। धान की रोपाई शुरू होने पर घर के सारे काम ख़त्म करके दिन भर मज़दूरों के साथ लगी रहती थी क्योंकि जितना तेज़ मैं काम करूँगी मज़दूर भी उतना ही तेज़ करेंगे। मज़दूर के नाम एक दो ही होते थे, बाकी मज़दूर तो घर के ही सदस्य हुआ करते थे, माँ की भी हालत यही थी। पढ़ाई के लिए भगवान् का बड़ा सहारा था। शादी के लिए हफ़्ते में एक बार बातचीत हो जाती थी। मैं भी और सहेलियों की तरह शादी के सपने देखती, लेकिन माँ कहती थी थोड़ा रुक जाइए, वो पढ़ने में ठीक है, रिज़ल्ट अगर ठीक आ गया, तो थोड़ा अच्छा रिश्ता मिल जाएगा और दहेज भी कम हो सकता है। लेकिन माँ का यह तरीका कब तक काम करता।

एक दिन गैहानी में शादी की बात पक्की हो गई। पिताजी जी ने बताया कि उनका दो कमरों का पक्का मकान है और दस बीघे खेत है, तीन लड़कों में ये सबसे छोटे हैं। मैं सोच- सोच के खुश होने लगी। दादा के घर से रेडियो में एक गीत सुनाई दे रहा था 'तेरी आँखों के सिवा दुनिया में रखा क्या है।' कोई भी मुझे देखता तो मुस्कराने लगता और मैं शर्मा के अपने रास्ते निकल जाती। भगवान् से हर वक्त बस यही प्रार्थना रहती थी कि इसी पक्के घर में मेरी शादी हो जाए क्योंकि पक्के घर में रहने की कल्पना बड़ी सुखद थी। रिज़ल्ट निकलते समय बहुत उदास थी, बस एक ही सहारा था अगर बिंदू फेल हो जाए तो मेरे फेल होने का दु:ख थोड़ा कम हो जाएगा। उस दिन इंटर का रिज़ल्ट आने वाला था, किसी को बहुत ज़्यादा उत्सुकता नहीं थी कि मैं पास होऊँ या फेल क्योंकि इंटर पास करने के बाद भी सँभालना तो घर ही था।

उन दिनों मोबाइल पर एसएमएस के माध्यम से रिज़ल्ट आता था। गाँव में एक लड़का था जो इस तरह के तकनीकी कामों में रुचि लेता था। हमारे गाँव में प्रेम बस देखा-देखी तक सीमित था, वह भी कभी रास्ते में, स्कूल में या मेले में। शहर की तरह हाथ में हाथ डाल कर चलने को तो

जुगेश कुमार गुप्ता
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
(शोधार्थी–आधुनिक हिन्दी रंगमंच एवं राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय)
मोबाइल : 9369242041
ईमेल : zugeshtheartist@gmail.com

हम चोचलेबाज़ी समझते थे। मुझे बहुत बुरा लगता था। मैंने जिस काग़ज़ पर अपना रोल नंबर लिख कर दिया था, उसने बड़े जतन से उसे अपने पास रखा था। मुझसे ज़्यादा उसे फिकर थी मेरे रिज़ल्ट की। रिज़ल्ट आया और मैं पास हो गई। एकदम प्रथम श्रेणी, न एक नंबर ज़्यादा न एक नंबर कम। गाँव में शोर हो गया कि दुलारे की बिटिया फर्स्ट डिवीज़न में पास हुई है। प्रथम श्रेणी अब तक गाँव में किसी लड़के का नहीं आया था। कुछ देर बाद बिंदू का फ़ोन आया। उसने बड़े उत्साह से बताया कि मैं सेकंड डिवीजन पास हुई हूँ मेरे घर में कोई आज तक इंटर नहीं पास हुआ था। अपना बताने के बाद मेरा पूछा कि तुम्हारा क्या हुआ? उसे मेरे रिज़ल्ट पर यक़ीन नहीं हो रहा था उसमें कुछ जातिगत द्वेष की भावनाएँ उभर आईं। ऐसा कई बार सुनने को मिलता था कि फलाने का लड़का नीच जाति का होकर भी कितना तेज़ है और एक ये हैं कि सब सुविधा होने के बाद भी नाक कटा दिए। सारा श्रेय भगवान् को गया और तुरन्त माँ से कुछ पैसे लेकर निकली, रास्ते में पड़ने वाली नदी में हाथ-मुँह धोते हुए सीधे मंदिर गई, उस दिन से बिंदू से मेरा रिश्ता कम हो गया और मुझे अकेले जाना पड़ा था।

गाँव से शहर इलाहाबाद पढ़ने आने वाले राजेश गुप्ता पहले लड़के थे, जब भी गाँव जाते तो सब उनकी बात बड़े ग़ौर से सुनते, पढ़ाई- लिखाई और इसके महत्त्व की खूब बातें करते थे, ऐसा लगता था जैसे कोई दूसरी दुनिया का आदमी यह सब बता रहा है। लोग बड़े चाव से सुनते थे वैसे ही भूल भी जाते थे, उनको लगता था इससे हमारा क्या मतलब है, हमको तो चलाना हल ही है। मेरा रिज़ल्ट अच्छा आया था इसलिए उनके कहने पर यूनिवर्सिटी का फॉर्म भर दिया गया। उस साल कुछ देर से फॉर्म निकला जो मेरे लिए वरदान बन गया नहीं तो बिना रिज़ल्ट देखे कोई मुझे आँक ही नहीं पाता कि मेरा यूनिवर्सिटी के लिए फॉर्म भी भरना है, क्योंकि माँ को लगता था कि पढ़ने में ठीक है हो सकता है पास हो जाए। माँ का यही लगना मेरे जीवन में बहुत कुछ कर गया।

दहेज के लिए शादी टूट गई और यूनिवर्सिटी का रिज़ल्ट आया मैं पास हो गई। घर के लोगों के लिए दो तरह के दु:ख आ गए, पहली शादी का टूटना और दूसरा अकेली लड़की को घर से बाहर भेजना। यूनिवर्सिटी में दाखिले के बाद रेज़ीडेंसी हॉस्टल मिला। मुझे तो यकीन नहीं हो रहा था कि मुझे रहने के लिए अकेले एक कमरा मिला है।

यहाँ आने के बाद मैंने अपने लिए मंदिर ढूँढ़ ही लिया। बड़ी झिझक थी जब पहली बार रोशनी के साथ यूनिवर्सिटी गई, रोशनी मेरे बगल के कमरे में रहती थी जो आरा, बिहार से आई थी। यह भी यक़ीन करना मेरे लिए मुश्किल हो रहा था कि जितना बड़ा मेरा इंटर कॉलेज का स्कूल उतना बड़ा यहाँ का एक विभाग।

एक दिन जब लाइब्रेरी गई तो आँखें खुली रह गई। इतनी किताबें, उसे पढ़ने के लिए सभी के लिए एक- एक मेज़ और कुर्सी। यहाँ की सारी किताबें मुफ़्त में पढ़ने के लिए थी। वैसे पढ़ने की रुचि तो मेरी ऐसी थी कि मेले में मिलने वाली किताबें भी खूब पढ़ी थी सहेलियों से लेकर यहाँ तो सब मुफ्त था।

तीसरे दिन हिन्दी विभाग के सामने कोई संगठन गोष्ठी कर रहा था मेरे लिए यह भी आश्चर्य से भरा हुआ था। उनके स्टॉल पर कुछ किताबें थीं जिसके बारे में वे बता रहे थे वह बहुत ही दिलचस्प हैं, मैंने सोचा लाइब्रेरी में मिल जाएँगी इसलिए मैंने नहीं ली और लेती भी कैसे, पैसे का अपना हिसाब होता था जो बना के रखना पड़ता था। दूसरे दिन लाइब्रेरी पहुँच कर बहुत ढूँढ़ी लेकिन मिला नहीं, निराश होकर लौट आई। शाम को रोशनी ने मुझे कुछ किताबें दिखाई जो वही थी, वह किताब पढ़ने की मेरी खास दिलचस्पी यही थी कि आज तक किसी ने ऐसे नहीं बताया था कि किताब पढ़ने से ज़िंदगी भी बदल जाती है। आपको याद होगी वह कहानी जिसमें एक वैज्ञानिक को बीच चौराहे पर इसलिए ज़िंदा जला दिया गया था क्योंकि उसने यह साबित करने की कोशिश की, कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी उसका चक्कर लगाती है। जबकि वहाँ के पादरियों का कहना था कि जिस पर हम रहते हैं उससे बड़ा कुछ नहीं हो सकता, सारे ग्रह और तारे पृथ्वी का चक्कर लगाते हैं। उसमें कई ऐसी बातें थीं जिसके आधार पर मेरे अंदर बदलाव स्वाभाविक था, उसी के साथ दो किताबें और थीं, ज्योतिबा राव फुले की जीवनी और भगत सिंह की किताब मैं नास्तिक क्यों हूँ? इसके बाद तो किताबें पढ़ने का सिलसिला निकल पड़ा, और यूनिवर्सिटी की लाइब्रेरी में ही दोपहर की झपकी हो जाया करती थी। मैं जिस घर से थी उसके हिसाब से फुटपाथ की किताबें बड़ी कारगर हुई। फुटपाथ की किताबें ऐसी होती हैं जो ख़ुद फुटपाथ की होती हैं लेकिन आपको फुटपाथ से उठा कर मुकाम पर स्थापित कर देती हैं, जो यूनिवर्सिटी रोड पर बड़े सस्ते दामों में मिल जाती हैं। यूनिवर्सिटी में पढ़ते हुए सात साल हो गए, जितना घर, गाँव, गली, मोहल्ला छोड़ने का दु:ख हुआ था वही भाव यूनिवर्सिटी के लिए अब लगता है।

कल रात को स्कूटी से लौट रही थी तो रास्ते में देखा एक पिता अपनी बेटी को डॉटर्स डे पर मंदिर ले कर गए थे, बस मन में ऐसे ही ख़याल आ गया कि बेटी को मंदिर ले जाने से बेहतर होगा उसे विश्वविद्यालय ले जाइए, उसे लाइब्रेरी दिखाइए, शायद उसकी माँ यह बात पूरे आत्मविश्वास के साथ बोल सके कि 'पढ़ने में ठीक है' शायद...

अपना नाम तो बताया नहीं, मेरा नाम सुहानी है...

000

मन के कैमरे में कैद बीजिंग (चीन)

शशि पाधा

सब से पहले 'चीन' शब्द से मेरा परिचय शायद दूसरी-तीसरी कक्षा में हुआ था। भूगोल पढ़ते हुए अध्यापिका ने हमें बताया था कि चीन हमारा पड़ोसी देश है। इसके बाद वर्ष १९५४ में हमें स्कूल में पंचशील सिद्धांतों के विषय में पढ़ाया भी गया। चीन के विषय में पढ़ते-पढ़ते एक और महत्त्वपूर्ण पूर्ण मोड़ आया जब तिब्बत के धार्मिक गुरु दलाई लामा ने अपने अस्सी हज़ार शरणार्थियों के साथ तिब्बत से पलायन करके भारत में शरण ली। बालमन होते हुए भी बहुत बुरा लगा था कि कैसे किसी को अपना घर, अपना देश छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। फिर एक और अप्रत्याशित घटना घटी। वर्ष १९६२ में चीन ने एतिहासिक पंचशील समझौते का उल्लंघन किया और भारत की सीमाओं पर युद्ध छेड़ दिया। मेरे छोटे से जीवन का यह पहला युद्ध था। तब यह पता नहीं था कि भारतीय सेना और सैनिकों के साथ मेरा जन्म-जन्म का नाता बन जाएगा। हैरानी की बात यह है कि जब मेरा विवाह तय हो रहा था तो उस समय मेरे होने वाले पति भी भारत-चीन सीमा पर शूगर सेक्टर स्थान पर तैनात थे। इस तरह १८-१९ आयु में ही चीन देश से मेरा अच्छा-बुरा कोई न कोई संबंध बना ही रहा।

जब मेरे बेटे ने कहा कि इस बार 'थैंक्स गिविंग' (Thanks Giving) की छुट्टियों में बीजिंग और शंघाई जाने का कार्यक्रम बनाया है तो मेरा यायावरी स्वभाव प्रसन्न हो गया। मैंने बिना कुछ सोचे 'हाँ' कर दी और शुरू हो गई हमारे पड़ोसी देश की यात्रा की तैयारी। २३ नबम्बर की सुबह हमने सपरिवार वर्जीनिया राज्य के 'डलस' हवाई अड्डे से बीजिंग की यात्रा आरम्भ की। १४ घंटे की हवाई यात्रा में मैं कितनी बार बचपन की उन सुधियों में खो गई। कभी मुझे दलाई लामा और सभी तिब्बती शरणार्थियों के साथ सहानुभूति हुई। कभी भारत-चीन युद्ध के उन भयावाह समाचारों ने विचलित किया और कभी चीन की दीवार को अपनी आँख से देखने की उत्सुकता ने घेर लिया।

लम्बी हवाई यात्रा के बाद जब हम बीजिंग पहुँचे तो वहाँ रविवार के दो बजे थे। अत: जब बीजिंग पहुँचे तो हमें घर से निकले २७ घंटे हो गए थे। फिर भी नई जगह और प्राचीन संस्कृति को आँखों से देखने-परखने के लिए उत्साह और उत्सुकता की कोई कमी नहीं थी। सारी थकावट और आलस्य को परे धकेल कर हम सब ने बीजिंग की शाम का आनन्द लेने के निर्णय लिया।

शशि पाधा
10804, Sunset Hills Rd, Reston, Virginia, US-20190
मोबाइल : 203-589 -6668
ईमेल : shashipadha@gmail.com

लेकिन होटल से निकलते ही एक बहुत ही जटिल परिस्थिति से जूझना पड़ा। होटल से बाहर कोई भी अंग्रेज़ी भाषा बोल या समझ ही नहीं सकता था। यानी वहाँ के ९९ प्रतिशत लोग केवल 'मन्दारिन' भाषा ही जानते थे। वो कहते हैं न -जहाँ चाह-वहाँ राह। हमने भी इस बाधा को पार करने का सरल रास्ता ढूँढ़ लिया। अपने फ़ोन पर जाने से पहले ही google transliteration की ऐप भर दी थी। जितने दिन हम वहाँ रहे, मोबाइल की इसी ऐप के सहारे ही अपनी बात लोगों तक पहुँचा सके।

हमारे पास अब दिन का थोड़ा ही समय बचा था। थोड़ा आराम करके हमने होटल से बाहर जाकर घूमने की निर्णय लिया। तब तक वहाँ रात होने लगी थी और तापमान गिरने लगा था। सड़क पर चलते हुए हवा के बर्फ़ीले थपेड़े हमें पीछे धकेल रहे थे। आस–पास के बाज़ार भारत के किसी शहर के बाज़ार की तरह ही थे। बाज़ार में लोग पश्चिमी परिधान में ही दिखाई दिए। दूकानों के साइनबोर्ड केवल चीनी भाषा में ही थे। सड़क के दोनों ओर ठंड को धता बताते हुए लोग रविवार की शाम का आनन्द ले रहे थे। स्थान-स्थान पर गर्म-गर्म भुने भुट्टे और लम्बी डंडियों पर चाकलेट में लिपटी स्ट्राबेरी बिक रही थी। चलते-चलते एक स्थान पर होते हुए सामूहिक नृत्य को देख कर हम रुक गए। एक पौराणिक चर्च के बाहर खुले प्रांगण में अधेड़ अवस्था की चीनी स्त्रियाँ और पुरुष कुछ गा रहे थे और धीमे धीमे नृत्य भी कर रहे थे। उन सब ने एक जैसी, एक जैसे रंगों की पारम्पारिक पोशाक पहन रखी थी। एक ही लय, सुर और थिरकन देख कर हम मंत्र मुग्ध हो कर वहीं खड़े रहे। यह कोई उत्सव की तैयारी थी या विवाह का का उत्सव, किससे पूछते। हमारी इस उत्सुकता का समाधान अगले दिन हमारे गाइड ने कर दिया। उसने बताया कि चीन संस्कृति की यह पुरानी प्रथा है। शाम के समय अधेड़ आयु के पुरुष और स्त्रियाँ घर से निकल कर किसी चौराहे या खुले प्रांगण में एकत्रित हो जाते हैं। सब मिल कर सामूहिक नृत्य करते हैं। इसके दो लाभ होते हैं। एक तो इनका मनोरंजन होता

है और दूसरा व्यायाम भी हो जाता है। साथ ही आपस में मिलना-जुलना भी हो जाता है। ख़ैर, हमने बीजिंग में पहली शाम को वहाँ के सजे हुए बाज़ार, दुकानें और सामूहिक नृत्य देख कर इस देश से दोस्ती करनी शुरू कर दी। रात बहुत ठंडी हो रही थी। जैकेट, दस्ताने, टोपियाँ हमारे कवच तो थे किन्तु ठंड से युद्ध करने का उत्साह भी ठंडा हो रहा था। आने वाला दिन बहुत लम्बा था। इसलिए आराम करने के लिए हम जल्दी ही होटल वापिस लौट गए।

अगला दिन चीन के मुख्य पर्यटन केंद्र 'समर पैलेस' और 'चीन की दीवार' देखने के लिए निश्चित किया गया था। सौभाग्य से आज सूरज देवता भी प्रसन्नचित थे और हम सब पर उनका गुनगुना वरद हस्त था। फिर भी ऊनी टोपी, दस्ताने, लम्बा कोट पहनना ज़रूरी था। पहले दिन बीजिंग के बाज़ारों में घूमते हुए हमारी पहचान एक अच्छी अंग्रेज़ी बोलने वाले गाइड से हो गई थी। उसके निर्देश पर हम सब सुबह ८:३० के समय होटल से निकल गए थे।

हमारे हँसमुख, युवा गाइड का नाम 'गेलन' था। वैन में बैठते ही उसने हमें आस-पास की महत्त्वपूर्ण इमारतों के विषय में बताना शुरू कर दिया। हमारा पहला स्टॉप समर पैलेस था जो हमारे होटल से लगभग १५ किलोमीटर दूर था। मेरे मन में बहुत से प्रश्न थे और गेलन इनके उत्तर देने के लिए तैयार था। उसने स्वयं ही हमें बताया कि चीन में बहुत कम लोग अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान रखते हैं। अब वहाँ के स्कूलों में कक्षा छह से अंग्रेज़ी पढ़ाई जाने लगी है। लेकिन बोलने की आदत बहुत कम लोगों को है। मुझे याद आया कि भारत में तो हर बड़ी नदी या पहाड़ के बाद भाषा बदल जाती है। मैंने उत्सुकता वश उससे यही सवाल पूछा कि क्या सभी लोग एक ही भाषा बोलते हैं।

उसका उत्तर था - नहीं, हमारे यहाँ लगभग ५५ प्रतिशत अल्प संख्यक लोग हैं, हरेक की अपनी लोकल भाषा और पहनावा है। हाँ सरकारी कामकाज में एक ही भाषा का प्रयोग होता है।

सफर के बीच-बीच गेलन बता रहा था कि बीजिंग में वर्ष २००८ में ओलम्पिक्स खेलों का आयोजन हुआ था। रास्ते में हमारी दाईं ओर बीजिंग का भव्य नेशनल स्टेडियम दिखाई दे रहा था। ओलम्पिक खेलों के आयोजन के कारण बीजिंग की कुछ दुकानों और इमारतों पर अंग्रेज़ी के साइन बोर्ड भी लगे थे। तब से लेकर अब तक धीरे-धीरे अब बहुत जगह अंग्रेज़ी के साइन बोर्ड भी दिखाई देते है लेकिन बहुत कम। शायद अपनी भाषा को बचाने के लिए ही ऐसा किया गया हो।

बचपन में इतिहास पढ़ते हुए बौद्ध धर्म के विद्वान और प्रचारक ह्यूँ संग Hiuentsang और फाहियान के विषय में पढ़ा था। बौद्ध धर्म आज से २००० वर्ष पूर्व चीन में अपनी जड़ें जमा चुका था। ह्यून संग और फाहियान दोनों बौद्ध धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिए भारत आए थे। ह्युं संग जो कि २० वर्ष की आयु में छिप-छिप कर ६२७ AD में भारत आया था और उसने पाँच वर्ष तक नालंदा विश्वविद्यालय में भिक्षु बन कर बौद्ध धर्म की शिक्षा ग्रहण की थी। इसी उत्सुकता के वशीभूत मैंने गेलन से पूछा, "चीन वासियों में कौन सा धर्म अधिकतम प्रचलित है ?

उसका संक्षिप्त उत्तर था, "कोई भी नहीं। यहाँ के लगभग ९० प्रतिशत लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं लेकिन अपने रोज़ के जीवन में किसी भी धर्म के सिद्धांतों को अपनाते नहीं है। इसके साथ ही इस्लाम और क्रिश्चियन धर्म का पालन करने वाले भी कुछ लोग हैं। चीन में भले धार्मिक आज़ादी मिली हुई है लेकिन वहाँ

धार्मिक गतिविधियों को स्वतंत्र होकर अंजाम नहीं दिया जा सकता है।" उसका उत्तर सुन कर मैं थोड़ी विचलित भी हुई क्योंकि मेरा यही विश्वास है कि धार्मिक आस्थाएँ किसी भी जाति या देश की संस्कृति को बचाए रखती हैं।

अब तक हम बीजिंग के महत्त्वपूर्ण पर्यटन स्थल 'समर पैलेस' के प्रवेश द्वार पर पहुँच गए थे। समर पैलेस बीजिंग शहर के सबसे बड़े महलों में से एक है। महल सम्राटों के लिए गर्मी के मौसम के गर्म दिनों का आनंद लेने के लिए निवास के रूप में बनाया गया था। समर पैलेस बीजिंग में झीलों, उद्यानों और महलों का एक विशाल समूह है। प्रवेश द्वार से महलों तक पहुँचने तक एक लंबा गलियारा है जिसके दोनों ओर सुंदर वृक्ष लगे हुए थे। साथ ही कुनमिंग झील का मोहक दृश्य भी मनमोह रहा था। कितने महल, प्रांगण या रनवासे थे, इसकी गिनती भी नहीं कर सकते थे। हर महल दूसरे से भिन्न था। लेकिन एक विशेष बात जो मुझे आकर्षित कर रही थी कि हर महल के दरवाज़ों, खिड़कियों के रंग एक से थे यानी हरा, लाल और पीला। यही रंग हमने बीजिंग शहर की कुछ दूकानों और पुराने भवनों पर भी देखा। इन रंगों का और लकड़ी पर कढ़े बेलबूटों की कारीगरी का सौन्दर्य अनूठा था। कुछ ऐसी ही वास्तुकला का नमूना मैंने भूटान में भी देखा था। कुछ - कुछ समझ में आ रहा था कि जब बौद्ध धर्म भारत से यहाँ आया होगा तो आने वाले यात्री भारत की वास्तुकला भी अपने साथ ले आए होंगे। क्योंकि यही रंग और यही कारीगरी मैंने दलाई लामा के स्थाई निवास स्थान और बौद्ध मंदिर हिमाचल के 'धर्मशाला' नगर में भी देखी है।

आपके साथ एक रोचक अनुभव साझा करते हुए मुझे आनन्द का अनुभव हो रहा है। समर पैलेस में स्थान-स्थान पर बाग़-बग़ीचे थे और पेड़ों के नीचे लोगों के बैठने के लिए बैंच भी लगे हुए थे। स्थान स्थान पर लोग टोलियों में बैठे ताश और शतरंज खेल रहे थे। मेरे चेहरे पर उत्सुकता के भाव देख कर गेलन ने बताया कि यह सब रिटायर्ड लोग हैं और समय बिताने के लिए और दोस्तों से मिलने के लिए ये सब यहाँ आ जाते हैं और इन खेलों से

अपना मनोरंजन करते हैं। मुझे याद आया किसी भारतीय गाँव की चौपाल और वहाँ बैठे अधेड़ उम्र के ताश खेलते हुए लोग। मैं सोच रही थी –कितने पर्वतों के उस पार भारत है लेकिन मनोरंजन के यह साधन बिलकुल एक जैसे।

समर पैलेस की वास्तुकला के सौंदर्य का एक विशेष आकर्षण था - कुनमिंग झील के किनारे खड़ी संगमर्मरी नाव। दो छत्तों वाली इस नाव पर अर्ध गोलाकार आर्क के रूप में बहुत से खुले झरोखे थे। गाइड ने बताया था कि राजा और रानी अपने राज परिवार के साथ इस नाव में बैठ कर झील की सैर करते थे। झील के बीचों-बीच बने मंदिर में मनोरंजन के कार्यक्रम आयोजित होते थे। इस आलौकिक सौन्दर्य को छोड़ कर कहीं और जाने का मन तो नहीं था लेकिन अभी बहुत कुछ देखने को बाकी था।

हमारा अगला पड़ाव था चीन की विशाल दीवार। अब तक दोपहर बीत चुकी थी। लगभग आधे घंटे के सफ़र के बाद हम चीन की दीवार के उस स्थान पर पहुँच गए जहाँ से ऊपर पहाड़ी तक जाने का रास्ता शुरू होता था। सामने की पहाड़ी पर हमें विशालकाय दीवार दिखाई दे रही थी और लगता था कि वहाँ तक पहुँचना बड़ा दुरूह होगा। लेकिन, जहाँ चाह-वहाँ राह। हमारे गाइड ने हमें Cable Car की सुविधा लेने की सलाह दी। हम सब दो-दो जन केबल कार में बैठ गए और मिनटों में पहाड़ी के बीचों-बीच उस स्थान पर पहुँच गए जहाँ से हम अपने तीनों तरफ़ इस विशालकाय दीवार को देख सकें। वहाँ खड़े हुए सबसे पहले तो आँखों को विश्वास नहीं हुआ कि कभी मनुष्य के हाथों से यह पत्थर और मिट्टी की ऐसी दीवार बनी होगी। दूर-दूर तक कई पहाड़ियों को काटती हुई, कई ऊँचे-नीचे रास्ते बनाती हुई यह दीवार तो मुझे उस ज़िद्दी, अल्हड़ पहाड़ी युवती के समान दिखाई दी जो किसी बंधन में नहीं बँधने वाली थी। जो अपनी मर्ज़ी से पहाड़ों पर घूम-घूम कर अपना शक्तिशाली अस्तित्व स्थापित करने वाली थी। जो आसमान को छू कर गा रही थी -मैं अजय हूँ। मेरा कोई आदि नहीं, कोई अंत नहीं। मेरा कवि मन वहाँ उस दीवार में किसी आदिशक्ति को देख रहा था। मेरे लिए यह मुख्य बात नहीं थी कि यह निर्जीव दीवार थी। मेरे लिए यह स्त्री शक्ति का प्रतीक थी। मैं वहाँ खड़ी उसके हर रूप को अपनी आँखों में बंद कर लेना चाहती थी। शायद मैं उस शाम बहुत भावुक हो गई थी।

गाइड बता रहा था, "मिट्टी और पत्थर से बनी एक क़िलेनुमा चीन की यह महान् दीवार २,३०० से अधिक साल पुरानी है। यह दीवार दुनिया के सात अजूबों में गिनी जाती है। चीन के पूर्व सम्राट किन शी हुआँग की कल्पना के बाद दीवार बनाने में करीब २००० साल लगे। इस दीवार का निर्माण किसी एक सम्राट द्वारा नहीं किया गया बल्कि कई सम्राटों और राजाओं द्वारा कराया गया था। इस दीवार की लंबाई ६४०० किमी. है, ये दुनिया में इंसानों की बनाई सबसे बड़ी संरचना है।

सूर्य ढल रहा था और हमारे पास समय बहुत कम था। फिर भी हमने इस अजेय दीवार पर चलने का निर्णय लिया। दीवार तो वैसी ही थी जैसे भारत में किसी विशाल किले की दीवार हो लेकिन यह समतल नहीं थी, कहीं तो ढलान थी और कहीं ऊँचाई। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर सैनिकों के लिए कमरेनुमा बंकर बने हुए थे जिनमें युद्ध के समय शस्त्रों को चलाने के लिए छोटे-छोटे झरोखे थे। मैंने वहाँ खड़े हज़ारों सैनिकों को चलते हुए, भागते हुए, शस्त्र चलाते हुए अपनी मन की आँख से देख लिया। गाइड गेलन ने बताया कि इस चीनी

दीवार को देश की रक्षा के लिए बनाया गया था लेकिन यह दीवार अजेय न रह सकी; क्योंकि चंगेज खान ने १२११ में इसे तोड़ा और पार कर चीन पर हमला किया था। हमने भी इस विशाल दीवार के कुछ भागों को कैमरे में कैद कर लिया।

उस समय सूर्य भी पहाड़ी से उतर कर पश्चिम की ओर जा रहा था। हम सब भी इस दीवार की मधुर स्मृतियाँ सँजो कर अपने होटल लौट आए थे।

फोर्बिड्डन सिटी

बीजिंग शहर के ठीक मध्य में मिंग राजाओं का महल है; जिन्हें दुनिया में 'फोर्बिड्डन सिटी' नाम से जाना जाता है। मन में बहुत उत्सुकता थी कि इसे यह नाम क्यूँ दिया गया। हमारे गाइड ने यही बताया कि यह केवल राजकीय निवास स्थान था, इसके आस-पास आमजन का आना वर्जित था। इसीलिए यह इसी नाम से जाना जाता है। अंदर जाकर पता चला कि यह राजमहल नहीं कई सामूहिक महलों की एक नगरी थी। यहाँ लगभग ९० महल थे और इन महलों के आस-पास कर्मचारियों और अधिकारियों के रहने के लिए ९८० अन्य भवन थे।

इस विशाल नगरी को देखने के लिए सैंकड़ों यात्री आए हुए थे। ऐसा लग रहा था जैसे कोई बड़ा सा मेला लगा हो Forbidden City के अनगिन महलों में एक समानता थी – उनके दरवाज़े और छतों का रंग समान था। महलों की दीवारें, स्तम्भ, दरवाज़े और झरोखे सब लाल रंग के थे और छत पीले रंग की थी। चीन में लाल रंग प्रसन्नता और सौभाग्य का चिह्न माना जाता है। महलों की छत का पीला रंग राजाओं की सर्वोच्च शक्ति का प्रतीक था और केवल राज परिवार ही पीले रंग की छत बना सकते थे। बाकी जनता के लिए यह रंग वर्जित था। महलों के अंत में जब हम सब से ऊँचे महल तक पहुँचे तो लगा जैसे पीले रंग का सोना बिखरा हो। यह दृश्य आँखों में समा सा गया।

Forbidden City के महलों की एक विशेषता और भी थी। हर महल के प्रांगण में सिंह युगल स्थापित थे। चीन संस्कृति के

अनुसार शेर शक्ति और बल का प्रतीक है इसीलिए इसे द्वार पर रक्षक के रूप में स्थापित किया जाता था। हमने हर स्थान पर देखा कि मादा शेर के पंजों में एक छोटा सा शेर का बच्चा बनाया गया था और नर शेर के पंजों में एक गेंद दबी हुई थी। बच्चा और माँ मातृ शक्ति का प्रतीक था और नर शेर के पंजों में गोल गेंद चीन राजाओं की विश्व में प्रभुता का प्रतीक थी। इन महलों के आस-पास कई बाग़ बग़ीचे थे। महलों के चित्र लेते हुए एक बहुत ही मज़ेदार बात हुई। हमने किसी चीनी युवा को अपने परिवार की फ़ोटो लेने को कहा तो वो बड़ी खुशी से तैयार हो गया। जैसे ही मेरे बेटे ने उसका धन्यवाद किया उसने अपनी टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में मेरे बेटे से कहा, "मेरे वृद्ध पिता आज तक किसी विदेशी से नहीं मिले हैं। उन्हें थोड़ा बहुत भारत देश का पता है। वे पहली बार अपने पहाड़ी गाँव से बीजिंग शहर घूमने के लिए आए हैं। क्या आप सब उनके साथ एक फ़ोटो खिंचवा सकते हो और कुछ बातें कर सकते हो ? उन्हें खुशी होगी।"

सुन कर हैरानी हुई लेकिन सच तो यह था कि हम उस देश में विदेशी सैलानी थे और भारतीय भी थे। मेरे बेटे ने सहर्ष स्वयं उन वृद्ध के पास जाकर उनसे बात की और उनके बेटे ने खूब सी तस्वीरें ली। इतना घूमने के बाद हमारे भोजन का समय हो चला था लेकिन हमारी पसंद का भोजन मिलना कोई आसान काम नहीं था। चीनी लोग मांसाहारी हैं, यानी कुछ भी खा सकते हैं। फिर भी हमने एक रेस्तराँ ढूँढ़ा जहाँ चावल और टोफ्फू (सोया पनीर) ही के मिलने की संभावना थी। बस समझिए कि गुज़ारा हो गया। चीन के लोग केवल गर्म पानी पीते हैं और खाने के साथ गर्म चाय भी परोसते हैं। हमने बड़े चाव से गर्म चाय पी और निकल पड़े अगले पड़ाव के लिए।

हुटोंग-चीन की पुरानी बस्तियाँ

'Forbidden City' से बाहर सड़कों पर चलते हुए अचानक कुछ पुराने किस्म की गलियों ने मेरा ध्यान आकर्षित किया। बाज़ार के दोनों ओर आधुनिक दूकानें थीं लेकिन बीच-बीच में सँकरी गलियाँ दिखाई दी जिनमें झाँक कर देखने से जो दृश्य देखा उससे बहुत अचम्भा हुआ। थोड़ा सा अंदर झाँकने के बाद देखा कि इन गलियों में छोटे-छोटे घर हैं। 'घर' यानी एक कमरा होगा। कुछ लोगों ने अपने दरवाज़े के सामने फूलों के गमले भी रखे थे। कहीं-कहीं कोई साइकल भी खड़ी थी। इन घरों में केवल एक दरवाज़ा था, कहीं कोई खिड़की तो दिखाई नहीं दे रही थी। मन में बहुत उत्सुकता हुई कि किसी से पूछें कि इतने भव्य महलों के ठीक आस-पास यह कौन सी बस्तियाँ हैं ? गाइड से पूछने पर पता चला कि इन बस्तियों को 'हुटोंग' कहा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि अगर किसी को चीन की पुरानी सभ्यता- संस्कृति, रहन-सहन और खान –पान के तरीकों से पहचान करनी है तो यह खज़ाना चीन की सँकरी गलियों में मिल सकता है। गाइड के अनुसार -प्राचीन काल से ही चीन के शासकों ने अपने शहर की बसावट नागरिकों की सामाजिक हैसियत के अनुसार की।

सम्राट तथा शासक वर्ग शहर के बीचों-बीच रहते थे। उनके इर्द-गिर्द के घेरे में उच्चाधिकारी व समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त नागरिक रहते थे। यह समूचा हिस्सा इनर सिटी कहलाता था। सामन्त तथा धनपति शासक वर्ग के महलों के पूर्व व पश्चिम में रहते थे तथा इनके मकान अत्यन्त भव्य होते थे। इनर सिटी से दूर, शहर के बाहरी घेरे जिसे आउटर सिटी कहा जाता था में साधारण नागरिक, व्यापारी, कारीगर व श्रमिक रहते थे। इनके

मकान एकदम सादे डिज़ाइन के व साधारण होते थे। इनके बाद हुटोंग होते थे जो अत्यन्त संकड़ी गलियों में एकदम सटे हुए निर्धनतम लोगों के आवास होते थे। वक्त गुज़रता गया, शहरों का विकास होता गया, आधुनिक बस्तियाँ शहर के बाहरी हिस्सों में बसती गईं, इनर सिटी खण्डहर बनती गई और हुटोंग की हालत बद से बदतर होती गई। फोर्बिडन सिटी के भव्य महल देखने के बाद निर्धनता का यह नमूना देख कर मन थोड़ा दुखी हुआ। मन एक बार फिर मुड़ गया भारत के स्लम्स के इलाकों की ओर। हम सब ने मुम्बई और दिल्ली में अमीरी और ग़रीबी का यह अनोखा रिश्ता तो देखा ही है। खैर, हुटोंग की सँकरी गलियों से निकल हम एक बार फिर से वैभव और उन्नति का परचम लहराती चौड़ी सड़कों की ओर चल पड़े जहाँ खूब चहल-पहल थी।

चीन का थियानमन चौक

बीजिंग नगर का तियानमेन चौक चीनी इतिहास की कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं का स्थल है। यह चौक वर्ष १०८९ के वीभत्स नरसंहार के लिए भी पूरे विश्व में जाना जाता है। विश्व के दस विशाल चौकों में अपना स्थान बनाने वाले इस चौक में सैनिकों ने हज़ारों प्रदर्शनकारियों पर टैंक आदि से प्रहार करके उनका दमन करने का प्रयत्न किया था। लेकिन इस चौक का सांस्कृतिक महत्त्व भी है। इसके आस-पास चीन के कई नायकों के स्मारक, चीन का राष्ट्रीय संग्रहालय और माओत्से तुंग की समाधि भी है। समाधि में जाने के लिए लंबी कतारें थी। दो जगह पर तो हमारी तलाशी ली गई। समाधि हाल ताज़ा फूलों से सजी थी। मुख्य द्वार से लेकर अंदर तक सेना के जवान सैनिक वेशभूषा चुपचाप मौन खड़े थे। केवल उनकी आँखें ही सतर्क थीं या हिल रही थी। हाल के बीचों -बीच माओत्से तुंग का निर्जीव शरीर एक बड़ी सी संगमरमर की चौकी पर शीशे के केस में रखा हुआ था। पूरे हॉल में रोशनी एकदम मद्धम थी। हम वहाँ पर कुछ देर खड़े रहे और फिर कई भावों –अनुभावों को मन के अंदर समेटे बाहर आ गए। मैंने कहीं पढ़ा था कि माओत्से तुंग ने चीन की राजनीति ही बदल दी थी। वो तो

उनका राजनैतिक व्यक्तित्त्व था। मैं उनकी कविताओं से भी परिचित थी; जिनमें वे देश के किसानों और आम जनता में खुशहाली लाने का वर्णन करते हैं। समाधि के पास खड़ी मैंने केवल उनके कवि हृदय को याद किया। बाकी की राजनैतिक बातें याद ही नहीं रही।

उस दिन बीजिंग में बहुत ठण्ड थी। तापमान शून्य से भी कम था। हाथ –पाँव ठिठुर रहे थे। लेकिन अभी दो महत्त्वपूर्ण स्थलों को देखना रहता था। बीजिंग शहर की एक मज़ेदार बात तो मैं बताना ही भूल गई। यहाँ पर लोग स्कूटर /स्कूटी और साइकल पर ही अधिकतर एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं। साइकलें स्टैंड पर खड़ी रहती हैं, लोग अपना कार्ड डाल कर उसे किराए पर ले लेते हैं। बीजिंग में पैसों का आदान-प्रदान कहीं नहीं देखा। हर कोई प्लास्टिक के क्रेडिट कार्ड

से ही काम चलाता है। एक और मनोरंजन वाला दृश्य था। लोगों ने अपने स्कूटर या साइकल के अगले भाग पर हवा और ठंड से बचने के लिए मोटे रजाइनुमा लिहाफ़ लगाए होते हैं। इस लिहाफ़ से इनके हाथ-पैर, टाँगें सब ढके रहते हैं। मैं अभी तक बहुत से देशों की सैर कर चुकी हूँ। लेकिन इस जुगाड़ को देख कर मन खुश हो गया।

डाचेंग हॉल, कन्फ्यूशियस मंदिर

हमारा अगला पड़ाव था महान् चीनी विचारक एवं शिक्षाविद् कन्फ्यूशियस का मंदिर। कहते हैं कि यह स्थान चीन में संरक्षित उच्चतम शिक्षा का संस्थान था।

मेरे मन में अब तक यही विचार था कि चीन की वास्तुकला और भवन निर्माण कला केवल महलों तक ही सीमित थी। लेकिन कन्फ्यूशियस का मंदिर देख कर यह भ्रम भी टूट गया। चीन के सभी सांस्कृतिक और एतिहासिक स्थानों में एक से अधिक आँगन बनाए गए हैं। हर आँगन के चारों ओर कमरे और बीच में मुख्य हॉल। इस मंदिर में भी चार आँगन थे। तीसरे आँगन में पूजा हॉल था। इसी आँगन के बीचों-बीच कन्फ्यूशियस की ग्रेनाईट (grenait) पत्थर की भव्य मूर्ति थी। उसके पास लोग सुगन्धित अगरबत्तियाँ रख कर पूजा-अर्चना में लगे थे। मंदिर के मैदान के अंदर विभिन्न प्रकार की नक़्क़ाशी थी। एक उल्लेखनीय उदाहरण "बादलों के बीच मोती के साथ खेलने वाले दो फ्लाइंग ड्रेगन" की एक प्रसिद्ध नक़्क़ाशी की छवि। मंदिर में एक बहुत ही प्राचीन संग्रहालय है जिसमें तेरह कन्फ्यूशियस क्लासिक्स वाले पत्थर के स्टेल हैं (एक विशेष प्रकार की आकृति वाले पत्थर) जिन पर कन्फ्यूशियस की शिक्षा के महत्त्वपूर्ण सिद्धांत अंकित हैं।

इसी स्थल पर हमने कई प्राचीन वाद्य यंत्र भी देखे जिनमें नक़्क़ाशीदार पत्थर के ड्रम देख कर बहुत प्रभावित हुए। हॉल ऑफ ग्रेट परफेक्शन में प्राचीन चीनी संगीत वाद्ययंत्र का एक बड़ा संग्रह है। वास्तव में जहाँ भी दृष्टि जा रही थी, चीन की प्रचीन संस्कृति से पहचान होती जा रही थी।

मैंने महान् विचारक कन्फ्यूशियस का

नाम तो सुना था और उनकी तस्वीर भी देखी थी किन्तु उनके विचारों के विषय में अधिक ज्ञान नहीं था। उस रात वहाँ से आने के बाद मैंने कन्फ्यूशियस के विचारों के विषय में जानना चाहा। इस महान् शिक्षक ने संसार में समता और परस्पर सहिष्णुता के विषय में अत्यन अनमोल विचार दिए हैं।

उनके विषय में एक कथा प्रचलित है-

एक दिन एक शिष्य ने मास्टर से पूछा, "क्या एक शब्द है जिसे मानव जाति के संपूर्ण कर्त्तव्य को समझाया जाए? " और कन्फ्यूशियस ने उत्तर दिया, "साथी-भावना, शायद, यह शब्द है। दूसरे लोगों के साथ ऐसा न करें जो आप नहीं चाहते कि वे आपके साथ करें।" कन्फ्यूशियस के इस सिद्धांत को 'जेन' कहा जाता है। मैंने उनके मंदिर में पाँच मुख्य सिद्धांतों के विषय में पढ़ा -दयालुता, धर्म, संयम, बुद्धिमत्ता और विश्वसनीयता। पढ़ कर मन में बार- बार यह विचार आया कि यह सिद्धांत किसी भी समाज, देश में सद्भाव और परस्पर भाईचारे के संबंध बना सकते हैं।

हमारी लिस्ट में बीजिंग का अंतिम दर्शनीय स्थल था 'योंहे मंदिर'। इसे हम लोग अभी तक लामा मंदिर के नाम से ही जानते थे। बौद्ध धर्म वैसे तो भिक्षुओं के माध्यम से २०० ईसा पूर्व ही चीन में प्रवेश कर गया था। किन्तु वर्ष १९४९ की क्रान्ति के बाद वहाँ की मार्क्सवादी सरकार ने इस धर्म को मूलत: नष्ट करने के प्रयत्न किए थे। सरकार का मानना था कि धार्मिक आस्था से वामपंथ की विचारधारा कमज़ोर होती है। मेरे जिज्ञासु मन में यह प्रश्न बार– बार उठ रहा था कि अगर चीन में धार्मिक आस्था रखने पर पाबंदी है तो यह प्राचीन मंदिर किस स्थिति में होगा। वहाँ पर रहने वाले बौद्ध धर्म के अनुयायी क्या सदैव डरे से रहते होंगे। बस यही भाव लेकर हम बड़ी उत्सुकता से इसे देखने के लिए जा रहे थे।तो चलिए आप भी हमारे साथ इस प्राचीन बौद्ध मंदिर के दर्शन करने।

योंहे मंदिर (सद्भाव और शांति पैलेस लामासेरी)

योंहे मंदिर, जिसे हार्मनी और पीस पैलेस लामासेरी के रूप में भी जाना जाता है, बीजिंग

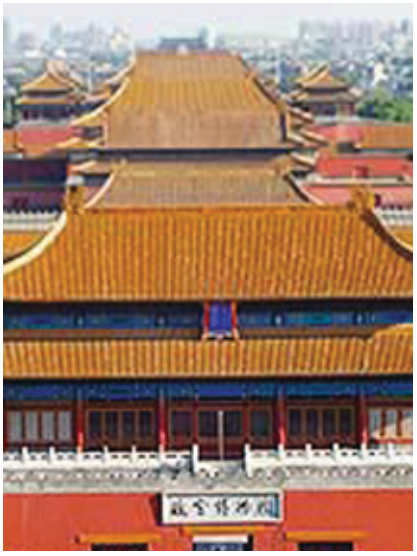

शहर के पूर्वोत्तर कोने में स्थित है। प्रवेश द्वार से अंदर जाते ही यह बात तो स्पष्ट हो गई कि यह मंदिर परिसर भी चीन की भवन निर्माण कला के अनुसार कई भागों में था। आँगन के दोनों ओर कमरे थे और दरवाज़े-दीवारों का रंग लाल और पीला ही था। प्रवेश द्वार से आँगन में आते ही सब से पहले पत्थर के विशाल शेरों ने हमारा स्वागत किया। पैलेस के केंद्र में स्थित एक मुस्कराती हुई मैत्रेय की प्रतिमा भी है। यह सब देखते हुए मुझे अभी तक बुद्ध की प्रतिमा दिखाईं नहीं दे रही थी। लेकिन जल्दी ही हम मंदिर परिसर के मुख्य स्थान पर पहुँच गए।

हॉल ऑफ हार्मनी एंड पीस (योंहेगॉन्ग) मुख्य महल था और अंदर तीन कांस्य बुद्ध प्रदर्शित थीं। इस मंदिर में प्रवेश करते ही मन और आँखों में श्रद्धा का भाव उमड़ने लगा।

तीनों मूर्तियों को देख कर लग रहा था कि जैसे ये एक ही दिव्य पुरुष की प्रतिमाएँ हों। इसमें तीन युगों के बुद्धों की तीन कांस्य प्रतिमाएँ हैं, गौतम बुद्ध (वर्तमान का बुद्ध) की प्रतिमा केंद्र में है, कश्यप मातंगा (भूतकाल का बुद्ध) और मैत्रेय की प्रतिमा (भविष्य का बुद्ध,)। हॉल के किनारों के साथ, १८ अरहट की मूर्तियों को रखा गया है। मंदिर की भव्य महिमा मैत्रेय (भविष्य का बुद्ध) की १८ मीटर ऊँची प्रतिमा है। वानफ्यूज (मंडप ऑफ टेन थाउजेंड हैपीनेस) अंतिम औपचारिक महल है। यह सबसे ऊँचा महल है; क्योंकि यह तीन मंजिला ऊँचा है। इस मंडप के अंदर हर स्तर पर दसियों हज़ार बुद्ध दिखाए गए हैं और केंद्र में एक सफेद संगमरमर के आधार पर मैत्रेय की एक विशाल प्रतिमा है।

उस दिन लामा मंदिर के परिसर में जो भी देखा तो मन–मस्तिष्क वर्षों पहले के चीन में चला गया, जिस समय बौद्ध धर्म अपने पूर्ण रूप में फल फूल रहा था। आम लोगों की धार्मिक आस्थाएँ तो पीढ़ी दर पीढ़ी जीवित रहती हैं। उनको समूल नष्ट करना किसी भी सरकार या राजनेता के बस की बात नहीं। धार्मिक आस्थाएँ तो हर व्यक्ति की निजी निधि है। इस मंदिर में हमें सैंकड़ों विदेशी सैलानी दिखाई दिए जो बौद्ध लामाओं के साथ अपने चित्र खिंचवा रहे थे। हमने भी बड़ी श्रद्धा से 'ताशी दिल्ले' (Tashi Delek – Good Luck) कह कर उनका अभिवादन किया। हमारे मुख से तिब्बत देश का अभिवादन सुन कर उनके मुख खिल गए। इस पावन स्थान के वायुमंडल में अगरबत्तियों की भीनी सुगंध विद्यमान थी। बीजिंग का यह भाग भारत के किसी बौद्ध तीर्थस्थान जैसा ही लग रहा था।

चीन बहुत बड़ा देश है और उसकी संस्कृति भी वृहद है। इसे देखने-जानने के लिए बहुत दिन चाहिए। लेकिन इन चार दिनों में हमने जितना भी देखा, वे सब मन के कैमरे में चित्र की तरह अंकित हो गया। हमारी अगली यात्रा शंघाई की थी। लेकिन उसके विषय में फिर कभी लिखूँगी। तब तक के लिए 'ताशी दिले' –गुड लक।

000

'भिट्ट' जाने का वह सुख

कृष्णकुमार 'आशु'

'वे बालपन से किशोरवय की ओर बढ़ते कदमों की आहट सुनने के दिन थे। हमारा शहर भी उन दिनों में कुछ आकार लेने लगा था। वह 'गंगानगर अेक बड्डो गाम है' (गंगानगर एक बड़ा गाँव है) की उपमा से निकल कर एक सुंदर शहर की चाल चल पड़ा था। हम लोग मूल शहर, जिसे पुराना शहर भी कहा जाता था, के हृदय स्थल पर स्थित चौधरी श्योजीराम सहारण के नोहरे में रहते थे। उस नोहरे के आधे हिस्से में मेरे दो मामाओं और एक भुआ के घर थे और शेष आधे हिस्से में खूब बड़ी खाली जगह में हमारा एक कमरे का घर का था। उस हिस्से में ही एक कमरा और था, जो चौधरी साहब के घर में पालतू पशुओं के लिए चारे के रूप में उपयोग होने वाली तूड़ी रखने के काम आता था। एक बड़ा गैराजनुमा हॉल भी बना हुआ था, जिसमें अक्सर चौधरी साहब के ट्रैक्टर, जीप या कार इत्यादि खड़े किए जाते थे। ये सभी भवन कच्ची मिट्टी से बने थे, जिन्हें गोबर से लीपलाप कर पक्का करने का प्रयास किया जाता था। यह काम भी अमूमन अम्मा के ही ज़िम्मे होता था। बगल में चौधरी साहब की हवेली तो पक्की थी ही।

चौधरी साहब के इस नोहरे या कह लें हमारे घर के ठीक सामने राजकीय पशु चिकित्सालय था और उसके बगल में मोचियों के परिवार रहते थे। वे सोलंकी थे और चार भाइयों का परिवार अपने-अपने मकान बनाकर रह रहा था। वे सभी नगर परिषद में चपरासी, जमादार आदि विभिन्न पदों पर कार्यरत थे। उनके बच्चे हमारी मित्र मंडली में शामिल थे। बच्चों में जात-पात और धर्म का भला क्या भेद होना था। हम लोग उनके घर उठते-बैठते, खेलते-कूदते और खाते-पीते रहते थे। हालाँकि उस समय कई बार माँ टोक देती थी, 'मोचियों के घर मत जाया कर। अगर जाए, तो वहाँ कुछ भी खाया मत कर।'

मैं बड़ी मासूमियत से पूछा करता था, 'क्यों?'

माँ कहती, 'इससे तू 'भिट्ट' जाएगा। फिर कोई तेरे साथ खाना नहीं खाएगा। कोई तुझे अपनी बेटी नहीं देगा। फिर तेरी शादी कैसे होगी!'

हमारी भाषा में बोला गया शब्द 'भिट्ट' (राजस्थानी में इसके लिए शब्द है-भींट) उस समय तो नहीं जानता था, बाद में समझ आया, इसका आशय था-अपवित्र हो जाना! परंतु आज सोचता हूँ तो पाता हूँ कि यह 'भिट्टना-भिट्टाना' नहीं होता तो शायद जीवन में बहुत अच्छे लोगों से रिश्ते बनाने से ही वंचित रह जाता।

घर के सामने सड़क पार करके मोचियों के घर थे और मोचियों के घर के ठीक सामने एक सार्वजनिक नल था, जहाँ से चौधरी परिवार और इक्का-दुक्का और घर जिनके यहाँ पेयजल आपूर्ति के लिए नल लगे थे, को छोड़कर मोहल्ले के सब लोग पानी भरते थे। उन दिनों में पेयजल आपूर्ति का ज़िम्मा भी नगर परिषद के पास था और बिल भी वहीं भरे जाते थे। सार्वजनिक नल चूँकि मोचियों के घर के ठीक सामने था और वे सारे नगर परिषद में कार्यरत थे तो एक तरह से उस नल पर उन परिवारों का कब्ज़ा था। वे सबसे पहले पानी भरते थे।

इस बीच, मोहल्ले की औरतें अपने मटके, बाल्टी इत्यादि लेकर एकत्र हो जातीं। मोचियों के घर वाले जब पानी भर लेते तो सबसे पहले मिट्टी से मल-मलकर नल को धोया जाता, ताकि मोचियों के हाथ लगने से अपित्र हुए नल को मिट्टी से साफ करके पवित्र कर लिया जाए और

कृष्णकुमार 'आशु'
'शब्दांश', बाला जी की बगीची,वार्ड नंबर दस, पुरानी आबादी, श्रीगंगानगर-335001
मोबाइल- 9414658290
ईमेल- dr.kkashu@gmail.com

फिर पवित्र किए हुए नल से पानी मिल सके। पानी भरते समय अगर ग़लती से कभी उनके मटके आदि से किसी महाजन परिवार की महिला का मटका छू जाता तो वह झगड़ा तो भले ही नहीं करे, लेकिन मन में कुढ़ते हुए उसी समय सबके सामने अपने मटके आदि को मिट्टी से साफ करती थी। पानी भरने के लिए अपनी बारी का इंतज़ार करती इन महिलाओं में कई बार महाभारत भी छिड़ जाती थी।

मोचियों के इसी परिवार में मेरी उम्र का एक लड़का था-पिरथिया! स्कूल में उसका नाम बोला जाता था-पृथ्वीराज सोलंकी! परंतु हमारे लिए वह पिरथिया ही था। उसके साथ मेरी खूब यारी रही। हालाँकि बचपन की लड़ाइयाँ भी लड़ी गईं और मौज-मेले भी हुए। फिर भी उस परिवार में बहुत लाड़-कोड पाया मैंने। पिरथिये की माँ जिसे मैं मौसी कहा करता था, भी बहुत स्नेह रखती थीं। उनके घर कई बार रोटी खा लेता। कई बार मांसाहार का सेवन भी वहाँ कर लेता था। ऐसा भी नहीं था कि हमारे घर पर मांस नहीं बनता था। मेरे पिता जी बकरे का मीट खाने के शौकीन थे और महीने में एक बार तो वे बनाते ही थे, तब मैं भी खाता था। परंतु माँ को वहम था कि मोचियों के घर शायद सूअर का मांस पकाया जाता है। यह भी सच था कि कभी-कभी वे सूअर का मांस पकाते थे, क्योंकि वह बकरे के मांस की अपेक्षा सस्ता मिलता था।

उनके घर खाने या पानी भी पी लेने की बात पता चलते ही मुझे दो जनों की खूब डाँट खानी पड़ती थी। एक तो मेरी माँ और दूसरी माँ जैसी ही बड़ी मामी जी, यानी मकान मालिक चौधरी साहब के बड़े बेटे थानेदार जी की पत्नी! उन्हें यह बात कतई स्वीकार नहीं थी कि मैं मोचियों के घर खाना-पीना करूँ। परंतु मैंने कभी न तो उनकी यह बात मानी और न ही उनके घर जाना बंद किया। पता नहीं क्यों मेरा स्वभाव ही ऐसा था कि जात-पात में विश्वास नहीं रख पाता था। कई बार सोचता हूँ कि माँ की हर बात मानने वाला मैं, उनकी यह बात कभी नहीं मान पाया।

एक दिन की घटना याद आती है। तब मैं कपड़े की दुकान पर नौकरी करने लगा था और दोपहर में रोटी खाने घर आ रहा था। बाज़ार में एक जगह पिरथिया मिल गया। उसने एक दुकान से कुई के ऊपर रखे जाने वाला पत्थर खरीद रखा था जिसे रिक्शे पर भी रखवा लिया था। पिरथिये को बाज़ार में और काम था और उसने मुझे कहा कि रिक्शे के साथ-साथ चले जाओ और यह पत्थर घर पर उतरवा देना। रिक्शे का भाड़ा पचास पैसे भी उसने दे दिया। मैं दुकान की साइकिल लेकर आया था, सो रिक्शे वाले से कहा कि मेरे पीछे-पीछे आ जाए। वह आ गया। दरअसल उस ज़माने शौचालय के लिए सेप्टिक टैंक का चलन हमारे शहर में न के बराबर था। शौचालय के लिए कुछ लोग कुई खोदते थे। बहुत गहरे तक कुई खोदना बहुत ख़तरे का काम होता था, परंतु मोचियों के परिवार के लोग खुद ही यह काम कर लिया करते थे।

जब पत्थर लेकर घर पहुँचे तो रिक्शेवाले ने कहा कि पत्थर उतरवा दो। मैंने पत्थर उतरवाया तो थोड़ा ज़ोर से गिर गया। इसी के साथ पत्थर के दो टुकड़े हो गए। अब पिरथिये के बापू ने डाँटना शुरू कर दिया। दस रुपए का पत्थर था। नुक़सान हो गया। उन्होंने साफ कह दिया कि ये दस रुपए तो तुम्हें ही देने पड़ेंगे। मैं बहुत परेशान हो गया। उस समय तो मैं दुकान चला गया। शाम को मित्र मंडली इकट्ठी हुई तो पिरथिया भी आया और कहा कि यह नुक़सान तो तुम्हें ही भरना पड़ेगा। उस समय दस रुपए बड़ी रकम मानी जाती थी।

मेरा एक और साथी जो थोड़ा सम्पन्न परिवार से था, उसने कहा, 'कोई बात नहीं, पाँच रुपए तुम दे दो, पाँच मैं दे देता हूँ। इनके तो दस पूरे करने ही पड़ेंगे। वरना ये छोड़ेंगे नहीं।'

उस साथी ने दरियादिली दिखाते हुए पाँच रुपए दे दिए। पाँच का जुगाड़ मैंने किया और पिरथिये को दस रुपए का भुगतान कर दिया गया। इसके बाद पत्थर के वे दो टुकड़े हमने एक-एक बाँट लिये। इस पत्थर का उपयोग अब कपड़े धोने के लिए पाटे के रूप में ही हो सकता था। वही घर वालों ने किया।

भुगतान करने के बाद पाँच रुपए की मदद करने वाले साथी का कहा गया जुमला आज भी मेरे कानों में गूँजता है। उसने कहा था, 'देख लिया इस जात का व्यवहार! यह जात ही ऐसी है!'

शायद वह साथी पाँच रुपए की मदद करके चाहता था कि मैं पिरथिये के साथ रहना छोड़ दूँ। परंतु यह संभव नहीं हो सका। पाँच रुपए उस ज़माने में बड़ी रकम थी लेकिन मेरी नज़र में दोस्ती इससे कहीं ज़्यादा बड़ी थी।

पिरथिये से मेरी दोस्ती न तो रुपए-पैसे के कारण टूटी और न ही जात-पात या छुआछूत के कारण। जब हम लोग किराए का वह मकान छोड़कर अपने खुद के मकान में चले गए तब भी उससे मुलाकात बरकरार रही। उसकी शादी में बारात के साथ अबोहर जाने का अवसर भी मैंने गँवाया नहीं। खूब आनंद और मौजमस्ती में बीता था बारात में जाने का वह दिन। उससे दोस्ती टूटी तो सिर्फ मौत नाम के अटल सत्य के कारण ही। पिरथिये को कम उम्र में ही शुगर बहुत ज़्यादा हो गई थी और उसी के कारण भरी जवानी के दिनों में उसकी मौत हो गई थी।

000

ये वे दिन थे जब सिर पर मैला ढोने की परम्परा चलन में थी। तब अधिकतर घरों में बाहरी दरवाज़े के पास पखाना बना होता था। रोज़ सुबह एक जमादारनी तगारी लेकर आती और लोहे के दो पत्तरों की मदद से पखाने में जमा सारा मल तगारी में डालकर अपने सिर पर रखकर ले जाती थी। तब सुबह के समय मल से भरी तगारी लेकर गली में जाते जमादार या जमादारनी अमूमन दिख जाया करते थे।

हमारे घर का मैला उठाने के लिए जो जमादारनी आती थी, उसका नाम था-रामप्यारी! शरीर का रंग एकदम काला मगर दिल शीशे की तरह साफ! लगभग मेरी माँ की उम्र की थी। वह भी मुझे बहुत स्नेह करती थी। सब लोगों की तरह मैं भी उसे जमादारनी ही कहा करता था। हालाँकि उसे घर में आने की इजाज़त नहीं थी। थोड़ा दूर से ही बात करती थी। उसके रोज़ दो चक्कर लगते सब घरों में। एक तो सुबह जब वह मैला उठाने आती और दूसरा दोपहर से थोड़ा पहले-वह हर घर से

एक रोटी और थोड़ी-सी सब्ज़ी लेने के लिए लगाती थी। इस तरह इकट्ठी हुई रोटियों से उसके परिवार का पेट भरता था। महीने के दो रुपये पारिश्रमिक भी प्रत्येक घर से उसे मैला उठाने के लिए बदले में दिया जाता था।

उन दिनों मैं और मेरा परिवार एक तकलीफ से बहुत परेशान हो जाते थे। सोते-सोते अचानक मेरे एक पाँव की पिंडली पत्थर की तरह सख्त हो जाती और भयंकर दर्द होने लगता था। हालाँकि एक-दो मिनट में वह अपने आप ही ठीक हो जाता, लेकिन वह दर्द असहनीय होता था। तब घर वाले बताते थे कि शायद नस पर नस चढ़ जाने से ऐसा होता है।

वह गर्मियों के दिन थे। सुबह-सुबह माँ काम पर जा चुकी थी और मैं अभी घर के आँगन में चारपाई पर सो रहा था। देर तक सोने की आदत थी। स्कूल तो जाना नहीं होता था। अचानक मेरी पिंडली में दर्द उठा और मैं बहुत ज़ोर से चिल्लाते हुए रोने लगा। ठीक उसी समय रामप्यारी हमारे घर के बाहर बने पखाने से मैला उठाकर जाने ही लगी थी कि मेरे रोने की आवाज़ सुनकर मैले की तगारी वहीं छोड़कर भागती-सी मेरे पास आई और मेरी पिंडली को अपने दोनों हाथों से दबाने लगी। उसका बड़े प्यार से पिंडली दबाना और मेरे रोने की आवाज़ सुनकर उसके चेहरे पर जिस तरह के भाव आए, उसे देखकर मुझे लगा, जैसे वह मेरे दर्द से बहुत दुखी हो रही है। ठीक वैसे ही, जैसे मेरी माँ हो जाया करती थी।

उसने कुछ देर इस तरह से मेरी पिंडली दबाई कि दर्द ठीक हो गया। कोई तीन-चार मिनट में ही मैं सामान्य हो गया। मुझे आराम में देखकर रामप्यारी के चेहरे पर भी सुकून के भाव आए और वह मैले की तगारी उठाकर चली गई।

अगले दिन माँ ने पहले तो रामप्यारी को बहुत डाँटा कि वह घर के आँगन में क्यों घुसी? फिर जब मैंने बताया, 'जमादारनी मौसी ने मेरे पैर दबाए थे। तब ही तो दर्द ठीक हुआ था।' तब कहीं जाकर माँ का ग़ुस्सा शांत हुआ। और इसके बाद वह जमादारनी रामप्यारी भी मेरी मौसी बन गई थी!

ooo

लघुकथा

सुनील गज्जाणी

जुण

''आख़िर मेरे भाग्य में ही ऐसा लिखा है तो मैं इसके खिलाफ होकर अपने सपने कैसे साकार कर सकती हूँ, जब भाग्य ही ऐसा गदा गया है तो अपने मन से छालवा जाने क्यूँ कर रही हूँ ! सिर्फ तक़दीर को कोसने के सिवाय मेरे हाथ में है क्या....!''

''आय-हाय ! तेरे मन में फिर से औरत पैदा हो गई क्या री ? हम इस बच्चे की बधाइयाँ लेने आए हैं ! दुआएँ देने आएँ हैं, बच्चे से खेलने, खिलाने नहीं ! है री चमेली, तू इतनी देर से बच्चे को गोद में लिए इसे टुकुर-टुकुर देखती हुई जाने क्या सोचे जा रही थी ! तुझे यूँ देख बच्चे की माँ का कलेजा कैसे मुँह को आ गया !''

''माई री जी मत उठा !ऐसे मौके पर मैं जब भी कहीं जाती हूँ तो बच्चे को देखते ही अपने बचपन को याद कर उठती हूँ ! इन उम्र में मैं भी किसी का बेटा थी मगर जब बड़ा हुआ तो.... !''

''है री फिर से अतीत कुरेदने लगी ?!''

''सखी चंपा! पता नहीं क्या कुरेद रही हूँ, अपने इंसानी जिस्म को, अपनी किन्नर जुण को या अपने प्रारब्ध को !''

ooo

उपहार

'वाह, मेरा बेटा तो एक दम अमीर लग रहा है, ये कपड़े पहन कर, खूब जच रहे हैं तुझ पे !'

'अरे अम्मा ! जचूँगा तो सही, आज मेरा जन्म दिन जो है !'

'मेरा राजा बेटा,तेरी इच्छा थी ना कि पिंटू बाबा जैसे कपड़े तू पहने ? !'

'हाँ अम्मा, मैंने देखा था जब आप चुपके से ले रही थी !'

'देखा था ! तेरी ज़िद ऐसे कपड़ों की ही थी न जन्मदिन पे ! मगर तुझे पता है अपनी हैसियत इतने महंगे कपड़े खरीदने की थोड़ी ना है तो मैंने ..!'

'तभी तो आप ने अपनी मालकिन से चुपक-से पिंटू बाबा के ये पुराने कपड़े मुझसे नज़र चुरा मांग लिए थे, मगर अम्मा फिर भी मैंने देख लिया था !'

माँ अपने नन्हे बेटे को गले लगाती रुआँसी बोली -

'सही बात है बेटा, तेरी ऐसी इच्छा भला और कैसे पूरा कर पाती बता ! मगर तेरे बदन के लिए तो नए ही है ना !'

ooo

सुनील गज्जाणी, सुतारों की बाड़ी, गुवाड़, बीकानेर, राजस्थान, 334001
मोबाइल - 9950215557, ईमेल- sgajjani@gmail.com

चश्मे की खोज

डॉ. अफ़रोज़ ताज

नाक पे चश्मा डार के, बड़ी बढ़ाई शान
शीशे आगे देखता, चश्मे लगे निशान

मैं समझता हूँ दूसरों से झूठ बोलना आसान है, ख़ुद से झूठ बोलना मुश्किल। जो लोग चश्मा लगाते हैं, वे अपने चहरे पर लगे चश्मे के साथ अपने चहरे की प्रशंसा चाहते हैं लेकिन अगर कोई फ़ोटो ले रहा हो, तो कहते हैं, "ज़रा ठहरिये," और चश्मा उतारकर कहते हैं, "ठीक है, अब खींचिए फ़ोटो।"

आप सोचते होंगे कि मैंने भी क्या बोरिंग विषय चुना है, "चश्मे की खोज"। लेकिन जब आप इसे आगे पढ़ेंगे तो सोचेंगे कि यह सब तो आपने पहले कभी सोचा न था। बिल्कुल ऐसे ही जैसे चश्मा लगते ही वह सब दिखता है जो पहले दिखता न था।

लेकिन क्या आपने कभी सोचा है कि जब आप पढ़ने बैठें और चश्मा न मिले, तो बड़ी उलझन होती है, कहाँ गया? तकिये के नीचे, या मेज़ के पीछे, या बाथरूम में, या घर के किसी छोटे बच्चे के हाथ लग गया, या बन्दर दीवार पर बैठा उसे तोड़ने की कोशिश में लगा है। मगर ज़्यादातर यह आपके चहरे पर ही मिलता है। चूँकि चश्मे की आदत आपकी नाक को इतनी हो गई होती है कि नाक ने चश्मे के वज़न को अपना ही वज़न मान लिया होता है, और अब चश्मा भी आपके चहरे की नाक बन चुका है या चश्मे ने आपकी नाक पर अपना हक़ जमा लिया है।

इस पर मुझे याद आया पिछली गर्मियों में वृन्दावन में एक बन्दर ने मेरी एक छात्रा का ऐनक ही सफ़ाई से उचक लिया और पेड़ पर चढ़ कर अपनी नाक पर लगाने की कोशिश करने लगा। वहाँ के पण्डों ने कहा, "घबराइये नहीं, हम दिलवाये देते हैं आपका चश्मा, कुछ पैसे देने होंगे केलों के लिये, वह नीचे आ जाएगा।" उनके हाथ में पैसे देखते ही, बन्दर नीचे उतर आया, और झट चश्मा पण्डे के हाथ थमा दिया। मैंने सोचा, वाह, व्यापार करने का "शार्ट कट" तो कोई इनसे सीखे। छात्रा की नाक पर चश्मा देखकर मैं बहुत ख़ुश हुआ, मेरी नाक कटते-कटते बची। मैंने तो सोचा था कि नज़र का चश्मा तो कोई किसी का चुरा ही नहीं सकता मगर बन्दर महाराज के लिये तो सब नम्बर एक से हैं। बन्दरों के अलावा मानव देसी चोरों को भी कम न समझना, चश्मा चुराते समय नम्बर नहीं उसका फ़्रेम देखते हैं। इसी कारण अब तो मैं जब भारत जाता हूँ अपने "बढ़िया" चहरे पर घटिया फ़्रेम का चश्मा लगाकर जाता हूँ।

पहले दुनिया वाले अपने प्यारे के प्रस्थान कर जाने पर उसका चहरा फ़्रेम में लगा के रखते

डॉ. अफ़रोज़ ताज
101 कमील कोर्ट
चैपल हिल, नॉर्थ कैरोलाइना,
27516 यूएसए
मोबाइल - 919-999-8192
ईमेल- taj@unc.edu

थे, परंतु आज तो यहाँ हमारा अच्छा-ख़ासा, जीता-जागता चहरा फ्रेम में फ़िट हो जाता है। ऐनक चहरे पर बुरी लगे या अच्छी, मन को तो समझाना ही पड़ता है। जब छोटे से बच्चे को चश्मा लगता है, तो माँ बलाएँ लेकर कहती है, "कितना प्यारा लग रहा है, मेरा मुन्ना, नज़र न लगे, चश्मे बद दूर," चाहे स्कूल में बच्चे उसे चश्मुद्दीन ही कहकर क्यों न छेड़ते हों। कल हो न हो की हीरोइन प्रीति ज़िंटा को शाहरुख़ ख़ान ने हमेशा चश्मिश ही कहकर पुकारा। क्या कभी मानव ने सोचा था कि एक प्लास्टिक की चीज़ आपके चहरे के ख़ास हिस्से पर दिन रात रखी रहेगी, बस चले तो हम सोते में भी चश्मा लगाएँ ताकि सपना साफ़ दिखे।

चश्मा चहरे का ही क्या, आपके व्यक्तित्व का भी एक हिस्सा बन चुका है। क्या गाँधी जी का चित्रण बिना चश्मे के किया जा सकता है? उनके नाम से चश्मा नहीं पहचाना गया बल्कि चश्मे से उनकी पहचान बन गई। आज भी गोल चश्मा "गाँधी ऐनक" कहलाता है। गाँधी जी के द्वारा तो भारत के सारे नोटों पर ही चश्मा चढ़ गया और आगे चलकर स्वच्छ भारत का निशान भी गाँधी जी का चश्मा बना। सुभाष चन्द्र बोस हों या डॉक्टर ज़ाकिर हुसैन हों, या डॉक्टर अम्बेडकर, या लियाक़त अली ख़ान, उनकी कल्पना करते ही मन में चश्मा सामने आ जाता है। हमारे पिता जी (पापा जी) जब हमें डराना चाहते थे तो बिना चश्मे के हमारे कमरे में आ जाते थे, हम चीख़-चीख़ कर रज़ाई में मुँह छुपा लेते थे, फिर वे अपनी आवाज़ सुनाकर हमें शान्त करते थे, लेकिन हमारी अम्मी चश्मा जब ही लगाती थीं जब वे पढ़ती थीं।

वैसे कहा जाता है कि चश्मा लगाने से आँखों की झुर्रियाँ ही नहीं छुपतीं बल्कि इंसान के चहरे पर पढ़ा-लिखापन भी आ जाता है। लेकिन असली साधु सन्तों को इसकी चिन्ता नहीं, वे चश्मा नहीं लगाते, चाहे मीराबाई हों या कबीर दास जी, उनको चश्मे की ज़रूरत नहीं पड़ी। शायद वे दुनिया को पास से देखना नहीं चाहते थे। वे जानते थे कि निराशा के सिवा उन्हें कुछ न मिलेगा। मिल्टन और

सूरदास को तो बिना आँखों के सब कुछ दिखता था, उनके मन की ऐनक में काफ़ी पावर थी। शैक्स्पियर के समय तक चश्मे की खोज हो चुकी थी, लेकन उन्होंने भी चश्मा न लगवाया क्योंकि उन्हें पढ़ने की क्या अवश्यक्ता थी। वे किताबें पढ़कर नहीं बल्कि दुनिया वालों को देखकर लिखते थे। वे संसार के लिये चश्मदीद गवाह बनकर रहना चाहते थे। हो सकता है उन्हें कबीर दास जी का कहा याद हो-

"तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी"

परन्तु आजकल के साधुओं में कुछ चश्मे वाले साधु भी मिल जाते हैं। वे आँखें बन्द करके भगवान् को और चश्मे से संसार को देखते हैं।

पापा जी के चेहरे पर चश्मा हमेशा लगा रहता था, चाहे वे सो ही क्यों न रहे हों। वे पलभर को भी दुनिया बिन देखी नहीं छोड़ना चाहते थे, ख़ासकर हमारी शैतानियाँ। हमारी अम्मी को चश्मा तब ही याद आता था जब उनको कुछ पढ़ना होता था। उनको नॉविल पढ़ने का बहुत शौक़ था। उन्हें इस्मत चुग़ताई, अमृता प्रीतम, वाजिदा तबस्सुम, रज़िया बट, कृष्ण चंदर और ए. आर. ख़ातून बहुत पसंद थे। उनका नॉविलों का संग्रह अच्छा ख़ासा बड़ा था। एक छोटी मोटी लाइब्रेरी ही बना रखी थी उन्होंने लेकिन उनके चश्मे के बिना सब बेकार। उनके लघु पुस्तकालय में कुछ को छोड़कर अधिकतर उपन्यास ही थे। उनका कहना था कि नॉविल ही भाषा की उन्नति और विकास की भागीदार हैं। उपन्यास ही घर-घर में भाषा की वाग्मिता बढ़ाते हैं तथा पढ़ने का शौक़ बढ़ाते हैं। ये उपन्यास भाषा सिखाने के साथ-साथ लिखने के शौक़ को भी उजागर करते हैं। जब वे अपनी सहेलियों में बैठकर नॉविलों के प्लाट पर चर्चा करतीं तो मैंने उन्हें कहते सुना, "गुलशन नन्दा, नसीम अनहोनवी, दत्त भारती, आदिल रशीद, आरिफ़ मारहरवी किसी से कम हैं क्या? यही तो हैं जो भाषा की वृद्धि में आगे-आगे रहे हैं। ग़ालिब, मीर, महादेवी वर्मा, भूषण, इंशा, और रबीन्द्रनाथ ठाकुर, इत्यादि तो उन लोगों के लिये हैं जो पहले से पढ़े लिखे हैं।"... ओहो, मैं कहाँ से कहाँ पहुँच गया।

एक रोज़ की बात है (बल्कि हर रोज़ की यही बात थी), अम्मी बेचैनी से इधर-उधर घूम रही थीं। उन्हें किसी चीज़ की तलाश थी। हाथ में एक निशान लगा नॉविल और आँखों में एक चीज़ की तलाश, यानी वही रोज़ की कहानी, अपने चश्मे की खोज। घर के तमाम काम निपटाने के बाद सारे घर में चश्मे की खोज शुरू हो गई, कि हाय, कहाँ गया मेरा चश्मा, यहीं तो रखा था! हम सब दोषी बनकर चश्मे की तलाश में लग गए। एक चश्मे के बिना पूरा पुस्तकालय ग़ायब। सारा घर छाना जा रहा है, चारपाई के नीचे, मैले कपड़ों के जेबों में, नल के पास, घड़ोंची के पीछे, रसोई में मिर्चों के डिब्बे में, पानदान के अंदर, कबूतरों की काबकों में, इत्यादि। अम्मी ग़ुस्से में कहतीं, "क्या कोई नास पीटा, झाड़ू फिरा चोर ले गया, या मुर्ग़ी ने यह चश्मा निगल लिया, या बिल्ली लगाकर भाग गई? कहाँ गया, आख़िर!" मेरा छोटा दिमाग़ सोचता, जानवरों की आँखें कभी ख़राब नहीं होतीं, क्या? क्योंकि मैंने किसी जानवर या चिड़िया को चश्मा लगाये नहीं देखा। अम्मी के चश्मे की खोज में सारा घर भागा-भागा फिरता, सिवाए पापा जी के। वे सोचते थे, कि चश्मे का न ही पता लगे तो अच्छा, वरना दो घण्टों के लिये उनकी बेगम घर से निकल कर नॉविलों की दुनिया में गुम हो जाएँगी। मैं ज़ोर से चीख़ा, "मिल गया चश्मा!" सबने एक साथ पूछा, "कहाँ था?"

मैंने बड़े ऊँचे विजयी स्वर में कहा, "पापा जी के बिस्तर में! वहीं जहाँ अम्मी आपकी एक दिन अँगूठी मिली थी।" मेरे गाल पर उनकी एक चपेट पड़ी, और कहा, "ख़ामोश!" चश्मा छीनकर ग़ायब हो गईं। मेरी समझ में आज तक न आया, कि यह शुक्रिया कहने का कौन सा ढंग था?

चश्मा भी क्या चीज़ है, जब लग गया, सो लग गया। सब दिखने लगा, जैसे फूलों और दूसरों के कपड़ों के रंग या धब्बे, या अपने चहरे की आयु-रेखाएँ, सच्चाई की तरह सब साफ़-साफ़। चश्मे से पहले हम किन चीज़ों से बेख़बर थे, पता न था। बिल्कुल ऐसे जैसे विद्या। कहना पड़ेगा कि विद्या ही से तो विडियो या विज़ुअल बना है अंग्रेज़ी में। ज़रा सोचिये, कितना महत्त्व है चश्मे का, चाहे ग़ालिब हों या टैगोर, आपके पढ़ने से पहले आपका चश्मा उन्हें पढ़ता है।

"चश्मा" फ़ारसी का और "ऐनक" अरबी का शब्द है, तो प्रश्न उठता है कि इस के लिये संस्कृत का शब्द क्या है? तो पता लगा किसी न किसी प्रकार से दोनों ही शब्दों का संस्कृत से सीधा वास्ता है। "ऐनक" "ऐन" से बना है, जो अरबी का शब्द है, संस्कृत में "ऐन" का अर्थ है "नयन", और "चश्मा" "चश्म" से बना है, जो फ़ारसी का शब्द है, संस्कृत में "चश्म" का अर्थ है "चक्षु" जिसे हम "आँख" कहते हैं। तो भारतीय भाषा में हम "चक्ष्मा" या "नैनक" क्यों नहीं कह सकते, जबकि चश्मे को हम उपनेत्र भी नहीं कहते। एक और दिलचस्प बात कहता चलूँ जो आप जानते ही होंगे, कि फ़ारसी या उर्दू में "चश्मा" पानी के स्रोत या झरने को भी कहते हैं। शायरी में आँख केवल देखने के लिये ही नहीं बल्कि रोने के लिये भी बनी है।

पढ़ते समय चश्मा अच्छे अच्छों की आयु-श्रेणी बता देता है। धन्य हैं वे लोग जिन्होंने इसका आविष्कार किया। चश्मे से पहले, कान और नाक में कोई नाता न था। चश्मे ने आकर कानपुर से नागपुर की दूरी मिटा दी। ऐसे भी कहा जा सकता है कि चश्मे से पहले नाक का एक ही काम था और कान का भी। चश्मे ने इनका दूसरा काम भी दुनिया

वालों को बता दिया। चश्मा लगाते ही चहरे का रोमान्स समाप्त हो जाता है। यही कारण है कि बालीवुड के अभिनेता, अभिनेत्रियाँ अपने चश्मे को जेब में डालकर अभिनय करते हैं। ज़रा सोचिये, यदि शम्मी कपूर फ़िल्म जंगली में कूद कर "याहू" चीख़ते तो बताइये, चश्मा कहाँ जाता, या अनारकली (मधुबाला) चश्मा लगाके गातीं "जब प्यार किया तो डरना क्या?" तो क्या डरावना सीन होता। "कोरा काग़ज़" के हीरो ने चश्मा लगाये रखने की शर्त रखी और बेचारे गाने को चश्मा जैसा "अन-रोमांटिक" शब्द झेलना पड़ा।

सौतन चश्मा बीच में आए नैन मिले कैसे
रूठे रूठे पिया मनाऊँ कैसे

हैनरी जेम्ज़ की कहानी "Glasses" में अपने समय की सबसे सुन्दर लड़की चश्मा लगाते ही नीरस बन गई। चश्मे की खोज करने वाले, तेरा शुक्रिया।

वैज्ञानिक सुश्रुत

यह ६०० ईसा पूर्व की बात है। भारत के वाराणसी नगर के निवासी एक विद्वान विज्ञानी सुश्रुत ने आँख का विज्ञान सबसे पहली बार संसार के सामने रखा और कहा जाता है कि यही हैं जिन्होंने चश्मे का भी आविष्कार किया। उनकी मूर्ति हरिद्वार में देखी जा सकती है। सुश्रुत के आविष्कार के बारे में कितनी पुष्टि मिलती है, यह तो मैं नहीं कह सकता मगर हाँ, इसकी पुष्टि तो मैं अवश्य कर सकता हूँ कि यह अक्सर हुआ है कि पूरब की धरती पर जब-जब कोई उपलब्धि हुई है उसका श्रेय पश्चिम ने ले लिया। बहुत से उदाहरण हैं हमारे सामने। जब दुनिया में नॉर्थ कैरोलाइना स्टेट था भी नहीं, तब पवन पुत्र हनुमान जी के हवा में उड़कर आने का उल्लेख रामायण में आ चुका था और रावण का सीता को हवा में उड़ाकर ले जाना किसे मालूम नहीं। इटली के गैलिलेयो को सभी जानते हैं मगर भारतीय खगोलज्ञ या ज्योतिविद् को कोई नहीं। पूरब की कारगुज़ारियों पर पश्चिम का श्रेय लेना एक युग से चला आ रहा है। पूरब से निकला सूरज पश्चिम हड़प लेता है और यह हमारे सामने बार-बार होता है। दूल्हा कोई और है, पर सहरा किसी और को बंधा। महाभारत में धृतराष्ट्र का चश्मा या दूरदर्शन तो संजय पहले ही बन चुके हैं।

सुश्रुत के बहुत बाद, ग्रीक और रोमन युग में लोग पढ़ने के लिये बड़े-बड़े नगों का प्रयोग करते रहे हैं। दूसरी शताब्दी तक तालिमी नामक एक ग्रीक वैज्ञानिक विद्वान ने आप्टिक्स (प्रकाश विज्ञान) के नाम से एक पुस्तक लिखी, जिसमें लैन्ज़ के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है। यह वैज्ञानिक मिस्र के अल-सिकंदरिया (Alexandria) नगर में रहता था। यह वह दौर था जब मिस्र रोमन राज्य का भाग था। दसवीं शताब्दी के आस पास अरब में दो वैज्ञानिक इब्ने सहल और हसन इब्नुल हेसम बड़े विद्वान और विख्यात थे, जिन्होंने तालिमी वैज्ञानिक की मदद से आप्टिक्स पर और पुस्तकें लिखीं तथा उसमें और परिवर्धन किया।

आगे चलकर बारहवीं सदी में इटली और स्पेन में इन्हीं पुस्तकों का फिर अरबी भाषा से लैटिन में अनुवाद हुआ और वहीं से चश्मे की संकल्पना निकली। तेरहवीं शताब्दी के लोगों ने लैन्ज़ को हाथ में पकड़ कर किताबें पढ़ना शुरू कर दिया। उस समय का चश्मा देखने में क्रैंची की तरह लगता था। यह कहा जाता है कि यह इटली से शुरू हुआ और चौदहवीं सदी में इस चश्मे का चलन आम हो गया। यह वह दौर है जब भारत में दिल्ली की सल्तनत शुरू हो चुकी थी, और सन् १२५३ ई. में भारत का प्रसिद्ध हिन्दवी कवि अमीर ख़ुसरो पैदा हो चुका था। लगभग १२९० ई. तक चश्मा घर

घर की नाकों तक पहुँच चुका था। बहुत सी पहेलियाँ ख़ुसरो के नाम से मशहूर हैं, कौन जाने यह निम्न लिखित पहेली चश्मे के बारे में ख़ुसरो ने लिखी है या नहीं, मगर ख़ुसरो के नाम से प्रचलित है। सुनिये, मज़ा आएगा।

एक अनोखी सुन्दर नार, बहुत रखे बुड्ढों से प्यार

बिन सर बिन धड़, नैन दिखावे, जो देखे सो नाक चढ़ावे

(पहेलियाँ संकलन; शाहबाज़ हुसैन तथा नंद किशोर विक्रम, १९७९, पन्ना २५)

ख़ुसरो से प्रेरित होकर चश्मे पर मैं अपनी भी एक पहेली सुना दूँ, इस आशा पर कि काश कभी यह भी मेरे मरने से पहले ख़ुसरो से जुड़ जाए।

आँख के आगे, उसका नाम

कान को पकड़े, नाक लगाम

मुझे याद है, अम्मी के पुस्तक संग्रह में एक दो ख़ुसरो की लिखी सावन के गीतों और ग़ज़लों की किताबें भी थीं। सहेलियों के साथ उनके गाये हुए सावन के गीत अब तक मेरे कानों में गूँजते हैं।

आज अम्मी को गए हुए तीस साल से ऊपर हो गए हैं। उनकी किताबें कहाँ चली गईं, पता न चला। मैं अमरीका आ गया। शुरू-शुरू में मैं अमरीका की चमक-दमक और अपनी जीवन-वृत्ति बनाने में लगा रहा। जब आँख खुली तो चश्मा लग चुका था। घर की याद आई, माँ की याद आई। बचपन की और बचपन में अम्मी की छोटी सी लाइब्रेरी की याद आई। याद के सिवा क्या रखा था। उन किताबों के पन्नों पर तो बहुत पहले लोग चूरन रखकर खा चुके होंगे। उनकी लाइब्रेरी की किताबें तो कहाँ मिलतीं। मगर हाँ, अपने बचपन तथा अम्मी की यादों के टुकड़े बीनने की योजना बनाए मैंने उन जैसी पुरानी किताबों को तलाश करना शुरू कर दिया। पुस्तक भण्डारों में, सण्डे बाज़ारों में, रद्दी की दुकानों में, जहाँ-जहाँ मैं पुराने नॉविलों के लिये पूछता, तो लोग मेरी ओर ऐसे देखते जैसे मैं किसी और दुनिया का निवासी हूँ। हर दुकानदार अपनी किताबों से बेनयाज़, मोबाइल फ़ोन के नशे में मुग्ध दिखता। पुरानी

पुस्तकें बेचने वाला ख़ुशी-ख़ुशी पैसे गिनता जाता और मेरी ओर ऐसे देखता जैसे मैंने अच्छे दामों में सड़ी हुई सब्ज़ियाँ ख़रीद ली हों। वह अन्दर ही अन्दर मुस्कराता, और मैं अंदर ही अंदर सोचता कि पुराने लेखकों ने तो अपना सुनहरी समय देख ही लिया और अब अच्छा है कि अपनी किताबों को अंधकार में पड़ी देखने के लिये वे मौजूद नहीं। मगर लेखकों की नई पीढ़ी, ऊषा प्रियम्वदा, सलमा कंवल, सुधा ओम ढींगरा, उमैरा अहमद, नीलम बशीर, सुषम बेदी तथा ख़दीजा मस्तूर इत्यादि को डिजिटल युग के जो आक्रमण झेलने हैं वे मैं समझ सकता हूँ।

मैंने पुरानी पुस्तकों की खोज जारी रखी, कई वर्षों में अच्छी ख़ासी किताबें जगह-जगह से एकत्र कर ली थीं, परन्तु एक किताब मुझे कहीं न मिली, जो अम्मी की सबसे मनपसन्द उपन्यास थी। यह थी, ए. आर. ख़ातून का लिखा उपन्यास "चश्मा"।

चश्मे की खोज के लिये मैंने कभी हार नहीं मानी, जबकि मेरी कमर जवाब दे चुकी थी। दिल्ली, लाहौर, वाराणसी, अलीगढ़, हर नगर के कुओं में बाँस पड़वा दिये। लखनऊ की बड़ी-बड़ी नामवर किताबों की दुकानें बंद हो गईं, या उन्ही दुकानों में लोग GRE, SAT, GMAT की किताबें या बाल उगाने तथा गोरा रंग करने के उपायों की पुस्तकें बेचने लगे या मोबाइल की दुकानें खोल लीं। पूछा किसी से, "ऐसा क्यों हुआ?" तो जवाब मिला, "अजी कौन पढ़ता है अब पुस्तकें? हर चीज़ इस में है," कहकर मोबाइल दिखा दिया और साथ साथ दाँत भी।

लखनऊ में नख़्ख़ास के इलाक़े में छोटे मियाँ की किताबों की एक लाइब्रेरी "बज़्मे अदब" भी बड़ी बे अदबी से बंद हो गई और उन्होंने किताबों को बोरों में भरवाकर अपनी छत पर कबूतरों वाली बरसाती में डम्प कर दिया और जहाँ "बज़्मे अदब" पुस्तकालय था वहाँ पर अमरीका की जीन्ज़ की मशहूर ब्रांड के नाम से पैण्टें सिलवाकर बेचने लगे। उन बोरों में सैकड़ों किताबें थीं, मगर उन में कहीं वह उपन्यास "चश्मा" न मिला।

एक दिन अपने मित्रों के साथ घूमते हुए, लखनऊ में मैंने एक दुकान का साइन देखा, "उपन्यास की दुकान"। भागकर दुकान के अंदर घुस गया। मेरे मित्र रोकते रह गए। दुकानदार को देखकर ठिठक गया। लंबी दाढ़ी, माथे पर सजदों के निशान, हाथ में तसबीह, सिर के पिछले हिस्से पर टिकी छोटी सफ़ेद टोपी, टख़नों से ऊँचा पाजामा, रोज़े के कारण चेहरे पर भूख, भूख के कारण आँखों में ग़ुस्सा, ग़ुस्से के कारण आवाज़ में कड़क। वे बोले, "जी, फ़रमाइये, क्या चाहिए? मैं नमाज़ को जा रहा हूँ, जल्दी बताइये।" मैंने निराशा से डरते-डरते कहा, "मुझे पुराने नॉविल चाहिए थे।" ("पुराना" कहना ज़रूरी था, क्योंकि मैंने सीख लिया था, यदि पुराना न कहो तो लोग धार्मिक उपन्यास या प्रोपगंडे हाथ में पकड़ा देते हैं।) उन्होंने साफ़ जवाब हाथ में पकड़ा दिया, "जी नहीं, यहाँ मज़हबी किताबें मिलती हैं। इस तरह की बेकार किताबें हम नहीं बेचते, मुझे नमाज़ को जाना है। कहीं और तलाश करें।" बाहर की ओर संकेत किया, बिल्कुल ऐसे ही जैसे भिखारी से कह रहे हों, "बाबा, माफ़ करो।"

मेरे साहस के भी क्या कहने, वाह वाह। साहस करके पूछ ही बैठा, "आपकी दुकान का नाम तो "उपन्यास की दुकान" है।" वे चश्मा सँभालकर झुँझलाकर बोले, "अरे भाई, यह इस दुकान का पुराना नाम है, हमारे वालिद मरहूम कभी उपन्यास बेचा करते थे। अगर हम अब तक उपन्यास बेच रहे होते तो हमें अपना मकान बेचना पड़ जाता और

सड़क पर छोले बेच रहे होते। कौन ख़रीदता है यह बकवास अब? अब तो इंसान की आँख खुल चुकी है। पहले आँखों पर पाप का चश्मा चढ़ा हुआ था। हर समझदार व्यक्ति अब मज़हब की तरफ़ जा रहा है।"

मैंने दिल में सोचा, इस बन्दे ने शब्दावली में दो शब्दों के अर्थ ही बदल डाले। पहला शब्द "बकवास", दूसरा "समझदार।" मैंने अंतिम कोशिश की, "शायद आपके पिताजी के ज़माने की कुछ पुरानी पुस्तकें उधर पड़ी हों। शैल्व्ज़ के पीछे उधर कोशिश कीजिये।" उसने शुद्ध पण्डितों की तरह दोनों हाथ पूरे जोड़कर कहा, "भाई, जाओ, यहाँ कुछ नहीं है, सब फेंक दीं, वे रद्दी में भी न बिकीं, पुराने काग़ज़ों के कारण।"

छत से लगी हुई पुरानी टीन की अलमारी की सबसे ऊपरी शैल्फ़ की ओर इशारा करके, मैंने कहा, "वे किताबें पुरानी लगती हैं, शायद उनमें कुछ हो, मेरे मतलब का।" उन्होंने मुण्डी घुमाकर ऊपर देखा, और फिर मेरी ओर व्यंग्य से मुस्कराकर वाक्य फेंका, "सपने में तो चोर को गहने ही दिखते हैं। अरे आप मेरी नमाज़ निकालने की योजना बना रहे हैं। वे सारी किताबें अब्बा जान के ज़माने की धार्मिक किताबें हैं।" वे ग़ुस्से में अपनी बाँस की बनी सीढ़ी पर चढ़े। "ये देखिये, यह क्या है, सब मज़हबी किताबें हैं, मुझे नमाज़ को जाना है।" उसी समय ऊपर से एक मोटी सी किताब फिसलती हुई मेरे आगे गिर पड़ी। ज़ोर की आवाज़ हुई, मेरे मित्र पीछे हट गए। मैंने आगे बढ़कर उसे उठाकर देखा, किताब के ऊपर बड़ा- बड़ा लिखा था, "चश्मा", लेखिका ए.आर.ख़ातून। मैंने अपनी चीख़ रोक ली। मेरी नाक से चश्मा भी फिसलकर गिर पड़ा। यदि मेरी ख़ुशी स्पष्ट हो जाती, तो इस उपन्यास की क़ीमत आकाश पर पहुँच जाती। मैंने अपने दोस्तों से फुसफुसाकर धीरे से कहा, "यही है वह किताब, जिसकी मुझे बरसों से खोज थी।"

शायद दुकानदार साहब ने मुझे सुन लिया, धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे उतरने लगे, और बोले, "क्या यह आपके मतलब की है?" मैंने कहा, "शायद।" उसने तुरन्त ही निगाह बदल कर पुस्तक मेरे हाथ से ले ली। उलट पलटकर देखने के बाद, बोले, "पता नहीं, यह यहाँ कैसे रह गई।" फिर मेरी ओर देखकर बोले, "यह बहुत क़ीमती किताब है।" कहकर अपनी कुर्सी पर बैठने लगे। शायद उन्होंने नमाज़ को जाने का ख़याल कैन्सिल कर दिया था, कहा "यह बड़ी महँगी किताब है।" मैं किताब का मूल्य सुनने को तैयार था और मन ही मन में अपने क्रैडिट कार्ड की लिमिट को याद करने की कोशिश करने लगा। मैंने डरते डरते इसकी क़ीमत पूछी। उन्होंने बहुत संभल कर कहा, "देखिये, भाई साहब, यह बहुत पुरानी किताब है, अब आपको कहीं नहीं मिलेगी। इसके मैं पचास रुपये लूँगा।"

इंसान भी बड़ा अजीब जानवर है, छोटी छोटी बातों पर जान दे देता है, और बड़े-बड़े झटके झेल जाता है। इस झटके के बाद मैं भी ज़िन्दा रहा। मेरी अम्मी कहा करती थीं, कि "बेटे, भगवान् जब झटका देता है, तो उसी समय झेलने की शक्ति भी।"

उनके हाथ में पचास रुपये पकड़ाये, और सीधे मित्रों को लेकर वहाँ से भागा, इससे पहले कि ये मौलाना साहब अपनी किताब की क़ीमत का और नमाज़ न पढ़ने का ख़याल बदल दें।

होटल के कमरे पर जाकर मैंने थैले से पुस्तक निकाली, जी भरके दोनों तरफ़ से बाहर से उसे निहारा। किताब खोलने पर याद आया कि अपना चश्मा तो मैं उस दुकान पर ही छोड़ आया। अपने चश्मे की खोज में वापस जाने का डर था, कि कहीं वे अपनी किताब वापस न माँग लें। विश्वास नहीं होता था कि उपन्यास "चश्मा" मेरे हाथ में है। ख़ुशी के मारे आँखों से चश्मे उबले पड़ते थे। किताब को देख कर बहुत ख़ुश था, बिना चश्मे के ही आँखें छोटी करके पढ़ने की कोशिश करने लगा। पहले ही पन्ने पर, किसी के हाथ से लिखा हुआ था:

"अनवार बानो"

यह मेरी माँ का नाम था।

आँसुओं के साथ ही मेरे बचपन की सारी दृष्टि-शक्ति मेरी आँखों में वापस आ गई।

000

ग़ज़लें

अशोक अंजुम

रोशनी, धूप, हवाओं का असर होता है
पत्थरों पे भी सदाओं का असर होता है
ये जो मिट्टी है इसे प्यार से माथे पे लगा
देख फिर कैसे वफ़ाओं का असर होता है
तेरे अंदर भी अगर ज़िंदगी की चाहत हो
तब कहीं जाके दवाओं का असर होता है
कोई ताउम्र चले फिर भी रहे खाली हाथ
अपने हासिल पे दिशाओं का असर होता है
दिल किसी का भी कभी भूल से 'अंजुम' न दुखा
दिल से निकलें तो दुआओं का असर होता है

000

चढ़ाव कम था तो उस पर उतार हल्का था
हमें बचना ही था ग़र्दो-गुबार हल्का था
उसे आना तो था पर रहगुज़र से लौट गया
वो तेरी चाह तेरा इंतज़ार हल्का था
मुझे मालूम था ये साथ निभ न पाएगा
लगाव कम था कि जो था करार हल्का था
इसलिए हमने कभी तुझसे तगादा न किया
ज़िंदगी तुझ पे हमारा उधार हल्का था
लाज़मी इसका उतरना है पता था मुझको
गो तुझ पे इश्क़ का जो था बुखार हल्का था
किस तरह मुल्क अरे तुझको तरक्की मिलती
बोझ भारी था मगर हर कहार हल्का था
तेरे हमले से बता कैसे बच गया 'अंजुम'
मौत बोली कि वो अपना शिकार हल्का था

000

अशोक अंजुम
संपादक- अभिनव प्रयास
स्ट्रीट-2, चंद्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद)
अलीगढ़ 202002 (उप्र)
मोबाइल- 9258779744
ईमेल- ashokanjumaligarh@gmail.com

कविताएँ

अरुण सातले की कविताएँ

स्निग्धा

मेरे भीतर अग्नि ज्वाल
प्रविष्ट होते ही
तुम शीतल फुहार सी बरसती
पानी बन जाती हो

सख्त चट्टान सरीखा अपनी बातों पर
अडिग रहते ही
तुम नदी बनकर
बहने लगती हो
मुझसे लिपट जाती हो
शनैः शनैः मेरे उभरे
तप्त चेहरे पर
डालकर लहरों का आँचल
उसे नम रखती हो

मैं मुग्ध भाव से
निहारता रहूँ तुम्हें
तुम, स्निग्धा बन जाती हो

अपने अंतर की गतिमयता से
मुझे बांधकर रखती हो
कभी निर्जन वन प्रान्तर में
विचरण करते कल कल निनाद कर
अनवरत जीवन-गान सुनाती हो
000

निजत्व

जब वृक्ष विहीन पहाड़ियाँ
रोती हैं ज़ार-ज़ार
तो सख्त चट्टानें भी
दरकने लगती हैं
एक साथ

उनके पथरीले आँसू
गिरते हैं उनकी ही
कटी बाहों पर
जिन्हें काट कर
बना दी गई हैं, सड़कें

आँसू रास्ता रोक देते हैं

वे भी चाहते हैं-
कुछ दिन उन्हें उनके
मौन में रहने दिया जाए

उनसे भी उनके
निजत्व का अधिकार
न छीना जाए
000

गाँठें

तुम्हारे मन में
बँधी हुई कुछ गाँठें
तुम्हें नहीं
मेरी आँखों में
चुभती हैं

कहीं ऐसी चुभन
तुम्हें ना हो
इसलिए मैं
मन में लगी गाँठों को
खोलने की जुगत में
लगा रहता हूँ
दिन रात
000

सर्व सुलभ

दूधिया चाँदनी संग
चाँद
उतरता है
चट्टानों बीच
बहती नदी में

चाँद की सत्ता है चाँदनी
हाथ डालता हूँ नदी में

आ जाती है दूधिया चाँदनी
सजल होकर मेरे हाथों में

सत्ता को
ऐसे ही होना चाहिए
सर्व सुलभ
000

मन की किताब

तुम अपने होने
की, स्मृतियों से
जोड़ गई हो

तुम तो गई
देह गंध यहाँ
छोड़ गई हो

इन आँखों को
पढ़ता देखकर
मन की किताब का
पन्ना मोड़ गई हो

लचकती शाख पर
खिलते फूल की
सुवासित एक
पंखुरी तोड़ गई हो

तुम तो गई
पुष्प गंध यहाँ
छोड़ गई हो
000

अरुण सातले
ए-13, एल.आई.जी. कॉलोनी, रामेश्वर रोड, खण्डवा (म.प्र.)
मोबाइल- 94254 95481

नरेश अग्रवाल की कविताएँ

यह किसका डर है..

यह किसका डर है?
कि मैं जागना नहीं चाहता
आँखें खोलना नहीं चाहता
उसे मुँदी रखना चाहता हूँ

यह किसका डर है कि
दिन मुझे अच्छे नहीं लगते
प्रकाश मुझे नहीं सुहाता
हरियाली भी सूखी-सी नज़र आती है

यह डर कितना गहरा है
जब तक जान नहीं लेता
भीतर-ही-भीतर मन के
बिल खोदता रहूँगा चूहों की तरह
किसी भी तरह
उस चुभे काँटे को निकालूँगा
तभी जाकर स्पष्ट आँखें खोलूँगा
फिर दोस्ती निभाऊँगा
बचे हुए दोस्तों से!
000

हृदय की जेब में

मालूम नहीं चींटी को
कितना प्यार चाहिए
या पहाड़ों को कितना
मुझे तो चुटकी भर चाहिए
जिसे सँभाले रख सकूँ
हृदय की जेब में
मुझे इससे अधिक नहीं चाहिए
क्षमता नहीं इससे अधिक वहन करने की
उसे निभाने की
अधिक-से-अधिक इतना हो
एक चोंच की तरह
हर दिन थोड़ा-थोड़ा ही पाता रहूँ
बना लूँ इससे प्यारा-सा घोंसला
छोटा-सा ही सही
लेकिन असंख्य के प्रेम के लिए भी
हो जिसमें पर्याप्त जगह!
000

नए दर्पण में

इस बूढ़े शरीर को
क्या ज़रूरत दर्पण की
इसका पूरा शरीर ही दर्पण
बार-बार पूर्व को दिखलाता
यादों के चित्र सामने लाता
जितनी सारी यादें
उतने सारे दर्पण
किस-किस में निहारें स्वयं को
थक जाता है
तोड़ देता है सभी को
फिर लाठी का सहारा लिये
प्रवेश करता है
वास्तविकता के नए दर्पण में
000

बँधे हुए पैर

सीढ़ी ठीक मेरे पास है
लेकिन मेरे पैर बँधे हैं
साथ ही लटक रही है सिर पर तलवार
अगर ज़रा-सा भी इस पर चढ़ा तो
गर्दन कटकर धड़ से अलग
सहमा हुआ, बँधा हुआ चुपचाप पड़ा हूँ
अनेक वर्षों से
क्यों इतना डर उन्हें मेरे आगे बढ़ने का?
सरासर बेईमान है ऐसी दुनिया
जबकि उनके मनपसंद लो
बारी-बारी से छू रहे आकाश
मैं प्रतिभाशाली बिना स्पर्धा के पराजित
दबा जा रहा हूँ धूल में
000

गोली

गोली जब सीने में घुसती है
ज़रूर नाम लेती होगी
उसे यहाँ तक भेजने वाले का
क्षमा भी माँगती होगी
दोष चलाने वाले पर मढ़कर
लेकिन दर्द और चीत्कार के बीच
कौन सुन पाता होगा
उस अपराधी का नाम
अपराधी हमेशा चालाक रहे
नहीं लिखा गोलियों पर अपना नाम
उन्हें बचाने वाले भी उतने ही बड़े उस्ताद
फेंकी हुई पिस्तौल को
ढूँढ़ते हैं वहाँ, जहाँ वह नहीं होती!
000

खिड़कियाँ

खिड़कियाँ कितना कुछ दिखा देती हैं
बाहर की घटनाओं को भी
इस बंद कमरे से
ये न रहें तो
कैद हों जाऊँ चारदीवारी में बँधकर

सचमुच ये आँखें हैं इस बंद कमरे की
इन्हें हमेशा खुली रखता हूँ
इनसे सब कुछ देखता रहता हूँ
सतर्कता पूर्वक
इतना अधिक कि कभी-कभी भूल जाता हूँ
कि मेरी आँखें देख रही हैं या ये खिड़कियाँ

अगर मस्तिष्क की खिड़कियों को भी
पूरी-की-पूरी इनके साथ खोल दूँ तो
और अधिक
दीप्तिमान और विचारवान हो जाऊँगा!
000

नरेश अग्रवाल, हाउस नंबर 35 रोड नंबर 2, सोनारी गुरुद्वारा के पास, कागलनगर, सोनारी, जमशेदपुर 831011 (झारखंड)
मोबाइल- 9334825981
ईमेल - nareshagarwal7799@gmail.com

शैलेन्द्र चौहान की कविताएँ

ग्रीष्म

झंकृत होती हैं
नाड़ियाँ
शिराओं का बढ़ जाता है चाप
तापमापी करता दर्ज़
तापमान
अड़तालीस डिग्री सैलसियस

कविताएँ होती वाष्पित जल-सी
उत्सर्जित होती
स्वेद-सी
फूटती मन और शरीर से

फैल जाती हैं
ब्रह्मांड में।
000

आतप

फिर फूले हैं
सेमल, टेसू, अमलतास
हुआ ग़ुलमोहर
सुर्ख़ लाल
ताप बहुत है
अलसाई है दोपहरी
साँझ ढले
मेघ घिरे
धीरे-धीरे खग, मृग
दृग से ओट हुए
दुबके वनवासी
ईंधन की लकड़ी पर
रोक लगी जंगल में
वन-वन भटकें मूलनिवासी
जल बिन
बहुत बुरा है हाल
तेवर ग्रीष्म के हैं आक्रामक
कैसे कट पाएँगे ये दिन
जन-मन,पशु-पक्षी
हुए हैं बेहाल।
000

विरक्ति

कदापि उचित नहीं
दिगंत के उच्छिष्ट पर
फैलाना पर

शमन कर भावनाओं का
मनुष्य मन पर
प्राप्त कर विजय
उड़ भी तो नहीं सकते
अबाबीलों के झुंड में

ठहरी हुई हवा
बेपनाह ताप
बहुत सुंदर हैं
नीम की हरी-हरी
पत्तों भरी ये टहनियाँ

अर्थ क्या है
पत्तों वाली टहनियों का
न हिलें यदि
उमस भरी शाम

विरक्त मन,
फैल गई है विरक्ति
बोगनवेलिया के गुलाबी फूल
करते नहीं आनंदित
यद्यपि खूबसूरत हैं वे।
000

उदासीनता

क्या मुझे पसंद है व उदासीनता
क्या तटस्थता और
विरक्ति ही है
उपयुक्त जीवन शैली
क्या निष्क्रियता है
मेरा आदर्श ?
थमी हुई है हवा
निर्जन एकांत में
ध्वनि,
नहीं महत्त्वहीन
न नगण्य और
असंगत।
000

गीत बहुत बन जाएँगे

यूँ गीत बहुत
बन जाएँगे
लेकिन कुछ ही
गाए जाएँगे

कहीं सुगंध और सुमन होंगे
कहीं भक्त
और भजन होंगे
रीती आँखों में
टूटे हुए सपन होंगे

बिगड़ेगी बात कभी तो
उसे बनाने के लाख जतन होंगे

न जाने इस जीवन में
क्या कुछ देखेंगे
कितना कुछ पाएँगे
सपना बन अपने ही छल जाएँगे

यूँ गीत बहुत
बन जाएँगे
लेकिन कुछ ही
गाए जाएँगे।
000

शैलेन्द्र चौहान
34/242, सेक्टर-3, प्रतापनगर,
जयपुर-302033
मोबाइल- 7838897877
ईमेल - shailendrachauhan@hotmail.com

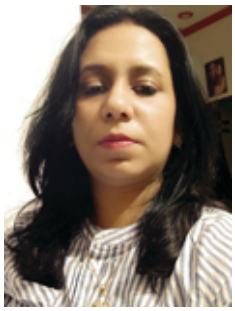

अनुजीत इकबाल की कविताएँ

वियोगिनी का प्रेम

चंद्रपुष्प सघन केशों में सजाकर
रति को हृदय में बैठा कर
कंठ पर धारण करके वाग्देवी
एक वियोगिनी तीक्ष्ण आसक्ति में
प्रियतम को बुलाती है

वैरागी प्रियतम ने हृदय गूँथ लिया था
सुई से छिन्न करके
अपनी मेखल में सिंगी के साथ
और बींधे उर की यंत्रणा-मुक्ति
उसी के स्पर्श से संभव है
विरह का अस्त्र भेद देता है
वियोगिनी का अंतस
जैसे काली पिपासिनी छिन्न करती है
खड़ग से नरमुंडों को
विरहाग्नि से प्रक्षालन करते हुए
वो जानती है कि मांस मज्जा की तलहटी पर
सुलगता हुआ शैल द्रव्य
आग्नेयगिरि बनने से पहले

प्रिय का मिलन चाहता है
लेकिन, पंचभूतों की काया
प्रेम की उत्कंठा मात्र से ही
स्वयं को अस्पर्श्य मान लेती है
एक दिन जब उठेगी प्रलयाग्नि
और चौदह भुवन विलीन हो जाएँगे
एक शून्याकार कृष्ण रंध्र में
उस क्षण बचेंगे केवल दो लोग
विरहिणी और प्रियतम
एक दूसरे के प्रेम में डूबे हुए
नितांत अकेले।

000

अवधान

ये प्रेम और मेरी चेतना का लय होना तुम संग
शून्य आकाश में गमन करने का पर्याय है
तुम्हारे शब्दों के आरोह अवरोह के मध्य
उस मौन घोष में प्रतिध्वनित होती है
समग्र ब्रह्मांड की नीरवता
तुम्हारे दृगों को देखा तो जाना कि
परम गूढ़ दो गवाक्षों के मध्य से
झाँक रहा था, मुस्कराते हुए
लेकिन प्रिय, इस अनुभूति का संज्ञाकरण संभव नहीं
तुम्हारे शब्द राग दीपक का विस्तार हैं
जिसमें सहस्त्रों शलभों का मान मर्दन होता है
तुम्हारी श्वास प्रश्वास का लिप्सित देवालय
आकुल करता मुझे, अंगीकार करने को
वो एक संतृप्ति, पायस सी
तुम से कुछ कहना चाहूँ तो कंठ भंग हो जाता है
स्वर ग्रंथियों का क्या मूल्य
जहाँ तुम स्वयं अपनी प्रतिष्ठा में खड़े
आलाप ले रहे हो
तुम्हारे प्रेम में पड़ कर मैंने जाना कि
असंख्य जलकणों के नाच के मध्य
नदी शांत बहती है
प्रिय, मैं तुम्हारे अवधान में हूँ।

000

विप्रलब्धा

विप्रलब्धा मैं
पर्वतश्रृंगों की तलहटी पर
उन्मत्त मधुकरों की ध्वनि
और प्रेमाश्रु बहाते मेघों से आच्छादित
रात्रि के अंतिम पहर जुगत लगा रही हूँ
स्वयं को विसर्जित करने की
कल कल बहती नदी में
कि जो डूबा वो पार हुआ
मौन का ताप
सुदूर झूलते पौर्णमासी के चंद्र को
दग्ध कर देता
और विरह विधुर हृदय उद्वेलित हो जाता
इस पर, उत्तुंग शिखर पर बैठे
प्रियतम के ओष्ठ
उनके सुंदर मुख पर
मंद हास्य उकेरित कर देते
उस कपाली के पात्र में
सर्वस्व दान कर चुकी थी
और उस प्रणयाकुल क्षण के साक्षी
स्वयं वासुकि थे

यह प्रेमपाश समस्त भोगलिप्साओं को
ध्वस्त करने आया था
लेकिन एकमय होने की उत्कंठा में
देह नष्ट प्रभ और चेतना प्रभा पल्लवित हुई
बिछोह से कलंकित रात में
मैं घूमती नितांत अकेली
और स्मृति में कौंधता
उस निर्मोही का दीप्त वर्ण मुख
वृहत भुजाएँ और भुजंगों से सुसज्जित वक्षस्थल
इस रूप के मात्र चिंतन से ही
नाड़ीतंत्र में अग्नि धधकती
और हृदयपुंडरीक प्रमुदित होता
विकीर्णकेशी मैं
जब दौड़ती उन शैलश्रृंखलाओं की तरफ
तो सुनाई देता राग भैरवी का नाद
कहते हैं यह "समापन" का राग है
कहो प्रियतम
क्या देह के रहते
प्रेम सिद्ध करने की
कोई विधि नहीं थी तुम्हारे पास?

000

अनुजीत इकबाल
C/O एडवोकेट प्रिंस लेनिन
मकान नं 4 , राम रहीम एस्टेट,
मलाक रेलवे क्रॉसिंग के पास,
नीलमथा ,लखनऊ , उत्तर प्रदेश -226002
मोबाइल-9919906100
ईमेल- anujeet.lko@gmail.com

कमलेश कमल की कविताएँ

स्त्री प्रेम में नदी हो जाती है

औरत के चुप होंठों से
मुखर दुनिया में कुछ नहीं होता
उसकी चुप्पी से अधिक शोर का
नहीं है कोई प्रामाणिक दस्तावेज़
सबसे बेधक अस्त्र होती हैं
स्त्री की कातर आँखें
और उसका प्रेम
कभी नहीं समाता
तर्क की सीमा में
स्त्री प्रेम में नदी हो जाती है
बहती है कल-कल मोह में
और बीहड़ व्यस्तता में भी
आवेग में कभी
घासविहीन पहाड़ को भी
जकड़ती है स्त्री
तो रेतविहीन नदी सी वह
गहरी होती है प्रेम में
उपेक्षा होने पर
गुमसुम नदी सी ही
निकल जाती है वह
लेकिन जब कभी
आती है प्रतिशोध पर स्त्री
अडिग चट्टानों को तोड़ती
हो जाती है विकराल
000

स्त्री-मन का घोषणा पत्र

बार-बार दोहराया उसने
कि उसे प्रेम है
उसकी आतुरता को स्त्री ने प्रेम ही जाना
और छली गई।
हाँ, भोली स्त्री की भूल है
पुरुष की जल्दबाज़ी को
प्रेम समझ लेना।
ठोकर खाकर ही
सीखती है स्त्री
कि झूठ की उथली तलैया में
नहीं तैरती प्रेम की नाव।
कि पुरुष-झूठ की जलकुंभी से
ज़ल्द ही भर जाता है
प्रेम का सरोवर
उम्मीद के महार पर भी
लिपट जाती हैं
झूठ की ही काइयाँ।
कि पुरुष फाँकों में फाड़कर
चखना चाहता है स्त्री को
और स्त्री ढूँढ़ती है
पुरुष-प्रेम की तरलता
चीनी सा घुल जाने।
स्त्री जानती है
कि पुरुष आतुर होता है
प्रेम की सीढ़ी से भोग में उतरने
और बाधा होने पर
करुणा नहीं क्रोध से भर जाने का
वह पैशाचिक हुनर रखता है।
000

स्त्री का गणित

चौखट रोककर खड़ी हो जाऊँ
विदा-वेला में
थोड़े तरल होकर ही सही
तब भी तो जाओगे
तो आँचल बाँध
हिम्मत जुटाती हूँ
और सज़ा देती हूँ तुम्हारा थैला
जब तुम जुटे होते हो फ़ोन पर
या देखते हो टीवी पर डिबेट
तब हहराई आत्मा
और भरी आँखों से घोल देती हूँ
पकवान में ख़ुद को ही
नमकीन चखते कई दिन बाद भी
आए तुम्हें मेरे हाथों का स्वाद
इस आस में ही
उँगलियाँ बनी हैं मशीन
जब डाँटते हो तुम
कि नहीं रख पाती हिसाब पैसों का
तब रख देती हूँ तहाकर
दो जोड़ी गर्म कपड़े
हाँ, यही स्त्री का गणित है
बेशक ठीक हैं तुम्हारे ताने
कि चलन से बाहर हो गए कपड़े
और मैंने कितने कम पहने
पर न जाने कितनी बार
पहनी हूँ आँखों से, हाथों से
तुम्हारी यादों को
न जाने कितनी बार
बच्चों को सुला
खोली है यादों की पिटारी
हाँ, यही मेरा गणित है।
000

कमलेश कमल
डिप्टी कमांडेंट
(गृह मंत्रालय भारत सरकार)
मोबाइल- 7051734688
ईमेल- kamalkeekalam@gmail.com

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

रश्मि प्रभा की कविताएँ

एक सच

वे सारे तथाकथित रिश्ते !!!,
जो किसी किनारे नहीं टिकते,
आँधी-तूफान में,
किसी टापू के पीछे,
खर्राटे भरते हैं,
उनकी सोचकर -
उनके लिए
कागज़ की हल्की,
या काठ की मजबूत,
कोई भी नाव मत बनाना,
वे तुम्हें हर हाल में डुबोएँगे।
ख्वामख्वाह की
घिसी-पिटी सीख,
या पंचतंत्र की कहानियों के
नीतिपरक झाँसे में मत आना,
ईश्वर ने घुप्प अँधेरे में
जिस दीये की संपत्ति तुम्हारे नाम लिखी थी
उसका सम्मान करो।
उस दीये को
असामयिक तूफ़ान में रखकर,
अपनी निरर्थक विनम्रता की कहानी मत
लिखो।
उसको तुमने कमाया है,
सँभालकर रखो,
संबोधनों के भंवर में गोता लगाकर,
उस दीये को हतप्रभ मत करो।
अगर कोई डूब रहा है,
कट रही है साँसों की डोर
तो बेशक मानवता की अपेक्षित पुकार को
सुनो,
जाल फेंको,
मृत्यु के गह्वर से बाहर निकालो,

मगर रोना है तो
खुद के लिए रोओ,
वर्षों से जिन आँसुओं को तुमने जब्त
किया,
हँसने के बहाने बनाये,
उस ख़ज़ाने को बीच राह में मत गँवाओ,
हँसी की जो सुनहरी लकीर हाथ में आई है,
उसे दीर्घायु होने दो।

000

अवधान

इंसान को लगता है,
ईश्वर को भला क्या परेशानी होगी !
पर यह सच नहीं है
एक दिन ईश्वर भी था
परेशान बड़ा
शय्या पर चिंतामग्न पड़ा
सोच रहा था,
इतने सारे काम इधर पड़े हैं
उधर कुरुक्षेत्र में हुंकारते
कौरव - पाँडव खड़े हैं
और
उसे सारथी बनकर जाना है
जब वह कुरुक्षेत्र में
न्याय - अन्याय की पैनी धार पर
चल रहा होगा
तो सृष्टि में
सुरक्षा का दायित्व वहन करता,
सूर्य कवच सा,
कौन खड़ा होगा ?

पुत्र के माथे पर बल आए
और माँ को पता न चल पाए,
कैसे संभव है !
सो माँ ने सिर पर हाथ रखा
और हँसकर कहा -
जो अपने गर्भ में विराट स्वरूप को गढ़ती है
फिर उसे जन्म देते समय
साक्षात खड़े यमराज के साथ घंटों
असह्य पीड़ा की वैतरणी को पार करने की
अपनी अक्षय सहनशक्ति से लड़ती है
उस जन्मदायिनी की शक्ति से बढ़कर
और कौन शक्ति होगी !
दुर्गम पथ हो या महाअरण्य,
हिंसक पशु हों या महाअत्याचारी मनुष्य
वह किसी से नहीं डरती
जन्म से पूर्व, जन्म के बाद
आँचल की सुरक्षा देकर
जिस अर्थ को वह संसार में लाती है
उस अर्थ को मन्नतों के झूले में झुलाती है
दुआओं के अनंत धागों से बांधती है
यही हैं
उसके खड्ग, सुदर्शन, त्रिशूल,
यही उसके ब्रह्मास्त्र हैं !
माँ के आगे तो ईश्वर भी
सदा बच्चा ही रहता है ना
वह चिंतामुक्त हो बच्चे सा
मुस्कुरा उठा
माँ से बोला,
तू विराट रूप गढ़ सकती है
तो अपनी एक प्रतिलिपि
नहीं बना सकती क्या !
उसे बना और भू पर उतार दे
सब कहते हैं,
मैं संसार को तारता हूँ
माँ, तू मझे तार दे।

000

रश्मि प्रभा
902, सी विंग, लोढ़ा लग्जेरिएंट प्राइवा
माजीवाड़ा, ठाणे, 400608
मोबाइल - 7899801358

जो कुछ नहीं करते वो कमाल करते हैं

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

बहुत दिनों से एक द्वंद्व देख रहा हूँ, और यह द्वंद्व है करने वालों तथा कुछ नहीं करने वालों के बीच। पता नहीं दूसरी भाषाओं के साहित्य में ऐसा होता है अथवा नहीं होता है, लेकिन यहाँ हिन्दी में तो पिछले कई बरसों से यह चल रहा है। लिखने वालों तथा नहीं लिखने वालों के बीच द्वंद्व। अब आप पूछेंगे कि जो लिख ही नहीं रहा है उसका साहित्य में क्या काम ? तो यही तो मैं भी पूछ रहा हूँ कि जो लिख ही नहीं रहा है उसका यहाँ क्या काम ? मगर काम की तो छोड़िये, वह तो सर्वेसर्वा बना हुआ बैठा है, बाक़ायदा उसको ही लाइसेंसिंग अथॉरिटी बनाया हुआ है। वह ही तय करता है कि कौन सा लेखक मुख्य धारा का है, कौन सा नहीं है। कितने मज़े की बात है न कि जो ख़ुद लिख ही नहीं रहा है, उसको ही तय करने का काम मिल गया है। असल में नहीं लिखने वालों की कई सारी प्रजातियाँ होती हैं। एक तो वह लेखक, जिन्होंने शुरूआत में कुछ थोड़ा बहुत लिख दिया, और अपने उस लिखे हुए को अपने ही मित्रों की मदद से कालजयी घोषित करवा लिया। मित्र भी ऐसा कि भले ही बात किसी की भी करनी हो, उसमें वह इनकी रचना को संदर्भित करने का मौक़ा नहीं छोड़े। मतलब कि जैसे उसे बात करनी हो देश की अर्थव्यवस्था की और वो कहे 'ठीक है अर्थव्यवस्था ख़राब हो रही है, मगर कहीं न कहीं कुछ न कुछ तो अच्छा है। अभी मैंने फलाने कुमार की नई कहानी ढिकानी पत्रिका में पढ़ी, पढ़ कर लगा कि नहीं अभी सब कुछ ख़त्म नहीं हुआ है, अभी भी कुछ लोग हैं, जो सब कुछ को बचाने में लगे हैं। यक़ीन न हो तो आप भी पढ़ कर देखिये उस कहानी को।' इनकी बात को मान कर कुछ अज्ञानी पत्रिका ख़रीदते हैं और सबसे पहले उसी कहानी को पढ़ते हैं। पढ़ने के बाद वे इनको पादुकाएँ हाथ में लिए तलाशने लगते हैं, मगर तब तक तो ये और किसी शहर के किसी कार्यक्रम में होते हैं यह कहते हुए 'ठीक है पर्यावरण संकट में है, मगर.....'। हिन्दी साहित्य में इस तरह के लेखक-मित्र समूह काफी हैं। इन मित्रों की मदद के कारण ही कई लेखक, लेखक बने। जब वे लेखक कहाए जाने लगे तो लिखना छोड़ दिया। जब भी यह किसी कार्यक्रम में मंच में होते हैं, तो मंच संचालक इतिहास के पन्नों से ढूँढ़ कर इनकी उन रचनाओं के शीर्षक महान्, कालजयी, अमर जैसे शब्दों के साथ प्रस्तुत कर देता है। अच्छा आप हिन्दी के किसी पाठक से इन कालजयी रचनाओं के बारे में पूछें, तो वह हैरत में पड़ जाता है। बल्कि उसे तो लेखक का नाम भी नहीं पता होता है। यह पहले प्रकार के नहीं लिखने वाले लेखक होते हैं। दूसरे नहीं लिखने वाले लेखक वे होते हैं, जो सचमुच कभी लिखते ही नहीं हैं। इनकी वो रचनाएँ जो इनकी दृष्टि में हिन्दी की महानतम रचनाएँ थीं, संपादक के खेद तथा अभिवादन के साथ बरसों तक लौटती रहती हैं, और एक दिन वे लिखना छोड़ कर संपादक हो जाते हैं। बस उसके बाद तो लिखने का कोई काम ही नहीं है। नहीं लिखने वालों की और भी प्रजातियाँ हैं, मगर उनकी बात यहाँ करेंगे तो आगे की बात ही नहीं हो पाएगी। बात शुरू हुई थी इस बात से कि यह जो नहीं लिखने वाले लेखक हैं, यह पूरे परिदृश्य पर छाए हुए हैं। भले ही इन्होंने अंतिम रचना बीसवीं सदी के अंतिम किसी साल में लिखी थी, मगर ये इक्कीसवीं सदी में उस रचना के कारण ही सारे मंचों पर शोभायमान नज़र आते हैं। और जो लेखक सचमुच में लिख रहा है, लगातार लिख रहा है, वह इनके कार्यक्रमों में पीछे की किसी कुर्सी पर बैठा तालियाँ बजाता मिलता है। हिन्दी साहित्य सचमुच महान् है, यह लिखने वालों को तो छोड़िये नहीं लिखने वालों को भी साहित्यकार मानता है, और उन्हें ही अपना मुखपत्र बनाए हुए है। बहुत पुरानी एक फ़िल्म का संवाद याद आ जाता है इन नहीं लिखने वालों को देख कर - जो कुछ नहीं करते हैं, वे कमाल करते हैं। यह कमाल इन दिनों बहुत किया जा रहा है। यह कमाल ही तो है बिना गायकी के गायक नहीं, मगर बिना लेखकी के लेखक बना जा सकता है, कुछ दिन तो गुज़ारिये हिन्दी में..।

सादर आपका ही

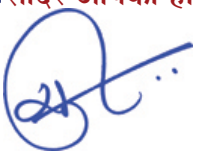

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

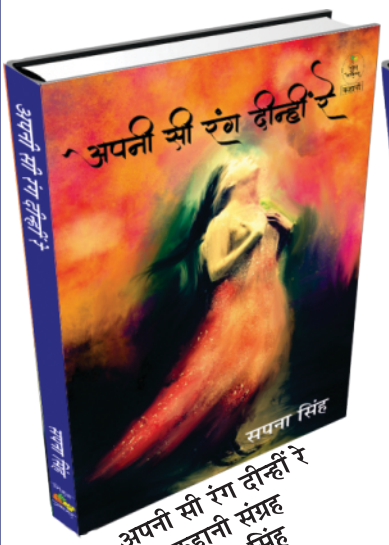

अपनी सी रंग दीन्हीं रे
कहानी संग्रह
सपना सिंह

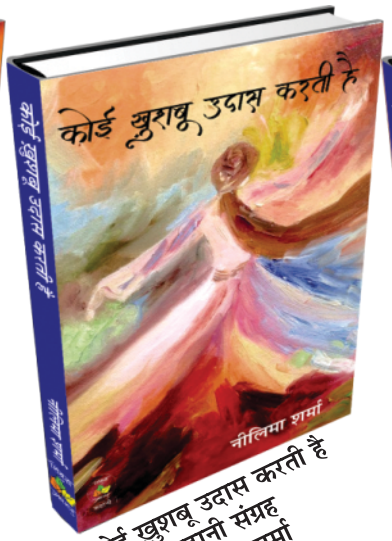

कोई ख़ुशबू उदास करती है
कहानी संग्रह
नीलिमा शर्मा

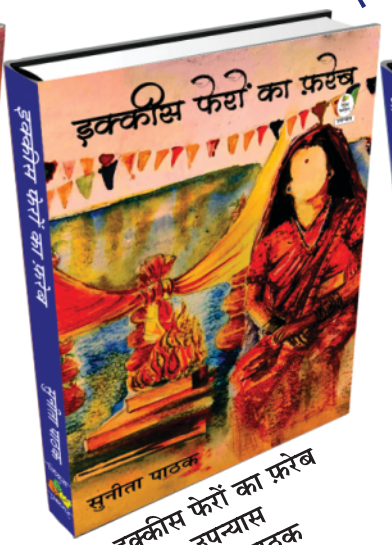

इक्कीस फेरों का फ़रेब
उपन्यास
सुनीता पाठक

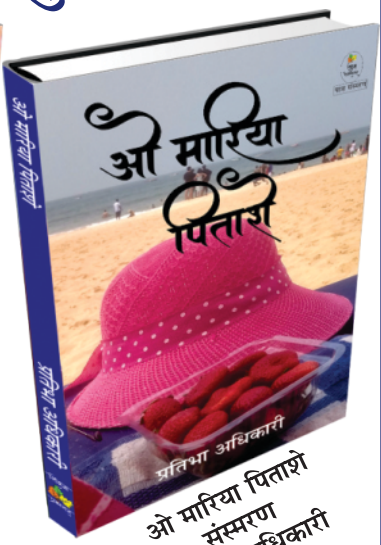

ओ मारिया पिताशे
संस्मरण
प्रतिभा अधिकारी

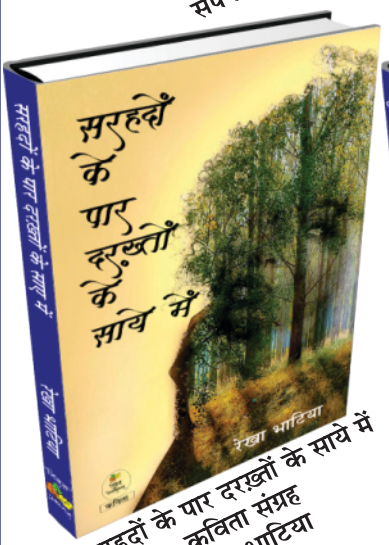

सरहदों के पार दरख़्तों के साये में
कविता संग्रह
रेखा भाटिया

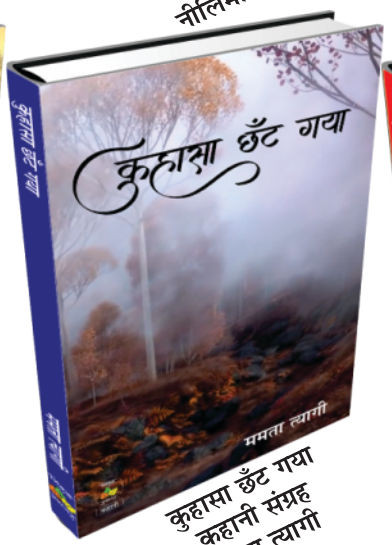

कुहासा छँट गया
कहानी संग्रह
ममता त्यागी

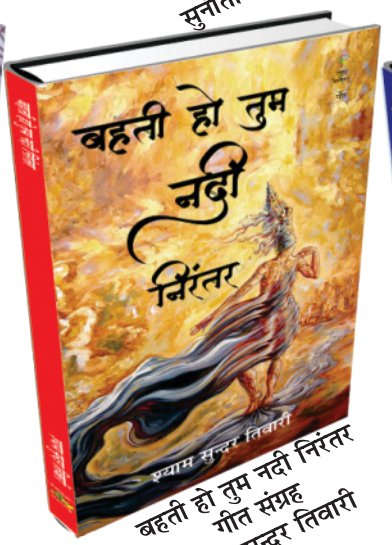

बहती हो तुम नदी निरंतर
गीत संग्रह
श्याम सुन्दर तिवारी

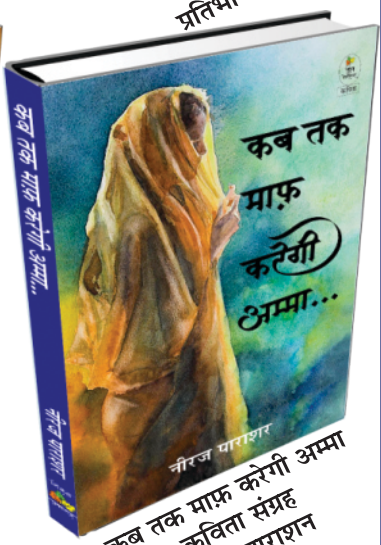

कब तक माफ़ करेगी अम्मा
कविता संग्रह
नीरज पाराशर

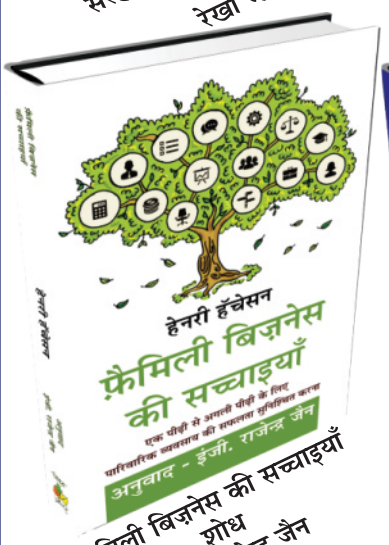

फ़ैमिली बिज़नेस की सच्चाइयाँ
शोध
इंजी. राजेन्द्र जैन

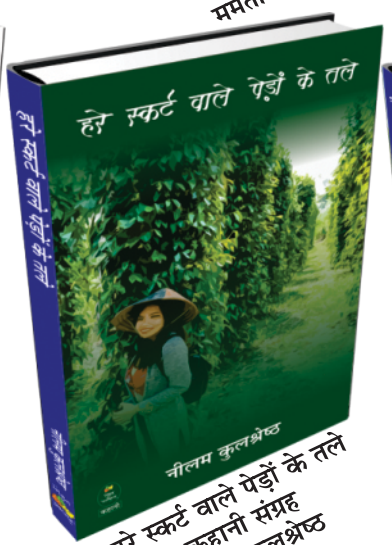

हरे स्कर्ट वाले पेड़ों के तले
कहानी संग्रह
नीलम कुलश्रेष्ठ

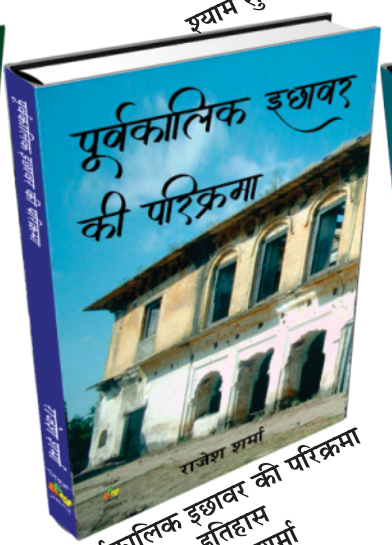

पूर्वकालिक इछावर की परिक्रमा
इतिहास
राजेश शर्मा

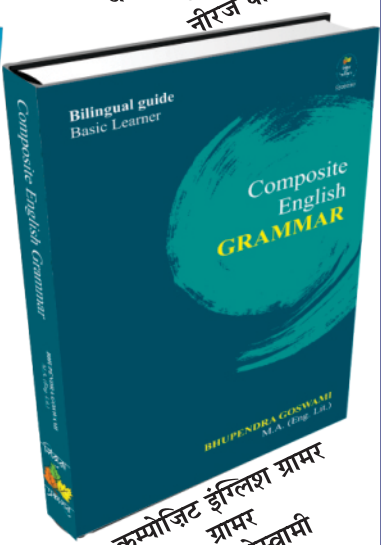

कम्पोजिट इंग्लिश ग्रामर
ग्रामर
भूपेन्द्र गोस्वामी

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2019-20 में प्रशिक्षण प्राप्त बालिकाओं को डीसीए डिप्लोमा अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा समाजसेवी श्री अनिल पालीवाल ने केंद्र पर आयोजित कार्यक्रम में प्रदान किए।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2019-20 में प्रशिक्षण प्राप्त बालिकाओं को डीसीए डिप्लोमा श्रीमती डॉली शर्मा, श्रीमती रश्मि मनु व्यास तथा श्रीमती समर ख़ान ने केंद्र पर आयोजित कार्यक्रम में प्रदान किए।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2019-20 में प्रशिक्षण प्राप्त बालिकाओं को डीसीए डिप्लोमा अनुविभागीय पुलिस अधिकारी सुश्री अर्चना अहीर ने केंद्र पर आयोजित कार्यक्रम में प्रदान किए।

सीहोर ज़िले के आष्टा में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2019-20 में प्रशिक्षण प्राप्त बालिकाओं को डीसीए डिप्लोमा समाजसेवी श्री अखिलेश राय ने आष्टा केंद्र पर आयोजित कार्यक्रम में प्रदान किए।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।